सुमन जी रचित अन्य जीवनियाँ

१. पुण्य स्मरण या हमारे स्व० राष्ट्रनिर्माता

जीवनी-लेखन-कला में क्रान्ति उपस्थित करने वाली पुस्तक। हिन्दी की अन्य जीवनियों से सर्वथा अलग। अभिनव शैली, गंभीर विवेचन। लोकमान्य तिलक, त्यागमूर्ति प० मोतीलाल नेहरू, महामना मालवीय, महात्मा गांधी, लाला लाजपत राय, देशबन्धुदास, मुहम्मद अली, सरोजनी नायडू आदि राष्ट्रनिर्माताओं की जीवन-गाथा; जीवन विवेचन-विश्लेषण, उनके जीवन का रहस्य, तथा मनोरंजक संस्मरण। इनके साथ घटना-तिथियों की तालिका। सचित्र और अत्यन्त सुंदर गेटअप। ५०० पृष्ठ। मूल्य चार रुपये।

२. बापू की स्मृतियाँ

बापू जी के जीवन को ऊपर उठाने वाले संस्मरण। सुंदर छपाई तथा कवर। मूल्य—सवा रुपया। [प्रेस में]

३. युगाधार गांधी

युग-पुरुष गांधी के जीवन का प्रामाणिक अध्ययन। उनकी पूरी और विस्तृत जीवनी। उनके जीवन का रहस्य; उनके विविध रूपों की व्याख्या; अध्ययन, विश्लेषण और संस्मरण। जीवनी-लेखन-कला में लेखक का क्या स्थान है इसे हिंदी पाठक जानते हैं। अप-टु-डेट तालिका; मनोरम दोरंगे कवर के साथ। दो सौ से अधिक पृष्ठ। मूल्य ढाई रुपये। दूसरा संस्करण।

परिवर्द्धित, अद्यतन और सचित्र संस्करण

हमारे नेता और निर्माता

[भारत के कुछ नेताओं के जीवन-चित्र और अध्ययन]

लेखक

श्री रामनाथ 'सुमन'

प्रकाशक

साधना सदन

इलाहाबाद—१

ढाई रुपये

प्रकाशक
साधना-सदन,
इलाहाबाद—१ ।

प्रथम संस्करण सितम्बर, १९४२
द्वितीय संस्करण जनवरी, १९४४
तृतीय संस्करण जून, १९४५
चतुर्थ संस्करण दिसम्बर, १९४६
पञ्चम संस्करण अप्रैल, १९४८
षष्ठ संस्करण फरवरी, १९४९
सप्तम संस्करण जून, १९५०
अष्टम संस्करण जून, १९५१

मुद्रक
श्रीरंजन, सेवा प्रेस
९८ हिवेट रोड, इलाहाबाद ।

दो बातें

जीवन के जीवित, प्राणवाहक शब्द-चित्रों का हिन्दी में अभाव ही है। जहाँ साहित्य के अन्य अंग-उपांगों की पूर्ति का प्रयत्न हुआ है और हो रहा है तहाँ जीवनी-लेखन-कला अपनी शैशवावस्था में है— एक अनाथ शिशु की तरह उपेक्षित। उपयोगिता और कला दोनों दृष्टियों से इस विषय की ओर हमारे लेखकों एवं विचारकों का ध्यान जाना चाहिए था पर इस क्षेत्र के पास पहुँच कर मानों साहित्य की सरस्वती लुप्त हो गई है। चवन्नीवाली सस्ती जीवनियों का जाल-सा बिछ गया है—जो बच्चों की कहानियों की तरह नायक को ऊपर-ऊपर से छूकर समाप्त हो जाती हैं।

जीवनी की घटनाओं के विवरण का नाम जीवनी नहीं। लेखक जहाँ नायक के जीवन में छिपे उसके विकास को, उसके व्यक्तित्व के रहस्य को, उसकी मुख्य जीवन-धारा को खोलकर पाठकों के सामने रख देता है, तहाँ जीवनी लेखन-कला सार्थक होती है। ऊपर से मनुष्य के दिखाई पड़ने वाले रूप को दिखाकर ही जीवनी-लेखन-कला सन्तुष्ट नहीं होती, वह आवरण को भेद कर अंतःस्वरूप और आन्तरिक सत्यको प्रत्यक्ष करती है। वह मानव-प्रकृति की जटिलताओं के अन्दर पैठकर उसका विकास-सूत्र और उसकी देन को हमारे सामने रख देती है।

इस प्रकार की व्यक्तित्व-समीक्षा और विश्लेषण को पाश्चात्य साहित्य में काफी महत्व का स्थान प्राप्त हुआ है। फ्रेञ्च साहित्य अपनी शक्तिमान जीवनियों से गौरवास्पद है। अंग्रेजी और जर्मन में भी इस क्षेत्र में बहुत काम हुआ है। वहाँ 'शब्दचित्र' लिखने में लेखकों को काफ़ी सफलता प्राप्त हुई है।

जब मैंने १९३३ ई० में अपना बड़ा ग्रन्थ 'हमारे राष्ट्र-निर्माता' प्रकाशित कराया तो वह इस दिशा में कदाचित् पहला कदम था। उसके

204

पूर्व पं० बनारसीदास जी ने अच्छा काम किया था। उसके बाद भी उनके अनेक शब्द-चित्र निकले हैं पर उनका क्षेत्र साहित्यिक एवं सामाजिक व्यक्तित्वों तक सीमित है। राजनीतिक व्यक्तियों को उन्होंने छोड़ दिया है और मेरे विचार से इनका चित्रण सबसे कठिन है क्योंकि राजनीतिक जीवन में जैसे आकस्मिक परिवर्तन होते हैं वैसे अन्यत्र नहीं होते। कभी-कभी नेता का सम्पूर्ण जीवन-क्रम ही बदल जाता है।

मेरे इस प्रकार के शब्द-चित्र एवं अध्ययन पसन्द किये गये हैं। हिन्दी के एक विचारवान एवं प्रसिद्ध समालोचक ने उन्हें कई अंशों में हेराल्ड लास्की के चित्रों से भी उत्तम बताया है। मेरी दिलचस्पी का क्षेत्र होने से इस दिशा में कुछ काम करते रहने की मेरी इच्छा पुरानी है। और मुझे हर्ष है कि आज मैं अपनी यह दूसरी पुस्तक हिन्दी पाठकों के सामने रखने में समर्थ हुआ। राजगोपालाचार्य, राजेन्द्र प्रसाद, सरोजिनी नायडू, अबुल कलाम आजाद के अध्ययन नये हैं और शेष भी प्रायः नये लिखे गये हैं। भारतीय राजनीति का विकास समझने के लिए आरम्भ में निबन्ध भी दे दिया गया है। नेताओं का क्रम आयु के अनुसार रखा गया है।

आशा है, हिन्दी पाठकों को इसमें जानने-समझने की पर्याप्त सामग्री मिलेगी।

—श्रीरामनाथ 'सुमन'

इसमें यह है—

भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की रूप-रेखा

(१८३० से १९५१ तक)

स्टोन बाई स्टोन टु रेज ए सैक्रेड फेन,
ए टेम्पुल नाइदर पैगोड, मास्क, नार चर्च
बट लाफ्टियर, सिम्पलर, आलवेज ओपेन डोर्ड
टु एव्री ब्रेथ फ्राम हेवेन।

'राष्ट्रीयता' के अन्दर न केवल किसी देश के निवासियों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता का ही भाव आता है, वरन् उस देश के एक अपने व्यक्तित्व की बात भी आ जाती है। इस दृष्टि से जब हम भारतीय इतिहास की ओर देखते हैं, तो मालूम होता है कि सत्रहवीं शताब्दी के पश्चात् राष्ट्र-निर्माण के प्रयत्न भारत में यत्र-तत्र होतेही रहे हैं। छत्रसाल के मन में यह भावना सबसे पहले आई। वैसे मीर कासिम ने भी अपने ढङ्ग पर राष्ट्रीय स्वाभिमान जाग्रत करने का कुछ कम उद्योग नहीं किया। किन्तु ये सब स्फुट प्रयत्न थे। भारतीय जनता के साथ इन प्रयत्नों का कोई विशेष सम्बन्ध न था।

प्रथम युग : दागवेल

राष्ट्रीय आन्दोलन का क्रम तो राजा राममोहन राय के समय से चलता है, जिनकी ब्रिस्टल (इंग्लैड) में १८३० में दुःखद मृत्यु हुई। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी का प्रथमार्द्ध समाप्त होने के पूर्व राजनीतिक अधिकारों के लिए किसी सङ्गठित आन्दोलन का पता नहीं चलता। १८५३ ई० में हाउस ऑव कामन्स कमेटी ने जो रिपोर्ट तैयार की थी, उसमें भारत से आये हुए, कई संस्थाओं के प्रार्थना-पत्रों का जिक्र किया गया है। इन प्रार्थना पत्रों में कौंसिल तथा स्थानीय सरकारी बोर्डों में भारतीयों को प्रतिनिधित्व देने की प्रार्थना की गई थी। एक

ओर इन प्रार्थनाओं का क्रम चल रहा था और दूसरी ओर ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों की स्वतन्त्र लूट एवं देशी राजाओं के आन्तरिक मामलों में उनके अनुचित हस्तक्षेप के कारण देश के वातावरण में एक क्षोभ, असन्तोष की एक तीव्र ज्वाला भीतर-ही भीतर घनीभूत हो रही थी। १८५७ में यह ज्वालामुखी, जो भीतर-ही-भीतर सुलग रहा था, फूट पड़ा। इस समय पहली बार स्वतन्त्रता के लिए एक महान् एवं विशाल प्रयत्न हुआ। इस समय हिन्दू और मुसलमान सब एक हो रहे थे। कई इतिहास-लेखकों ने इसे 'सिपाही-विद्रोह' के नाम से पुकारा है और इतिहास की आत्मा का गला घोंटने की चेष्टा की है। यह भी कहा जाता है कि विद्रोह धार्मिक था, किन्तु यह बात बिलकुल असत्य है।

पश्चिम के संसर्ग में—कतिपय कारणों से भारत का यह प्रथम स्वातंत्र्य-प्रयत्न असफल हुआ और उसके बाद देश का शासन ब्रिटिश राज-कुल के हाथ में चला गया। महारानी विक्टोरिया के हाथ में शासन आने के बाद, उनकी घोषणा के फल-स्वरूप धीरे-धीरे पश्चिमी ढङ्ग की संस्थाओं से भारतीयों का परिचय बढ़ा एवं भारतीयों के मन में भी पाश्चात्य शासन-प्रणालियों के अध्ययन एवं विवेचन की इच्छा उत्पन्न हुई। इस इच्छा ने आकांक्षाओं को जन्म दिया। देश में अंग्रेजी शिक्षा का आरम्भ हो चुका था और इंग्लैंड अमेरिका इत्यादि के इतिहासों में देश के लिए जो दर्द, जो वेदना और 'अपना देश, अपना शासन' की जो प्रेरणाएँ छिपी थीं उनको पढ़ सुन और गुनकर भारतीयों के हृदय भी स्वतन्त्रता के स्वप्नों से भरने लगे। सार्वजनिक जीवन का जन्म हुआ और १९ वीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में तो ये भावनाएँ संस्थाओं का रूप भी पकड़ने लगीं।

पहली चोट—लार्ड लिटन का काल समाप्त हुआ और १८८० ई० में लार्ड रिपन भारत के वाइसराय हुए। उन्होंने अपने काल में कई प्रकार के शासन-सुधार किये। इनमें एक 'इलबर्ट बिल' भी था। इस

बिल में मुख्य बात यह थी कि यह भारतीय मजिस्ट्रेटों को भी यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा का मुकदमा सुनने और उन्हें दंड देने का अधिकार देता था। न्याय विभाग में से वर्ण-द्वेष को हटाने का यह एक प्रयत्न था, किन्तु इस मामूली सुधार ने भी भारत के यूरोपियनों में आग लगा दी, वायसराय का ऐसा तीव्र विरोध हुआ, जिसकी इतिहास में दूसरी मिसाल नहीं। उनके ऊपर यूरोपीय समाचारपत्रों में तीखे और गन्दे आक्रमण किये गये तथा उनको एक खास जहाज से इस देश से वापस इंग्लैंड भेज देने का भी प्रयत्न किया गया। इस मामले में यूरोपियनों का संघटन एवं उनकी भारत-विरोधी मनोवृत्ति देखर भारत की सुप्त आत्मा पर चोट लगी; लोगों को अपनी दयनीय स्थिति का भान हुआ और विभिन्न समाजों के बीच एकता का सूत्रपात हुआ। भारतीयों ने समझा कि बिना संघटित हुए काम न चलेगा।

जन-सेवा की दो प्रवृत्तियां—उनीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में जिस अंग्रेजी शिक्षा का भारत में आरम्भ हुआ, वह भारतीयों की मनोवृत्ति में धीरे-धीरे परिवर्तन कर रही थी। जहाँ पश्चिम के इस संसर्ग ने विश्वास में शिथिल हिन्दू युवक पैदा किये और जहाँ नई धारा दुर्बल एवं क्षीण विवेक के युवकों को बहा ले गई वहाँ जिनमें कुछ तत्त्व था, उन्हें उसने समाज एवं राष्ट्र के विषय में नये विचार भी दिये। पश्चिमी शासन-तन्त्रों, स्वतन्त्रता के इतिहासों एवं समाज-सेवा की संस्थाओं के परिचय में आने से उनमें भी स्वदेश में उनका प्रयोग करने की भावना प्रबल हुई। इस समय जिनमें जन-सेवा का भाव था उन्हें दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। एक वे जो दृढ़तापूर्वक अपने धर्म एवं अपनी संस्कृति का उद्धार करना चाहते थे। ऐसे लोगों में स्वधर्म और स्वदेश की रक्षा का भाव एक साथ जागरित हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में स्वामी दयानन्द एवं स्वामी विवेकानन्द इस भाव-धारा के सबसे प्रबल उन्नायक हुए। और बाद में लोकमान्य एवं मालवीयजी

भी किंचित बदले हुए रूप में, इसी स्कूल के पोषक रहे हैं।

दूसरा दल उन लोगों का था जो यह मानते थे कि ज्ञान सार्वदेशिक वस्तु है और यूरोप में कोई विशेषता हो, तो उसे ले लेने में क्या हर्ज है? ये लोग यूरोपीय सामाजिक एव राजनीतिक संस्थाओं के इतिहास से प्रभावित हुए थे और इन्हें अपने पतन का कारण अपनी सामाजिक एवं धार्मिक कमजोरियों में ही दिखाई दे रहा था। इन लोगों ने उदारता-पूर्वक अपनी रहन-सहन, सामाजिक रीति-नीति एवं धार्मिक विश्वासों में समयानुकूल परिवर्तन आरम्भ किया।

द्वितीय युग: राष्ट्रीयता का बालपन

कांग्रेस का जन्म—ये दोनों दल अपने-अपने ढङ्ग से भारतीय समाज में धीरे-धीरे जागरण पैदा कर रहे थे। इस सम्बन्ध में, इन प्रेरणाओं के कारण, अनेक प्रकार की सार्वजिनक संस्थाएँ स्थापित हो चुकी थीं और बंगाल एवं महाराष्ट्र में धीरे-धीरे राष्ट्रीय भावना जागरित हो रही थी। इन सब शक्तियों के योग से १८८५ ई० में राजनीति को लेकर कांग्रेस का जन्म हुआ। सर्व श्री ए० सी० ह्यूम, फिरोजशाह-मेहता, काशीनाथ तैलङ्ग, दीनशा वाचा इत्यादि इसके जन्मदाताओं में थे। प्रथम अधिवेशन २६ दिसम्बर १८८५ को बम्बई में कलकत्ता के प्रसिद्ध बैरिस्टर श्री उमेशचन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में हुआ।

इस संस्था ने भारतीय राजनीति में अत्यंत महत्वपूर्ण अभिनय किया है और आज यह देश की सबसे शक्तिमान राष्ट्रीय संस्था है। एक प्रकार से इसका इतिहास ही भारतीय राष्ट्रीयता के विकास का इतिहास है। आरम्भ में तो यह संस्था सरकार एवं भारतीय जनता के बीच सहयोग के आधार को लेकर चली थी। इसीलिए गवर्नरों एवं वायसरायों ने इस पौधे में पानी डाला। पर सार्वजनिक मत का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाएं शासन-तंत्र की छाया में कभी पनप नहीं सकतीं।

शासन-संस्था(Executive Govt)—अपने भौतिक दृष्टिकोण

से वस्तुओं एवं समस्याओं को देखती है और अपने सर्वाधिकार को लेकर चलती है, जब कि सार्वजनिक जीवन नैतिक आधार पर खड़ा होना चाहता है और जन-समाज की स्वीकृति से पनपता है। फलतः आवेदन निवेदन के मार्ग पर डरती-डरती बढ़नेवाली इस संस्था के सम्बन्ध में भी वही बात पैदा हुई। शासकों की निरन्तर उपेक्षा, गोरे-काले के वर्णभेद ने आशाओं के वे सुनहरे स्वप्न तोड़ दिये। निराशा आई और पङ्ख लगे। अपनी आत्मा की कीमत पर खरीदे हुए चारों एवं पुचकारों से निराश भारतीय जनमत का पक्षी डैनों को फटकार कर उठा और मुक्त गगन में उड़ चलने की आकांक्षा उसके हृदय में पैदा हुई।

× × ×

वङ्ग-भङ्ग—१८९९ में लार्ड कर्जन भारत में वाइसराय बनकर आये। उनका शासनकाल भारतीय इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात्र करता है। इस समय तक सारा राष्ट्रीय आन्दोलन शिक्षित हिन्दू युवकों तक ही सम्बद्ध था। बङ्गाल और महाराष्ट्र के हिन्दू इस क्षेत्र में बहुत आगे बढ़े हुए थे। बङ्गाल में दिन-दिन राष्ट्रीय भावना फैलती जा रही थी। लार्ड कर्जन ने इस प्रगति को रोकने और उसपर अंकुश रखने के लिए दो उपाय किये। सबसे पहले उन्होंने, १९०४ में विश्वविद्यालओं के लिए कानून बनाकर शिक्षा की बागडोर सरकार के हाथ में दे दी। इससे भारत के शिक्षित युवकों में असन्तोष फैल गया। इधर यह किया गया, उधर बंगाल में बढ़ती हुई जागृति का बल तोड़ने के लिए भेद डालकर शासन करने की नीति का व्यवहार किया गया। मुसलमानों के प्रभाव को बढ़ाकर जाग्रत एवं राष्ट्रवादी हिन्दुओं के मुकाबिले में सन्तुलन बनाये रखने के ख्याल से १९०५ ई० में बंगाल को टुकड़ों में बाँट दिया गया, यद्यपि कहा गया कि शासन की सुविधा के लिए ऐसा किया जा रहा है। समस्त वङ्ग ने

एक स्वर से इसका विरोध किया; पर उसके विरोध पर कोई ध्यान न दिया गया। इस घटना का यह परिणाम हुआ, जो वर्षों के प्रचार, सेवा और उपदेश से होना सम्भव न था। ७ अगस्त १९०५ को सरकार ने घोषणा की। सारे बंगाल में जैसे तूफान उठ खड़ा हुआ। छोटे-बड़े किसान ज़मींदार, सभी इस विरोध-प्रदर्शन में शामिल हुए। कासिम बाजार के महाराजा सर मणीन्द्रचन्द्र नन्दी की अध्यक्षता में कलकत्ता में विराट सभा हुई और सब प्रकार की विदेशी चीजों के बहिष्कार का निश्चय हुआ। १६ अक्टूबर का दिन रक्षा बन्धन दिवस के रूप में मनाया गया। सब लोग एक दूसरे को राखी बाँधते फिरते थे और 'हम एक हैं' यह भाव चारों ओर समुद्र के ज्वार की भाँति फैलता जाता था।

इस नव जागरण को दबाने के लिए सरकार दमन, धर-पकड़ करती रही; पर प्रवाह नहीं रुका। अनेक, उच्च शिक्षित युवकों पर पश्चिम का ऐसा असर था और उस मानसिक स्थिति में अरविन्द की आध्यात्मिक शिक्षा का कुछ ऐसा रंग पड़ा था कि उन्होंने रूसी तथा यूरोपीय क्रांतिकारियों एवं षड्यन्त्रकारियों की नकल की। दो तीन वर्ष के अन्दर ही एक व्यापक क्रांतिकारी दल प्रकट हुआ। अनेक स्थानों पर बम काण्ड हुए।

इधर बंग-भंग हुआ, उधर १९०५ में काशी की कांग्रेस गोखले की अध्यक्षता में हुई। इसमें लाला लाजपतराय ने कहा—"एक अंग्रेज भीख माँगने से अधिक किसी बात को घृणा या नापसन्द नहीं करता। मैं समझता हूँ कि भिक्षुक इसी योग्य है कि उससे घृणा की जाय। इसलिए अंग्रेज को यह दिखा देना हमारा कर्त्तव्य है कि हमें अपनी अवस्था का अनुभव हो गया है और अब हम भिक्षुक नहीं...।" इस कांग्रेस के बाद देश में स्वदेशी और विदेशी वस्तु-बहिष्कार के आन्दोलन ने खूब ज़ोर पकड़ा। उधर देश में दो राजनीतिक दल हो गये—गरम,

नरम। पहले में लाल-बाल-पाल (लाला लाजपत राय, बाल गङ्गाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल) प्रधान थे और दूसरे में सर्वश्री फीरोजशाह मेहता, गोखले, सुरेन्द्रनाथ, मालवीय इत्यादि थे। देश में चारों ओर 'लाल-बाल-पाल' की धूम थी।

काशी की काँग्रेस के बाद देश की स्थिति और भयंकर हो गई। बंगाल में दमन से घोर असन्तोष और क्षोभ पैदा हुआ। धर-पकड़ और तलाशियों की धूम मच गई। उसी साल कलकत्ता में दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में कांग्रेस हुई। उन्होंने साफ-साफ कहा कि स्वराज ही इन सब मर्जों का दवा है।

पंजाब की जागृति—धीरे धीरे बङ्गाल की छूत पंजाब में भी पहुँची। १९०७ में तो पंजाब क्षुब्ध सा हो रहा था। उस समय पंजाब और बङ्गाल की जागृति का क्या कहना था। देश ने १८५७ के ५० वर्ष बाद अपने अन्दर एक नयी चेतना का अनुभव किया था। जिस प्रकार बंगाल के प्राणों से 'के बले मा तुमि अबले' ? का स्वर उठ रहा था, वैसे ही पंजाब के घर घर में 'पगड़ी सँभाल ओ जट्टा !' गीत गाये जा रहे थे। पंजाब के जाटों की जागृति से सरकार घबरा गई। अन्त में सरकार अजीत सिंह और लाला लाजपत राय निर्वासित कर दिये गये। महाराष्ट्र के नाटो-बन्धुओं का निर्वासन पहले ही हो चुका था। इन निर्वासनों से देश में और असन्तोष फैला।

तृतीय युग : उग्र दल का जन्म और विकास

वंग-भग के इन्हीं तूफानी दिनों में सूरत की कांग्रेस हुई। यहाँ से भारतीय राजनीति में एक नई धारा पैदा होती है। इस कांग्रेस में नरम दल वालों ने 'स्वराज्य' की जगह 'औपनिवेशिक स्वराज्य' रखना चाहा, जो गरम दल वालों को स्वीकार न था। इस पर बड़े झगड़े हुए और कांग्रेस का दरवाजा गरम दल वालों के लिए बन्द हो गया।

यह दरवाजा १० वर्ष तक बन्द रहा और अन्त में १६१३ में खुला। इससे गरम दल वालों को जनता में जाकर काम करने का मौका मिला और दिन-दिन उनकी लोक-प्रियता बढ़ती गई।

उत्पादक शक्तियों की दृष्टि से लें, तो बंग-भंग जैसा युग फिर हमारे राष्ट्रीय जीवन में न आया। बंग-भंग में भारत ने साहित्य में, विज्ञान में, कला-कौशल में—प्रत्येक क्षेत्र में—जिस अद्भुत भावावेश की अनुभूति की और उसके कारण जो सृजन हुआ, वह फिर न हुआ। प्रत्येक क्षेत्र में इस जागृति का प्रवाह दिखाई दिया। भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में वंग-भंग का स्थान लगभग 'रिनैंसां'-जैसा है। इसने हमारा दृष्टिकोण बदल दिया और हमारी मानसिक जागृति पहली बार प्रत्यक्ष रूप से विदेशी शासन-शक्ति के सामने खड़ी हुई।

दमन और मार्ले के सुधार

इस प्रबल आन्दोलन को दबाने के लिए सरकार बराबर दमन करती गई। अखबारों को दबाने तथा और कितनी ही बातों के लिए कानून बनाये गये। अनेक स्थानों पर सभाओं का बुलाना गैर-कानूनी करार दिया गया। 'स्पेशल क्राइम्स ऐक्ट' पास हुआ, जिसके अनुसार राजनीतिक कैदियों के 'समरी ट्रायल' हो सकते थे और सभाएँ भंग की जा सकती थीं। १८१८ ई० के बंगाल रेगुलेशन की तीसरी धारा के अनुसार लोग निर्वासित किये गये। सब तरफ दमन का सहारा लिया गया। यहाँ तक कि इँग्लैण्ड का इतिहास पाठ्यक्रम से निकाल दिया गया; क्योंकि अधिकारियों ने समझा कि इसे पढ़कर विद्यार्थियों में स्वाधीनता की नवीन प्रेरणा पैदा होती है। पर इस दमन से जनता की भाव-धारा को दबाया न जा सका। मार्ले ने देखा कि बिना किसी सुधार के काम नहीं चल सकता। अधिकारी उनके विचारों के विरोधी थे, किन्तु मार्ले की दृढ़ता अन्त में विजयिनी हुई और फरवरी १६०६ में

उन्होंने पार्लमेण्ट से भारतीय कौंसिलों के सुधार की योजना पास करा ली, जो 'मार्ले-मिण्टो सुधार' के नाम से विख्यात है।

सम्राट एडवर्ड के देहांत के बाद सम्राट जार्ज पञ्चम राज्याभिषेक के लिए भारत बुलाये गये और उनके द्वारा घोषणा करा के बङ्गाल के दोनों भागों को मिला दिया गया। इस प्रकार बङ्गभंग आंदोलन तो समाप्त हो गया, पर वंग-भंग ने शक्ति की जो धारा हमारे जीवन में बहाई, उसका उपयोग हम उचित रूप में न कर सके। निरंतर लगन के साथ चलने वाली ठोस राष्ट्रीयता की जगह वह भाव-प्रवाह के रूप में बदल गई। जिन लोगों के हाथ में राष्ट्रीयता का नेतृत्व था, वे इस धारा से लाभ न उठा सके, बल्कि अपनी जीवनहीनता, अपनी अकर्मण्यता, अपनी जरूरत से ज्यादा सावधान और संदिग्ध रहने की प्रवृत्ति के कारण वे तट पर खड़े रह गये; धारा आगे बढ़ गई। वे उसका नेतृत्व न कर सके।

उग्र दल—पर जहाँ माडरेट नेता समय की गति के अनुकूल अपने को न बना सकने के कारण पिछड़ते जा रहे थे, तहाँ कार्यक्रम की अव्यावहारिकता एवं कोरी आदर्शवादिता के कारण क्रान्तिकारी भारतीय आकांक्षा की पूर्ति न कर सकते थे। इसलिए इन दोनों के बीच इनके मिश्रण सा एक तीसरा दल भारतीय राजनीति में पैदा हुआ। माडरेटों—नरमों ने व्यङ्ग के तौर पर उसे उग्रदल (एक्सट्रीमिस्ट) के नाम से पुकारा और सर्वसाधारण में नरम के जोड़ वाले नाम 'गरम दल' से प्रसिद्ध हुआ। तिलक, लाजपतराय, शिशिरकुमार घोष अरविंद इत्यादि इसके नेता थे। १९०७ से लेकर १९१८ ई० तक का समय इस दल के क्रमिक विकास और निर्माण का समय है।

× × +

महायुद्ध में भारत की सेवा—इधर वंग-भंग आंदोलन बन्द हुआ, उधर युरोप की राजनीतिक अवस्था बड़ी जटिल होती जा रही

थी। तूफान आने के लक्षण प्रकट हो रहे थे। वहाँ के कई राष्ट्र एक दूसरे को कुचलने के लिए वर्षों से भीतर ही भीतर तैयारी कर रहे थे। अन्त में वही हुआ जो होना था। युद्ध का शङ्खनाद हुआ। भीषण युद्ध छिड़ गया। उस समय भी यद्यपि क्रांतिकारियों का एक दल ऐसा था, जो हर उपाय से इस परिस्थिति का लाभ उठा कर देश को स्वतन्त्र करने में सचेष्ट रहा, पर सब मिलकर देश ने इस कठिन अवसर पर ब्रिटेन का साथ दिया। १९१७ ई० में कौंसिल से एक अरब पचास करोड़ रुपये भारत द्वारा युद्ध-फण्ड में सहायता-स्वरूप देने का प्रस्ताव पास कराया गया।

मजा तो यह है कि जब भारत इस प्रकार आड़े समय ब्रिटेन का साथ दे रहा था तब 'भारत रक्षा कानून' (डिफेंस ऑव इण्डिया ऐक्ट) के अन्तर्गत सैकड़ों युवक नजरबन्द कर लिये गये।

\+ + ×

१९१६ से भारतीय राजनीति में एक ऐसा पुरुष आया, जिसने आगे चलकर सारा नक्शा बदल दिया। १९१३ के दिसम्बर में लखनऊ कांग्रेस हुई और उसमें नरम गरम दल में समझौता हो गया। समझौता तो क्या, एक प्रकार से यह गरम दल की विजय थी। १९१६ से २० तक का समय चम्पारन, खेड़ा इत्यादि के सत्याग्रहों में युगपुरुष सत्याग्रही गांधी के निर्माण का समय है। इस काल में लोगों में आत्म-विश्वास की लहर फैलने लगी। इस प्रकार भारतीय राजनीति के क्षेत्र में दो भाव-धाराएँ बड़े प्रबल वेग से आईं। एक तो यह कि भारत को स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार मिलना चाहिए। यह महायुद्ध तथा समग्र विश्व, विशेषतः एशिया, में फैलती हुई स्वतन्त्रता के प्रवाह का फल था। दूसरी भावना व्यावहारिक थी और उसका उद्देश्य शासन-सम्बन्धी दोषों को दूर करना था।

आशा पर तुषारपात—योरोपीय महायुद्ध पिछड़ी हुई जातियों के

स्वभाग्य-निर्णय के सिद्धान्त की आड़ में लड़ा गया था। इसलिए ज्यों-ज्यों युद्ध का अन्त नजदीक आया भारतवासियों की उत्सुकता बढ़ने लगी। परन्तु होना कुछ और था। महायुद्ध की समाप्ति हो रही थी। उधर सरकार ने भारतीयों की सेवाओं का उचित पुरस्कर देने के बदले कतिपय हत्याकाण्डों एवं षड्यन्त्रों का बहाना लेकर जनता के अधिकारों में और कमी करने का निश्चय कर लिया। इसके लिए रौलट कमेटी बैठी और रौलट बिल कौंसिल में पेश हुआ। उसका एक स्वर से सम्पूर्ण भारत में विरोध हुआ। विरोध की सभाओं की धूम मच गई।

पञ्जाब हत्याकाण्ड—इस भारतव्यापी विरोध की भी सरकार ने उपेक्षा की। कानून बन गया। गांधीजी ने वायसराय को बहुत लिखा, आर्जू-मिन्नत की पर उसका कुछ ख्याल न किया गया। अन्त में विवश होकर सत्याग्रह का निश्चय करना पड़ा। बम्बई में गांधीजी की अध्यक्षता में, केन्द्रीय सत्याग्रह समिति की स्थापना हुई। २८ फरवरी १६१६ को गांधीजी ने वह प्रसिद्ध प्रतिज्ञा-पत्र निकाला, जिसमें इस कानून को न मानने की घोषणा थी। इस पर लोगों के दस्तखत लिये गये। गांधीजी देश में घूमकर लोगों को सत्याग्रह का मर्म समझा रहे थे, एक नई युद्ध शैली की दागवेल पड़ रही थी। ६ अप्रैल का दिन भारतव्यावी उपवास, हड़ताल एवं सभा के लिए नियत था। जब्त किताबें बेचने का कार्यक्रम रक्खा गया। १० तरीख को दिल्ली जाते हुए गांधीजी गिरफ्तार किये गये। उनकी गिरफ्तारी से देश में बड़ी उत्तेजना फैली। कई स्थानों में दंगे हो गये। पंजाब में तो सरकार ने दङ्गों के कारण सैनिक शासन जारी कर दिया। अमृतसर के जालियाँवाला बाग की सभा में अनेक शान्त और निर्दोष व्यक्ति जेनरल डायर की गोलियों के शिकार हुए। बहुत से निरपराधों का रक्त बहा। लोगों को नाक के बल चलवाया गया। इस हत्याकाण्ड ने वह असन्तोष और जागृति उत्पन्न की जो कभी देखी न गई थी। बड़ा व्यापक

विरोध हुआ। फलतः सरकार की ओर से जाँच के लिए हण्टर कमेटी बैठी। राष्ट्रीय महासभा ने उसका बहिष्कार किया और अपनी दूसरी कमेटी बैठाई, जिसने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। निन्दनीय कानून के अनुसार सैकड़ों पंजाबियों को जेल भेजा गया; दमन जोरों से हो रहा था; पर व्यापक सार्वजनिक विरोध के कारण सरकार ज्यादा दिन तक वह नीति कायम न रख सकी। फलतः दिसम्बर के पहले बहुत से राजनीतिक कैदी छोड़ दिये गये। उधर नवीन सुधारों की योजना (माण्टेग्यू चेम्सफर्ड स्कीम) प्रकाशित हो चुकी थी, जो अत्यन्त असन्तोषप्रद थी; पर कैदियों की मुक्ति, अली-बन्धुओं की रिहाई से गांधीजी ने समझा कि सरकार को अपने कार्यों पर पश्चात्ताप है, इसलिए अमृतसर कांग्रेस (१९१९) में सुधारों के अपर्याप्त एवं असन्तोषप्रद होते हुए भी उन्होंने उनका समर्थन किया, पर शीघ्र ही गांधी जी का यह भ्रम दूर हो गया। खिलाफत के मामले में मुसलमानों के साथ अन्याय हुआ था, उधर इंग्लैंड में डायर की निन्दा करने की जगह उसका स्मारक बनाया जा रहा था और उसे थैली भेंट की जा रही थी। इसलिए कांग्रेस का नया संगठन किया गया। सितम्बर १९२० में कलकत्ता की विशेष कांग्रेस में उन्होंने असहयोग-आन्दोलन का कार्यक्रम पेश किया, जो पास हो गया और दिसम्बर में नागपुर कांग्रेस ने उस पर स्वीकृति दे दी। १९२० से देश की स्वाधीनता के इतिहास में स्वावलम्बन के एक नये युग का आरम्भ हुआ।

चतुर्थ युग : स्वावलम्बी राष्ट्रीयता

गांधी की देन—गांधी का आगमन भारतीय राजनीति की एक घटना है। उनका प्रयोग भारतीय राजनीति तथा विश्वराजनीति—में एक नया प्रयोग था। वह शुद्ध नैतिक आधारों को लेकर खड़ा हुआ। शरीर-बल की जगह आत्म-बल को प्रतिष्ठित किया गया। इसने राष्ट्रीय

संग्राम को प्रधानतः सांस्कृतिक संग्राम बना दिया। शताब्दियों के बाद सार्वजनिक जीवन में दृढ़ता से यह स्वर सुन पड़ा कि मनुष्य केवल रोटी खाकर नहीं जी सकता। भारत का राष्ट्रीय व्यक्तित्व अपने को भूल रहा था, गांधीजी ने उसे फिर जगाया। १६२० के बाद की राष्ट्रीय अभिव्यक्ति बहुत करके गांधीजी के व्यक्तित्व का प्रकाश है। इससे गांधी और राष्ट्र का व्यक्तित्व एक में मिल गया। राष्ट्र एवं युगपुरुष के एक हो जाने से जो साधना गांधी की आत्मा में चल रही थी, वही हमारे सामने व्यक्त हुई।

असहयोग का जमाना—असहयोग के साथ पहली बार हमारी राष्ट्रीयता उद्बुद्ध होकर खड़ी हुई और उसने सार्वजनिक रूप प्राप्त किया। असहयोग के तूफानी दिनों में राष्ट्र ने पहली बार व्यापक उद्वेलन का अनुभव किया। गाँव और शहर एक हो रहे थे। बूढ़े और जवान, पिता और पुत्र, माएँ और बेटियाँ, बहिनें और पत्नियाँ एक साथ उठ खड़ी हुई थीं। प्राणों में पीड़ा, जीवन में उन्माद, हृदय में विश्वास, आँखों में आत्मोत्सर्ग का तेज तथा गालों पर आशा-निराशा की धूपछाँह लिये राष्ट्र का शरीर आन्दोलन से काँप रहा था। अदालतों, कौंसिलों एवं स्कूलों का बहिष्कार हुआ। लोगों ने उपाधियाँ लौटा दीं। लगभग पच्चीस हजार आदमी जेल गये। बारडोली में सत्याग्रह संग्राम आरम्भ होने की तैयारियाँ हो रही थीं कि शुद्ध अहिंसा पर प्रतिष्ठित होने के कारण, चौरी-चौरा का हत्याकांड होते ही गांधीजी ने उसे स्थगित कर दिया। उधर १० मार्च १६२२ को गांधी जी गिरफ्तार कर लिये गये और राजद्रोहपूर्ण लेख लिखने के अपराध में उन्हें ६ वर्ष की सजा हुई।

प्रतिक्रिया—गांधीजी की अनुपस्थिति में नेतागण देश के सामने कुछ ठीक कार्यक्रम न रख सके। उस अभूतपूर्व जागृति की प्रतिक्रिया शुरू हुई। हिन्दू-मुस्लिम एकता का सोता सूख गया और साम्प्रदायिक

दङ्गों का एक भयानक युग आया। उधर लोगों में पुनः कौंसिलों का मोह जागरित हुआ। राष्ट्रीय जीवन विशृङ्खल हो गया। सम्प्रदाय-वादियों का जोर बढ़ गया। हिन्दू-सङ्गठन, शुद्धि और तबलीग का जमाना आया। राष्ट्रीय एकता का वसन्त चला गया। वह दीवानापन, वह मस्ती, जिसने शताब्दियों के दर्दनाक कारनामों को धो बहाया था, पता नहीं कब खत्म हो गई। जहाँ भाई-भाई मिलते थे, जहाँ दिल्ली की जामा मस्जिद में कट्टर आर्य समाजी नेता श्रद्धानन्द का 'वाज़' (उपदेश, प्रवचन) होता था, जहाँ मुसलमान हिन्दुओं को त्योहारों पर शर्बत पिलाते थे और हिन्दुओं ने मुसलमानों के लिए दिल का दरवाजा खोल दिया था, वहाँ यह क्या हो गया! भारत के राष्ट्रीय जागरण की यह अद्भुत प्रतिक्रिया थी;—स्वप्न-जैसा। मानो कल ही ब्याह कर आई लड़की आज विधवा हो गई हो!

१६२२ से २६ तक का समय गांधीवादियों द्वारा निरन्तर तैयारी का समय है। इस युग में एक ओर साम्प्रदायिकता की आँधी चलती रही; दूसरी ओर परिवर्तनवादियों (स्वराज्य दल वालों) का कौंसिलों में जाकर अड़ङ्गा डालने की नीति का दौर-दौरा रहा और तीसरी ओर अपरिवर्तन-वादियों ने ठोस विधायक कार्य की ओर ध्यान दिया। पर १६२२ के बाद सामान्य मुसलमान राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग होगया।

पूर्ण स्वाधीनता का निश्चय—इस अवधि में सर्वदल-सम्मेलन द्वारा स्वीकृत एक शासन विधान तैयार किया गया। इसमें औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की गई थी। उधर देश में युवकों का एक दल खड़ा हो गया था जो पूर्ण स्वतन्त्रता से कम में सन्तुष्ट होने के लिए तैयार न था। १६२८ की कलकत्ता कांग्रेस में यह भेद स्पष्ट दिखाई दिया। अन्त में दोनों दलों में समझौता हुआ और ३१ दिसम्बर १६२६ तक का समय सरकार को इस औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग को पूरा करने के लिए दिया गया और यह भी निश्चय हुआ कि यदि सरकार

इस अवधि में माँग पूरी न करे, तो कांग्रेस का ध्येय बदलकर पूर्ण स्वतन्त्रता कर दिया जाय।

अन्त में ३१ दिसम्बर १९२९ को, सरकार द्वारा उचित जवाब न मिलने पर, लाहौर कांग्रेस से पूर्ण स्वतंत्रता के ध्येय का निश्चय हुआ। राष्ट्रीयता ने एक पग आगे बढ़ाया।

सत्याग्रह—२६ जनवरी १९३० को सारे देश में स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया और स्वतन्त्रता की घोषणा दुहराई गई। गांधीजी ने अपनी 'शर्तें' सरकार के सामने पेश कीं; पर इन बातों से क्या होना जाना था। महात्माजी ने देश को तैयार करना शुरू किया। कांग्रेस-कार्यकारिणी ने आन्दोलन के सम्बन्ध में उन्हें सर्वाधिकार दे दिया। गांधीजी ने वायसराय को एक पत्र लिखा, जिसमें भारत की माँगों के विषय में अन्तिम अपील की। अत्यन्त असन्तोषजनक उत्तर मिलने पर १२ मार्च १९३० को साबरमती आश्रम के ७९ सहयोगियों के साथ नमक-कानून भङ्ग करने के लिए गांधीजी ने दाँड़ी यात्रा आरम्भ की। ६ अप्रैल को उन्होंने दाँड़ीमें नामक काननू भंग किया। बस, सारे देश में सत्याग्रह युद्ध छिड़ गया। गिरफ़्तारियाँ होने लगीं। ५ मई को गांधी जी की गिरफ्तारी के बाद तो अनेक प्रकार के कानून तोड़े जाने लगे। आर्डिनेंस जारी किये गये। अखबारों के मुँह बन्द कर दिये गये। राष्ट्रीय संस्थाएँ गैर-कानूनी करार दी गईं। स्त्रियों में इस आन्दोलन से अभूतपूर्व जागृति हुई। लगभग एक लाख आदमी जेल गये। अंत में सरकार झुक गई। सरकार एवं कांग्रेस के बीच समझौता हुआ, सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये गये; करांची में धूमधाम से कांग्रेस हुई और उसके निश्चयानुसार कांग्रेस के एक मात्र प्रतिनिधि की हैसियत से गांधीजी गोलमेज सम्मेलन में सम्मिलित हुए। पर सरकारने इस संधि-काल को अपनी तैयारी में लगाया। उधर गांधीजी इंग्लैंड में थे, इधर युक्तप्रान्त के किसानों के लगान में कमी करने की माँगों को ठुकराकर

तथा सीमाप्रान्त एवं बङ्गाल में आर्डिनेंस जारी करके सरकार ने विषम स्थिति उत्पन्न कर दी। उधर गांधीजी को भी मालूम हो गया कि सरकार वास्तविक अधिकार देने को उत्कंठित नहीं है, वह कोरे शब्द-जाल में लोगों को फँसाना चाहती है। वहाँ से वह बहुत निराश होकर लौटे। तुरन्त ही कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक बम्बई में हुई। उसमें जाते हुए जवाहरलालजी गिरफ्तार कर लिये गये। इतने पर भी नवीन वायसराय लार्ड विलिङ्गडन से मिलकर विचार करने के लिए गांधीजी ने पत्र लिखा; पर वायसराय ने मिलने से इन्कार कर दिया। वस्तुतः सरकार ने लड़ाई की सब तैयारी पहले ही से कर ली थी। मजबूर होकर कांग्रेस को फिर सत्याग्रह आन्दोलन जारी करना पड़ा। इस बार का शासन तो शुद्ध आर्डिनेंसों का शासन था।

परन्तु इतना बड़ा देश-व्यापी आन्दोलन बिना किसी पूर्व तैयारी एवं संगठन के कब तक चल सकता था? धीरे-धीरे उसमें शिथिलता आ गई। उधर गांधीजी ने हरिजनों के लिए प्रायोपवेशन आरम्भ किया जिसके फलस्वरूप अन्त में उनको मुक्ति और पूना का समझौता हुआ। कांग्रेस का सत्याग्रह आन्दोलन शिथिल हो चुका था, अतः वह स्थगित हुआ। इस अवधि में देश में दो दल और पैदा हो गये। एक जो कौंसिलों में जाने को उत्सुक था और दूसरा दल जो अपने को कांग्रेस समाजवादी कहता था। दूसरा दल वह है, जो रूसी क्रान्ति तथा मार्क्स की भावनाओं से प्रभावित है और गांधीजी की आध्यात्मिक प्रवृत्तियों एवं उनके नेतृत्व से असन्तुष्ट रहा है। और वह पूर्ण राजनीतिक स्वाधीनता के साथ जनता को पूर्ण आर्थिक स्वाधीनता भी चाहता है और हिंसा-अहिंसा के बीच भेद नहीं रखना चाहता।

१९३५ में कौंसिलवादियों का प्रभाव कांग्रेस में बढ़ गया। निर्वाचन का समय आ गया था। उसमें भाग लेने का निश्चय किया गया। देश में कांग्रेस नेताओं ने दौरा करके जनता में एक नवीन भावावेश

पैदा कर दिया। चुनाव में कांग्रेस की अभूतपूर्व विजय हुई। बाद में ब्रिटिश सरकार से कुछ आश्वासन प्राप्त कर कांग्रेस ने बम्बई, मद्रास, मध्यप्रांत, युक्तप्रांत, बिहार, उड़ीसा में मन्त्रिपद ग्रहण किया। सीमाप्रांत और आसाम में भी कांग्रेस के प्रभाव में सरकार बनाई गई। कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने राष्ट्र के अनेक पुनर्निर्माणकारी कार्यों की नींव डाली। किसानों की कठिनाइयाँ घटाने वाले कानून बनाये गये; शिक्षाप्रसार का सामूहिक कार्य आरम्भ किया गया; शराबबन्दी की योजना कई प्रान्तों में बनाई गई; शिक्षण क्रम के विषय में नवीन और युगांतरकारी भावनाएँ एवं योजनाएँ सामने आईं। सारे देश में एक नया वातावरण छा गया; सितम्बर १९३९ में ब्रिटिश सरकार ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की; युद्ध-घोषणा में, व्यवस्थापक सभाओं या प्रतिनिधियों की अनुमति के बिना भारत को भी शरीक कर लिया गया। देश में इसका विरोध हुआ। कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने ब्रिटिश सरकार की इस नीति के विरोध में इस्तीफे दे दिये। फलतः अनेक प्रांतों में उच्छृङ्खल शासन स्थापित हो गया।

युद्ध काल में—जब से ब्रिटेन इस युद्ध में शरीक हुआ उसकी ओर से बराबर कहा जा रहा था कि यह युद्ध स्वाधीनता और लोकतंत्रवाद की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है। कांग्रेस ने यह माँग पेश की कि यदि युद्ध का यही मन्तव्य है तो ब्रिटेन को युद्ध के बाद भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा अभी से कर देनी चाहिये। और इस समय से शासन-कार्य उसी भावना के अनूकूल हो जाना चाहिये। गांधीजी तो सब प्रकार के युद्धों के विरुद्ध थे और अहिंसा के पूर्ण अनुयायी होने के कारण वह युद्ध में कोई पक्ष लेने के भी विरुद्ध थे। पर कांग्रेस में 'अहिंसा' की 'आइडियालोजी' (विचारधारा) बदल रही थी; श्रीराजगोपालाचार्य, मौलाना आजाद, पं० जवाहरलालजी वगैरा ऐसे खतरे के समय सिद्धान्त-पालन के नाम पर इतनी दूर जाने को तैयार न थे। वे लोग

चाहते थे कि यदि ब्रिटिश सरकार कांग्रेस की माँग को स्वीकार करले तो हम युद्ध में ब्रिटिश पक्ष का सहयोग करते हैं। पर उत्तर में ८ अगस्त १९४० ई० को भारतसचिव श्री एमरी ने एक ऐसी घोषणा की जिससे कांग्रेस क्या किसी राजनीतिक दल को सन्तोष न हुआ, और ब्रिटेन के अपने युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों को स्पष्ट कर देने की माँग बराबर जारी रही। दिसम्बर १९४० में कांग्रेस ने बताया कि वह कम से कम किन शर्तों पर शासन में सहयोग करने को तैयार है। इन माँगों में एक केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार को स्थापना की माँग भी थी। ब्रिटिश सरकार की ओर से इसका कोई संतोषजनक उत्तर न मिलने पर गांधीजी को कांग्रेस की ओर से आन्दोलन चलाने का सर्वाधिकार दिया गया। गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाया। इसका उद्देश्य भाषण और लेखन-स्वातंत्र्य के साथ कांग्रेस के रुख को स्पष्ट करना था। शर्तें ऐसी रखी गई थीं जिनसे भारत में ब्रिटिश सरकार को कोई कठिनाई इसके कारण न हो। यह आन्दोलन एक नैतिक विरोध मात्र था।

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति दिन पर दिन बिगड़ रही थी। जून १९४१ में जर्मनी ने रूस पर हमला कर दिया। इससे उन लोगों को बल मिला जो कह रहे थे कि यह युद्ध फासिस्ट और लोकतन्त्रवादी शक्तियों का युद्ध है। ब्रिटेन में भी आन्दोलन हो रहा था कि भारत की माँगें पूरी करके वहाँ राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की जाय। भारत-सरकार ने अपनी सदिच्छा के प्रदर्शन के रूप में सत्याग्रही कैदियों को छोड़ दिया। कांग्रेस ने भी वैयक्तिक सत्याग्रह उठा लिया। समझौते का बाजार गरम हुआ पर कोई परिणाम न निकला।

अटलांटिक चार्टर—इस समय ब्रिटिश सरकार की सहमति से संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने युद्ध के लक्ष्यों के सम्बन्ध में एक घोषणापत्र प्रकाशित किया, जो सामान्यतः 'अटलांटिक चार्टर' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें भारत की स्वतन्त्रता का कोई जिक्र न था। यही नहीं,

स्थिति स्पष्ट किये जाने की माँग पर ब्रिटेन के प्रधान मंत्री चर्चिल ने स्पष्ट कर दिया कि भारत का प्रश्न बिलकुल भिन्न है और यह चार्टर केवल युरोपीय देशों की स्वतन्त्रता के लिए है। अब तो यह भी प्रगट हो गया है कि अटलांटिक चार्टर कोई अधिकृत कागज नहीं था।

इन बातों से भारत में काफी नाराजी फैली। इस स्थिति से कोई राजनीतिक दल सन्तुष्ट न था। इसी बीच एक ऐसी घटना हो गई जिससे अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और भी भयङ्कर तथा जटिल हो गई। पूर्व में युद्ध के आरम्भकाल से जापान बराबर अपने हाथ-पांव फैला रहा था। चीन में कार्रवाई करने की पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग यह बराबर करता रहा। धीरे-धीरे शंघाई, हांगकाँग इत्यादि बन्दरों पर उसका वास्तविक प्रभुत्व होता गया। ब्रिटेन टालमटोल करता रहा। जापान की माँग पर उसने चीन को सामान देना बन्द कर दिया। पर जापान की की आकांक्षाएँ बढ़ती जा रही थीं। धीरे-धीरे अमेरिका इस युद्ध की ओर अग्रसर हो रहा था। युद्ध-सामग्री की सहायता तो वह मित्रराष्ट्रों को देने भी लगा था। उसी के अनुरोध से बर्मा रोड चीन के लिए फिर खोल दी गई। जापान अवसर देख रहा था; एकाएक बिना किसी सूचना के दिसम्बर १९४१ में उसने संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी; पर्ल बन्दरगाह (हवाई द्वीप-समूह) पर उसने भयानक हमला किया। अब अमेरिका इस युद्ध में आ गया। पूर्व में मित्रराष्ट्रों की तैयारी बहुत कम थी। इसलिए जापान थैलैण्ड (श्याम) और इण्डोचाइना को पार करता मलाया में घुस आया और धीरे-धीरे बर्मा में प्रवेश करता गया।

क्रिप्स मिशन--सिङ्गापुर के पतन से स्थिति में तेजी से परिवर्तन होने लगा। अब युद्ध भारत के द्वार पर आ गया था। देश में सब दलों की माँग थी कि सरकार में तेजी परिवर्तन होने चाहिएँ, पर सरकार उसी रफ्तार से चलती रही। इस बीच सर तेजबहादुर सप्रू इत्यादि गैर-कांग्रेसी

नेताओं ने एक 'निर्दल' सम्मेलन करके केन्द्र में जिम्मेदार सरकार की स्थापना की माँग की। इधर यह हो रहा था, उधर बर्मा में जापानी बढ़े आ रहे थे। चीन की सेनाएँ बर्मा में ब्रिटेन के पक्ष में लड़ रही थीं। १९४२ के आरम्भ में स्थिति बड़ी निराशाजनक हो रही थी। इसी समय चीन के प्रधान सेनापति मार्शल च्यांगकाई शेक का भारत में आगमन हुआ। भारत सरकार से चीन और भारत के सहयोग के सम्बन्ध में वार्ता करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था। बर्मा रोड बन्द हो जाने की दशा में दूसरा मार्ग खोज निकालना आवश्यक था। मार्शल यहाँ देश के अनेक नेताओं से भी मिले। उनके मन पर जो प्रभाव पड़ा उसके फलस्वरूप उन्होंने ब्रिटिश सरकार से अपील की कि वह भारत को अधिकाधिक स्वतन्त्रता प्रदान करने के मामले में उदारता से काम ले। अन्त में ब्रिटिश सरकार ने बर्मा के अनुभवों से परिस्थिति की गुरुता को समझना आरम्भ किया और युद्ध के बाद भारत की पूर्ण राजनीतिक स्वतन्त्रता को स्वीकार करते हुए एक घोषणा की। अप्रैल १९४२ ई० में सर स्टैफर्ड क्रिप्स इसी आधार पर समझौता करने के लिए भेजे गये। दो हफ्ते तक समझौते की बातचीत चलती रही। पर युद्धकाल में स्वतन्त्र राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की माँग मंजूर न होने के कारण अन्त में समझौता टूट गया। स्पष्ट है कि इस घोषणा में वे सब बातें थीं जिन्हें एक वर्ष पूर्व कांग्रेस स्वीकार करने को तैयार थी पर अब परिस्थिति बदल चुकी थी; राष्ट्रीयता का प्रवाह आगे निकल गया था और जापान भारत के दरवाजे पर खड़ा था। ऐसे खतरे के समय गहरे परिवर्तन और भारत पर पूर्ण विश्वास करके उसे अपने मामले में खुद निर्णय और कार्रवाई करने का अधिकार दिये बिना देश में कोई सामूहिक चेतना पैदा करना कठिन था। ब्रिटिश सरकार ने समझौता न होने की दशा में यह घोषणा वापस ले ली। वर्षों तक वही अनिश्चय की स्थिति चलती रही।

युरोप में युद्ध के समाप्त हो जाने के बाद भी भारत के सम्बन्ध में ब्रिटेन की क्रियात्मक नीति वही रही। भारतीय राष्ट्रीयता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा साम्प्रदायिक समस्या है। दुर्भाग्य से हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न इतना जटिल हो गया और मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान के नाम पर देश को खंडित करने की एक ऐसी माँग पेश की कि विज्ञ पुरुषों को इस स्थिति पर रोना ही आता रहा। जब देश के जीवन-मरण का प्रश्न हो तब सब अपनी खिचड़ी अलग अलग पकाने के फेर में पड़े। सरकार की उक्त घोषणा में भी भारत के प्रादेशिक विभाजन या खंड करने की नीति स्वीकार कर ली गई थी। इससे भी पाकिस्तान को बल मिला।

गांधीजी का नेतृत्व—इधर देश में क्रिप्स मिशन की भद्दी प्रतिक्रिया हुई। गांधी जी और उनके अनुयायी तो शुरू से इस प्रकार के समझौते के विरुद्ध थे पर कांग्रेस में जो लोग देश की रक्षा के नाम पर शस्त्र-ग्रहण के पक्षपाती थे वे भी कटु हो गये। इन लोगों में से राजाजी अलग हो गये। उनका कहना था कि यह असाधारण समय है; इस समय हमें मुस्लिम लीग से किसी भी शर्त पर समझौता करके देश की रक्षा करनी चाहिए। दूसरे इसके विरुद्ध थे। उनका कहना था कि देश की रक्षा का जब हमें कोई वास्तविक अधिकार नहीं है तब ऐसी बातें करना व्यर्थ है। गांधी जी दिन-दिन कड़े पड़ते गये। कांग्रेस ने अपने को विचारों के एक भँवर में डाल लिया और साधारण आदमी को उसका कोई स्पष्ट पथ-प्रदर्शन प्राप्त नहीं हुआ ; राष्ट्रीय पक्ष नेतृत्व के लिए तब भी गांधीजी की तरफ देखता था। श्री जवाहरलाल, मौलाना आजाद वगैरह के हाथ से पथ-प्रदर्शन निकल गया था। इनकी अहिंसा में कोई श्रद्धा न थी। ये लोग वास्तविक अधिकार मिलने पर ब्रिटिश सरकार से सहयोग करने को तैयार थे। पर समझौता न हो सकने के कारण वह मार्ग इनके लिए बन्द हो गया।

अब ये लाचार होकर अहिंसात्मक साधनों के उपयोग की बातें करने लगे पर इसमें इनका कोई गहरा विश्वास न होने के कारण जनता पर इन बातों का कोई असर नहीं हुआ। विवशतापूर्वक अहिंसा का मार्ग अपनाने के कारण इनकी स्थिति विवशता की स्थिति थी और गांधीजी की शक्ति और सूझ के बिना उसका कोई उपयोग नहीं था। स्पष्टतः कांग्रेसवादी राष्ट्रीयता की प्रेरणात्मक शक्तियाँ गांधीजी के हाथ में थीं। १९४२ में इनके पथ-प्रदर्शन में कांग्रेस ने अंगरेजों से देश छोड़कर चले जाने की अपील की। धीरे-धीरे कटुता बढ़ती गई। अगस्त १९४२ में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी की बैठक बम्बई में हुई। ८ अगस्त को उसने 'भारत छोड़ो' वाला प्रस्ताव स्वीकार किया। प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया कि ब्रिटिश सत्ता भारत से हटा ली जाय और भारत स्वाधीन घोषित किया जाय। बड़े से बड़े पैमाने पर अहिंसात्मक जन-आन्दोलन करने का संकल्प भी प्रकट किया गया और गांधीजी से उसका नेतृत्व करने की प्रार्थना की गई। इस प्रस्ताव में कांग्रेस की स्थिति स्पष्ट कर दी गई थी और ब्रिटेन के अनुरोध किया गया था कि अब भी वह भारत के साथ उचित व्यवहार करने के लिए कदम उठाये और मामले को खराब न होने दे। इस प्रस्ताव ने समझौते का दरवाजा खुला छोड़ दिया था। गांधीजी, राष्ट्रपति आजाद और जवाहरलाल ने ब्रिटेन से जोरदार अपीलें कीं कि जिस स्वतन्त्रता के लिए लड़ने का उसका दावा है उसी के नाम पर भारत को साम्राज्यवाद के पंजे से मुक्त करके ब्रिटेन संसार की जनता का वास्तविक सहयोग युद्ध में पा सकता है। पर ये अपीलें व्यर्थ हुईं। ८ अगस्त की रात को सवा बारह बजे गांधीजी के अन्तिम भाषण के बाद भारतीय काँग्रेस कमेटी की बैठक समाप्त हुई। इधर के वर्षों में देखें तो शायद यह गांधीजी की सबसे लम्बी वक्तृता थी और इसमें उन्होंने अपना हृदय उँडेल दिया था। इसमें उन्होंने यह भी कहा कि लड़ाई शुरू करने के पूर्व मैं वायसराय

को पत्र लिखूँगा और उनके जवाब का इन्तजार करूँगा तथा वे राजी हुए तो उनसे मिलकर सब बातों पर विचार करूँगा।

बयालिस का आन्दोलन—पर उनको इन बातों का मौका ही नहीं दिया गया। रात को ही गांधीजी तथा कांग्रेस कार्यकारिणी के सब नेता गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तारी के पूर्व सम्पूर्ण बम्बई के टेलीफोन बेकार कर दिये गये थे। दूसरे दिन आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये तथा समस्त देश में गिरफ्तारियों का ताँता लग गया। कांग्रेस से सम्बन्ध रखने वाले जितने लोग मिले पकड़ लिये गये, कांग्रेस संस्थाएँ गैर-कानूनी करार दे दी गईं। खादी, शिक्षा, साहित्य आदि का काम करने वाली राष्ट्रीय संस्थाएँ तथा उनके कार्यकर्ताओं को भी नहीं छोड़ा गया। देश में दमन और उत्पीड़न का तूफान फैल गया। जान पड़ता था कि सरकार अपने नियमों और कानूनों को भी भूल गई है और हर तरह के उचित अनुचित साधनों द्वारा जनता की उमंग को सदा के लिए कुचल देना चाहती है। देश के अधिकांश कांग्रेस कार्यकर्ता पकड़े जा चुके थे; छिट-पुट जो बचे वे छिपे छिपे काम करना चाहते थे। सरकार के इस प्रहार से जनता किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई, किन्तु बाद में उसे जो उचित समझ पड़ा उसने किया। तार तोड़ दिये, रेल की पटरियाँ उखाड़ दीं, अनेक स्थानों में थानों पर कब्जा कर लिया। बलिया, चटगाँव इत्यादि देश के कई भागों में तो स्वतन्त्र शासन-सभाएँ कायम हो गईं। सरकार पागल हो गई। वह रोज नये आर्डिनेंस निकालती। पुलिस और फौज की लूट से गाँव के गाँव तबाह हो गये, घरों को फूँक दिया गया; ८-६ साल की उम्र की लड़कियों से लेकर साठ-साठ साल की बुढ़िया तक पर बलात्कार किया गया। इन असह्य स्थितियों एवं कार्रवाइयों के कारण बहुतेरे स्थानों में जनता की ओर से भी हिंसा हुई। सरकारी गोलियों से कम से कम पंद्रह हजार आदमी मरे। छात्रों एवं स्त्रियों ने भी इस आन्दोलन में वीरतापूर्वक भाग लिया।

स्वभावतः ऐसी उत्तेजक स्थिति में जनता अहिंसा के नियमों का पालन न कर सकी; उसे कोई नियमित पथ-प्रदर्शक ही प्राप्त न था। इस आन्दोलन की विशेषता यह है कि सरकारी दमन की चुनौती के सामने जनता दबी नहीं, उसने वीरतापूर्वक उसका उत्तर दिया। पर यह मानना पड़ेगा कि बचे-खुचे और गुप्त रूप से काम करने वाले राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं ने गांधी-मार्ग का त्याग कर दिया था। उनके द्वारा अनेक दुःखद कांड हुए। इन कांडों के कारण गांधीजी प्रवर्तित अहिंसा-नीति को कड़ा धक्का लगा और आज तक उसकी स्थिति डावाँडोल है। ये लोग उत्तेजना में, अथवा उसके प्रति वास्तविक श्रद्धा के अभाव के कारण गांधीजी की अहिंसा को भूल गये और उनकी इतने दिनों की परीक्षित युद्ध-शैली का तिरस्कार किया गया।

यह सब उत्तेजना में हुआ और अनधिकृत रूप से हुआ। पर इतिहासकार यह अस्वीकार नहीं कर सकता कि उत्तेजना में बहुत से जिम्मेदार कांग्रेस कार्य-कर्ताओं और गांधीवादियों ने भी अपनी मर्यादा छोड़ दी, और 'नरो व कुंजरो वा' की तरह गांधीजी की अहिंसा की दुर्दशा की। कांग्रेस या गांधीजी की ओर से तो कोई आन्दोलन चलाया ही नहीं गया। पर जो भी हुआ उसका परिणाम भयावह हुआ। सरकार का रूप कड़ा—प्रतिहिंसात्मक—होता गया और सद्भावना का स्थान कटुता और प्रतिहिंसा ने ले लिया। वस्तुतः गांधी-युग में जितनी भी अनधिकृत लड़ाइयाँ हुईं और सच पूछिए तो कोई इतनी नहीं हुई थी जितनी यह अनधिकृत लड़ाई हुई और इसने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत के लिए अहिंसात्मक युद्ध-प्रणाली के अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं था।

किसी भी आन्दोलन में सरकार और जनपक्ष के बीच इतनी कटुता नहीं पैदा हुई थी। यहाँ तक कि जेल में गांधी ने जब १० फरवरी १९४३ से ३ सप्ताह का अनशन आरम्भ किया, उनके बचने की

कोई आशा न रही, सब दलों ने मुक्ति के लिए अनुरोध किया, २१ फरवरी को नाड़ी छूट चली तब भी सरकार ने उन्हें नहीं छोड़ा। किंतु शरीर पर आत्मा की विजय हुई। डाक्टरों की राय में करिश्मा हुआ। अनशन पूर्ण हुआ। जेल में कस्तूरबा की मृत्यु (२२ फरवरी १९४४) हुई तथा महादेवभाई का देहावसान हुआ। ६ मई १९४४ को गांधीजी छोड़ दिये गये। छूटने के बाद गांधीजी के वक्तव्यों की जो धारा फूटी तो उसमें सरकारी प्रचार और आरोप बह गये। ९ सितम्बर से २१ सितम्बर १९४४ तक गांधीजी ने जिन्ना से मिलकर साम्प्रदायिक प्रश्न हल करने का बड़ा प्रयत्न किया परन्तु जिन्ना की जिद तथा अनिश्चित उत्तरों के कारण कुछ फल न निकला।

सरकारी आतंक से दबी जनता में धीरे-धीरे फिर साहस का संचार होने लगा। गांधीजी ने फरार तथा छिपे हुए कांग्रेस जनों को प्रकट होकर अधिकारियों के सामने आत्मसमर्पण करने और जो दण्ड मिले उसे सहर्ष भोगने की सलाह दी। यह इस बात का प्रमाण था कि कांग्रेस का हिंसा या गुप्त षड्यंत्रों में विश्वास नहीं है। गांधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रम को आगे बढ़ाने पर भी जोर दिया। धीरे-धीरे कांग्रेस के अन्य बड़े नेता भी रिहा कर दिये गये। उन्होंने देश का दौरा करके १९४२ के आंदोलन के लिए जनता को बधाई दी और कांग्रेस की स्थिति स्पष्ट की। अब लोगों को यह भी पता चला कि युद्ध काल में सुभाष बसु ने सिंगापुर में एक स्वतंत्र भारतीय सरकार कायम की थी जिसकी सेना ने भारत पर हमला भी किया था और अनेक स्थानों में अंग्रेजी सेनाओं को खदेड़ दिया था। इससे लोगों में बड़ा उत्साह फैला। इसके कुछ दिनों बाद, राजनीतिक खिंच दूर करने के उद्देश्य से, वायसराय लार्ड वेवेल ने, ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति से, एक भाषण ब्राडकास्ट किया और शिमला में नेताओं को बातचीत के लिए निमंत्रित किया। पर यह वार्ता भी जिन्ना के दुराग्रह के कारण असफल रही।

१९४६ के प्रारंभिक महीनों में प्रांतीय असेम्बलियों का नया चुनाव हुआ। इसमें कांग्रेस ने भाग लिया और सरकारी अड़चनों के बावजूद उसकी फिर शानदार जीत हुई। युक्तप्रांत, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रांत, बम्बई, मद्रास, आसाम और सीमाप्रांत में कांग्रेस मंत्रिमंडल बन गये। पंजाब में कांग्रेस तथा दूसरे दलों का सम्मिलित मंत्रिमंडल बनाया गया। भारतीय स्वतंत्रता के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए 'ब्रिटिश सचिव मण्डल' (जिनमें भारतमंत्री लार्ड पेथिक लारेंस, बोर्ड आफ ट्रेड के अध्यक्ष सर स्टफर्ड क्रिप्स तथा श्री ए० वी० अलेकजेंडर थे) भारत आया। दिल्ली और शिमला में कई सप्ताह तक बातचीत चलती रही पर इसमें भी जिन्ना साहब का वही अड़ंगे का रवैया रहा। विवश होकर सचिव मण्डल ने अपना निर्णय घोषित किया जो '१६ मई का निर्णयपत्र' के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि इसमें अनेक अपूर्णताएँ थीं फिर भी कांग्रेस नेता उसके आधार पर केंद्र में राष्ट्रीय सरकार बनाने और विधाननिर्मात्री परिषद् में शामिल होने को तैयार हो गये। लम्बी बातचीत के बाद सितम्बर १९४६ के प्रथम सप्ताह में पं० जवाहरलाल जी ने अस्थायी केन्द्रीय सरकार बना ली। यद्यपि यह सरकार १९३५ के विधान के अन्तर्गत ही बनी थी और कानूनी दृष्टि से उसके हाथ-पाँव बँधे थे फिर भी उसने स्वतंत्र राष्ट्रीय सरकार के रूप में काम शुरू किया और विभिन्न स्वतंत्र देशों से सम्बन्ध भी कायम करने लगी। इस पर वायसराय के कान खड़े हुए और किसी तरह उन्होंने लीग को भी सरकार में शामिल होने के लिए राजी किया। लीग के प्रतिनिधि शामिल हुए और अड़ंगेबाजी शुरू हुई। उधर लीग की युद्धसमिति ने 'सीधी लड़ाई' की नीति का परिचय देने के लिए १६ अगस्त का जो दिन नियत किया था उस दिन कलकत्ता में भयंकर और अमानुषिक साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो गये थे। बाद में नोआखाली (बंगाल) में मुस्लिम लीग की उत्तेजना से जो बर्बरता

हिन्दुओं के साथ की गई उसकी मिसाल नहीं है। लूट, व्यभिचार, बलात्कार एवं धर्मपरिवर्तन के कारण लोगों में भीषण आतंक छा गया। बाद में उसकी वैसी ही गहरी प्रतिक्रिया विहार में हुई। देश की स्थिति अत्यन्त दुःखदायी हो गई।

बर्बरताओं की प्रतिक्रिया—बंगाल की बर्बरताओं की प्रतिक्रिया विहार में हुई। पर नेताओं के प्रभाव और गांधीजी के विहार में दंगे शांत न होने पर आमरण-अनशन का निश्चय करने पर शीघ्र ही वहाँ शान्ति हो गई। गांधीजी ने बंगाल तथा विहार में घूम-घूमकर साम्प्रदायिकता के फैले हुए जहर को दूर करने की भरसक चेष्टा की। पर अनुदार ब्रिटिश अधिकारी एवं लीग इच्छा न थी कि देश की स्वतन्त्रता की समस्या शांतिपूर्वक हल हो जाय। लीगी फूट और विद्रोह का बीज बोकर, घृणा का प्रचार करके अपने लक्ष्य पाकिस्तान की प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे थे। कलकत्ता और नोआखाली से सन्तुष्ट न होकर उन्होंने पंजाब और सीमाप्रान्त में भी अशांति शुरू कर दी। लीगी पत्र और नेता वहां की मुसलमान जनता तक विहार की दुर्घटनाओं के अतिरंजित समाचार फैला फैलाकर उन्हें बदला देने को भड़का रहे थे। देश की अवस्था तेजी से बिगड़ रही थी। केन्द्रीय सरकार बहुत कुछ करना चाहती थी पर मुस्लिम सदस्य उसमें बराबर बाधा उपस्थित करते रहते थे। सरकार के अधिकारियों और भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों के दफ्तरों के कर्मचारियों में भी अनीति, अनुशासन-हीनता फैल गई थी। मुसलमान अधिकारी आम तौर पर लीग की ओर झुके हुए थे। महीनों की प्रतीक्षा के बाद केन्द्रीय सरकार के कांग्रेस मंत्रियों ने अनुभव किया कि इस प्रकार तो सारे देश में अराजकता फैल जायगी और राष्ट्र-निर्माण के सम्पूर्ण स्वप्न धूल में मिल जायँगे। उधर पंजाब और बंगाल के हिन्दुओं-द्वारा दोनों प्रान्तों के विभाजन की आवाज भी उठने लगी थी। इसलिए अनिच्छापूर्वक कांग्रेस नेताओं ने देश के

विभाजन का सिद्धान्त स्वीकार किया। लार्ड वेवेल इंग्लैंड गये और चूँकि केन्द्रीय सरकार के कांग्रेस सदस्य बराबर उनके पक्षपातपूर्ण रवैये पर असन्तोष प्रकट रहे थे इसलिए उनकी जगह लार्ड माउंट बैटेन यहाँ वायसराय और गवर्नर जेनरल होकर आये। साथ ही ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि जून १९४८ तक भारत और पाकिस्तान स्वतन्त्र हो जायँगे और वहाँ से ब्रिटिश शक्ति पूर्णतः हटा ली जायगी।

भारत का विभाजन—पर देश की स्थिति इतनी तेजी से खराब हो रही थी कि लार्ड माउंट बैटेन शीघ्र ही इस निश्चय पर पहुँचे कि इतनी देर लगाना ठीक न होगा। उन्होंने भारत से ब्रिटिश शक्ति को हटाने और नवीन भारतीय उपनिवेशों के निर्माण का कार्य तेजी से शुरू किया और १५ अगस्त १९४७ से भारत संघ और पाकिस्तान नामक दो स्वतन्त्र राज्यों का जन्म हुआ।

पंजाब और बंगाल के विभाजन का सिद्धान्त भी ब्रिटिश सरकार ने स्वीकार कर एक सीमा-निर्धारक कमीशन बैठाया। तय यह पाया था कि उसका निर्णय दोनों पक्षों को अन्तिम रूप से मान्य होगा। जुलाई १९४७ से ही लाहौर में अव्यवस्था फैलने लगी और बहुसंख्यक सम्प्रदाय के लोग, लीग के प्रभाव में, अल्पसंख्यकों पर जुल्म ढाने लगे। इस समय भारत सरकार का सारा दफ़्तर विभाजन कार्य में लगा था और केन्द्रीय सरकार के मुस्लिम अफसर और कर्मचारी तथा पंजाब के अंग्रेज अधिकारी एवं मुस्लिम लीगी नेता भारत की नींव कमजोर करने तथा हिन्दुओं और सिखों को नेस्त-नाबूद करने में लगे थे। लाहौर तथा पंजाब की हालत दिन-दिन बिगड़ रही थी। १५ अगस्त को भारत तथा पाकिस्तान नामक दो स्वतन्त्र राज्यों का निर्माण होने एवं पंजाब तथा बंगाल प्रान्तों के दोनों स्वतन्त्र राज्यों में बाँट दिये जाने के साथ ही पश्चिमी पंजाब में भयङ्कर मार-काट, आगजनी, लूट शुरू हो गई। लाखों हिन्दू और सिख अपने घर-द्वार सम्पत्ति छोड़ भाग

खड़े हुए। कितने ही रास्ते में मार डाले गये; स्त्रियों का सतीत्व लुटा; जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन हुआ। इसकी प्रतिक्रिया पूर्वी पंजाब में हुई। यह एक नया प्रान्त था और शासन-शक्ति का नवीन संगठन करने में समय की अपेक्षा थी। जो लुटे हुए, पीड़ित शरणार्थी पंजाब से आये उनमें स्वभावतः बदले की भावना भी थी। उन्होंने अत्याचारों की अतिरंजित कहानियों का भी जनता में प्रचार किया; मुस्लिम लीग की घृणा की राजनीति का जहर तेजी से हिन्दुओं और सिखों में भी फैलता गया और मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विरोध में, पर उन्हीं भावनाओं और दृष्टिकोण को लेकर चलने वाला हिन्दू-सिख साम्प्रदायिकता का जबर्दस्त दल पैदा होगया। जो साम्प्रदायिक संस्थाएँ अभी तक राष्ट्रीय शक्तियों के आगे शिथिल पड़ी हुई थीं उन्होंने मौका देखकर सिर उठाया। जमीन उनके अनुकूल थी; अखबार गरम-गरम खबरों से भरे होते थे। अकाली दल, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, हिन्दू सभा तथा इनकी सी विचार-शैली की सैकड़ों संस्थाएँ, जो अभी तक सुषुप्त थीं, देश में खड़ी हो गईं। इन्होंने हिन्दू युवकों को भी साम्प्रदायिक घृणा की दौड़ में डाल दिया। इनके पीछे जनतंत्र की विरोधी सम्पूर्ण प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ थीं। राजा-महाराजा, मठाधीश, पंडे-पुजारी, जमींदार, पूँजीपति सब इन्हें मदद दे रहे थे (और आज भी दे रहे हैं)। ये जानते हैं कि भारत में जनतंत्र की स्थापना का अर्थ उनके अस्तित्व पर कुठाराघात है। इसलिए उनका ऐसा करना स्वाभाविक था। इन संस्थाओं ने पंजाब का बदला लेने के लिए लोगों को उत्तेजित किया। पूर्वी पंजाब, दिल्ली, अलवर, भरतपुर, इत्यादि में मुसलमानों की प्रायः वही दशा हुई जो सीमाप्रान्त, पश्चिमी पंजाब और सिन्ध में सिखों तथा हिन्दुओं की हुई थी। जिन्ना की अध्यक्षता में मुस्लिम साम्प्रदायिकता का जो संघटन हुआ उसकी सबसे बड़ी सफलता पाकिस्तान नहीं है, बल्कि यह है कि उसने हिन्दू राष्ट्रवाद के गढ़ में घुस कर

विष फैलाया और वहाँ भी उसकी प्रतिमूर्ति खड़ी कर दी तथा राष्ट्रीय शक्तियों को कमजोर कर दिया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तो जिस तेजी से बढ़ा वह आधुनिक भारतीय राजनीतिक इतिहास की एक दिलचस्प घटना है। ऊपर से देखने में यह एक सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलन था। पर नेशनल गार्ड की भाँति इसका गुप्त उद्देश्य साम्प्रदायिक राज्य की स्थापना था। कांग्रेस और सरकार के अन्दर भी इसके शत-शत समर्थक पैदा हो गये। जिस समय राष्ट्रीय सरकार को सबल बनाने की सब से अधिक आवश्यकता थी, इसने उसके प्रति बेवफाई की भावनाएँ लोगों में खूब बढ़ाईं।

गांधीजी का बलिदान—चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखता था। जान पड़ता था कि युगों की साधना, फाँसी, गोली, त्याग और तपस्या से अर्जित स्वतंत्रता का अन्त हो जायगा। इस अन्धकार में केवल एक ज्योति निश्चल भाव से लोगों को मार्ग दिखा रही थी। मानवात्मा में गहरी श्रद्धा के प्रतीक गांधीजी भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक लोगों को चेतावनी देते, अपने प्राण हथेली में लिये घूम रहे थे। उनके प्रयत्नों तथा उनके पथ-दर्शन के कारण प्रतिक्रियावादी और साम्प्रदायिक शक्तियों की गहरी गुटबन्दी के बारे में लोग सजग होने लगे थे। पूर्वी बङ्गाल और नोआखाली में उन्होंने अपने प्रभाव से मुस्लिम साम्प्रदायिकता की बढ़ती लहर को रोक दिया; बिहार में हिन्दू साम्प्रदायिकता की प्रतिहिंसक भावनाएँ उनकी चुनौती के सामने स्तब्ध हुईं। कलकत्ता में जोरों से फैलती साम्प्रदायिक आग को उन्होंने अपने उपवास की शीतल जलधारा से 'जादूगर' की भाँति शान्त कर दिया। इसके बाद ११ जनवरी को दिल्ली में एकाएक उन्होंने दिल्ली के वातावरण को शुद्ध करने और दिलों के जहर को दूर करने के लिए अनशन की घोषणा की। उनका कहना था कि अब इलाज ईश्वर के हाथ है, कोई दूसरा रास्ता नहीं रह गया है।

उनके अनशन के फल-स्वरूप तहलका मच गया और सब धर्मों के प्रतिनिधियों के आश्वासन दिलाने पर कि दिल्ली में मुसलमान पहले की तरह स्वतन्त्रतापूर्वक रह सकेंगे और जिन मस्जिदों पर लोगों ने कब्जा कर लिया है वे मुसलमानों को सम्मानपूर्वक लौटा दी जायँगी १८ जनवरी को उन्होंने अनशन तोड़ा। इस बार के अनशन ने उन्हें बड़ा कमजोर कर दिया। पर उनके प्रयत्नों से राष्ट्र में शुभ भावनाओं की जो बाढ़ आ रही थी उससे प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ चौंक गईं। उन्होंने देखा कि यदि वे इसी प्रकार गांधी के कार्यों के प्रति उदासीन रहेंगी तो मिट जायँगी। इसलिए 'भ्रमवश' उन्होंने उसका अन्त करने का निश्चय कर लिया। उपवास तोड़ने के दो ही दिन बाद २० जनवरी को प्रार्थना सभा में बम फेंक उन्हें मारने की चेष्टा की गई पर बम उन्हें न लगा। आश्चर्य यह है कि बम काण्ड में शरीक कई लोग भाग निकले और भारत-सरकार का गुप्तचर विभाग या उसकी पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने में असफल रही। स्पष्ट है सरकार के बड़े-बड़े अधिकारी भी साम्प्रदायिकता की शराब से अचेत हो रहे थे और भारत-सरकार के स्वराष्ट्र ('होम') विभाग को जितनी सतर्कता से काम लेना था उसने नहीं लिया। ३० जनवरी की शाम के सवा पाँच बजे, प्रार्थना में जाते समय, नाथूराम गोड्से नामक एक शिक्षित महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने रिवाल्वर से सीने और पेट में तीन गोलियाँ मारकर गांधीजी के दैहिक जीवन का अन्त कर दिया। वह केवल 'राम राम' बोल सके। गांधीजी की हत्या का सम्पूर्ण विश्व पर गहरा असर पड़ा। किसी पुरुष को विश्व से इतनी व्यापक और गहरी श्रद्धाञ्जलि नहीं मिली होगी जितनी गांधी जी को मिली। भारत की जनता ने तो उनके अभाव में जो शोक प्रदर्शित किया वह विश्व के इतिहास में अपूर्व है। उनकी मृत्यु के फलस्वरूप राष्ट्रीय-स्वयंसेवक संघ, खाकसार तथा मुस्लिम नेशनल गार्ड संगठन गैरकानूनी घोषित कर

दिये गये। अलवर तथा भरतपुर के नरेशों को पदच्युत किया गया पर बाद में वे निर्दोष सिद्ध हुए। अन्दाज यह है कि इस हत्या के षड़-यन्त्र के पीछे व्यापक संघटन था जिनमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, हिन्दू महासभा आदि के कई प्रमुख नेताओं, महन्तों तथा राजाओं का हाथ था। यद्यपि गांधीजी की हत्या के फल-स्वरूप लोकावेश के भय से साम्प्रदायिकता की शक्तियों को एक जबर्दस्त धक्का लगा फिर भी यह समझना कि उनका गढ़ टूट गया, भारी भ्रम था। कांग्रेस सरकार ने इस सम्बन्ध में बड़ी शिथिलता का परिचय दिया और उनमें तथा सरकारी अधिकारियों में अब भी राष्ट्र की नवीन परिस्थिति के अनुरूप क्रांतिकारी भावनाओं तथा आचरण का अभाव है।

दिसम्बर १९४८ के आरम्भ में राष्ट्रीय सेवक संघ ने उस पर लगे प्रतिबन्धों के विरुद्ध देशव्यापी सत्याग्रह की तैयारी की। फलतः विवश होकर सरकार को कार्रवाई करनी पड़ी। देश भर मेंगिरफ्तारियाँ हुईं। बाद में संघ ने अपने कार्य की दिशा बदल दी। वह फिर वैध हो गया।

उधर राजनीतिक स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद भारत-सरकार तथा प्रांतीय सरकारों पर इतनी व्यापक जिम्मेदारियां आ गई हैं कि वे उनके बोझ से दबी जा रही हैं। लगभग ८० लाख शरणार्थियों के भारत में लाने, बसाने, उनकी जीविका, उनके मानसिक विकास की समस्या किसी भी राष्ट्र की कमर तोड़ने के लिए काफी थी। भारत सरकार ने हिम्मत के साथ, बस भर, उसे हल करने की चेष्टा की। उसके साथ-साथ भारत की जर्जर अर्थ-व्यवस्था के सुधार तथा अन्य अनेक दिशाओं में राष्ट्रीय निर्माण के प्रयत्न भी जारी हैं। पाकिस्तान की ओर से अब भी कुछ न कुछ खुराफात जारी है।

राष्ट्रों की गुटबंदी—पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं पर फरवरी (५०) में घोर अत्याचार हुए जिससे एक नई बात पैदा हो गई। शरणार्थियों का ताँता लग गया। एक बार पुनः वातावरण में गर्मी आ गई। भयङ्कर विस्फोट की

संभावना दिखने लगी। अन्त में जवाहरलाल के प्रयत्नों से पाकिस्तान के साथ एक समझौता हुआ जो 'नेहरू-लियाकत पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। वातावरण में कुछ शांति है। पर इस तरह के समझौते अधूरे एवं अस्थायी हैं। पाकिस्तान बराबर उसी मनोवृत्ति को लेकर चल रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के कुछ समय बाद ही उसने जूनागढ़ (काठियावाड़) और कश्मीर को अपने चंगुल में फँसाने की हरकतें शुरू कर दीं। सीमाप्रान्त के कबायलियों, पंजाब के कुछ जोशीले नौजवान मुसलमानों तथा खुद कश्मीर के असंतुष्ट लोगों को कश्मीर में जाकर लूटने, औरतों को बेइज्जत करने, घर-गाँव जला देने की उत्तेजना उसने दी। विवश होकर कश्मीर को भारत संघ में शामिल होना पड़ा और भारत से सैनिक सहायता और रक्षा की याचना करनी पड़ी। भारत ने उसकी प्रार्थना मंजूर की पर स्पष्ट कर दिया कि ज्योंही लुटेरे कश्मीर की भूमि से हटा दिये जायंगे और वहाँ शान्ति स्थापित हो जायगी त्योंही वहाँ की जनता को इस बात का निर्णय करने का अधिकार होगा कि वह भारत में शामिल हो या पाकिस्तान में, या स्वतन्त्र रहे। पर इस स्पष्ट घोषणा के बाद भी पाकिस्तान की कार्रवाई जारी रही। बाद में तो स्पष्ट हो गया कि पाकिस्तान ही यह सब कर रहा था। भारत ने कश्मीर का मामला संयुक्त राष्ट्र सभा में पेश किया और उसे आशा थी कि वहां न्याय किया जायगा पर असल प्रश्न पर निर्णय देने की जगह वहां उस पर लीपापोती करके नये-नये प्रश्न पाकिस्तान तथा संयुक्त राष्ट्रसभा की ओर से खड़े किये जाते रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दाँवपेंच में न्याय कराह रहा है। अमेरिका के नेतृत्व में ब्रिटेन तथा पश्चिम के अनेक राष्ट्रों का रूस के विरुद्ध गुट बन रहा है। कुछ राष्ट्र रूस की ओर मिलते जा रहे हैं, कुछ अमेरिका की ओर। और इन दो गुटों में भावी युद्ध की आशंकाएँ साफ शब्दों में प्रकट की जाने लगी हैं तथा

तैयारियाँ भी होने लगी हैं। कश्मीर के गिलगिट प्रान्त से रूस तथा चीन की सीमाएँ लगी हुई हैं इसलिए ब्रिटेन और अमेरिका चाहते हैं कि या तो उस पर किसी अन्तर्राष्ट्रीय दल (दूसरे शब्दों में उन्हीं का) प्रभुत्व हो या फिर पाकिस्तान का। वे जानते हैं कि वहाँ अपना युद्ध केन्द्र (वेस') बनाने देने को पाकिस्तान राजी हो जायगा, भारत नहीं। स्पष्टतः ये शक्तियाँ पाकिस्तान की ओर झुकी हुई हैं। इस बीच कश्मीर में पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना कश्मीर के लोकप्रिय जन-नायक शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में हो गई है। वस्तुतः कश्मीर की लड़ाई एक उच्च आदर्श के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई है। जब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान साम्प्रदायिकता की आग में जल रहे थे तब भी कश्मीर ने अपना होश-हवास दुरुस्त रखा और वहाँ के मुसलमान, हिन्दू, सिख सब मिलकर एक साथ आक्रमणकारी शत्रु के विरुद्ध खड़े हुए। मुसलमानों ने हिन्दुओं की रक्षा का बीड़ा उठाया। पाकिस्तान की नीति की प्रतिक्रिया हिन्दुस्तान में हुई, हिन्दू भी जिन्ना की राह पर चलने लगे पर कश्मीर गहरे अन्धकार में चमकने वाले एक छोटे दीपक की भाँति निश्चल रहा। जूनागढ़ की जनता के गहरे आन्दोलन तथा नवाब के वहाँ से भाग जाने के फल-स्वरूप जूनागढ़ का शासन भारत सरकार ने सँभाल लिया था। बाद में जनता का मत भी लिया गया। केवल कुछ दर्जन आदमियों ने पाकिस्तान के पक्ष में मत दिया। आज जूनागढ़ भारत-संघ का एक अंग है।

देशी राज्यों में परिवर्तन—इस बीच देशी राज्यों में बड़ी तेजी से क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। दो वर्ष पूव जो बातें अनहोनी प्रतीत होती थीं वे आज सहज भाव से घटित हो रही हैं। उड़ीसा, मध्यप्रान्त और बम्बई के छोटे-छोटे अनेक राज्य इन प्रान्तों में मिल गये। काठियावाड़ की कई रियासतों का एक संयुक्त-संघ 'सौराष्ट्र' नाम से बन गया। हिमालय की तलहटी के कई राज्यों को मिलाकर हिमांचल प्रदेश

बनाया गया। इसी प्रकार ग्वालियर, इन्दौर तथा मध्य भारत के अनेक राज्यों को मिलाकर मध्य भारत; रीवाँ, बुन्देलखंड, बघेलखंड की अनेक रियासतों को मिलाकर विन्ध्य प्रदेश तथा राजपूताना की प्रायः सब रियासतों को मिलाकर राजस्थान राज्य बनाया गया। देशी राज्यों की जो जनता सबसे पीड़ित और त्रस्त थी वह सबसे अधिक तेजी से उठ रही है और अधिकांश राज्यों में लोकतन्त्रात्मक जनप्रिय सरकारें बन गई हैं या बनती जा रही हैं। अधिकांश राजाओं ने नई परिस्थिति को पहचान कर समझदारी और देश प्रेम का परिचय भी दिया है। इन सब सफलताओं के बीच केवल कश्मीर और हैदराबाद के प्रश्न ही कुछ चिन्ता पैदा कर रहे थे। कश्मीर में तो जिम्मेदार जनप्रिय सरकार बन ही गई थी। केवल हैदराबाद मुस्लिम साम्प्रदायिकता के अन्तिम गढ़ के रूप में शरारत कर रहा था पर अधिक दिन तक यह स्थिति न चल सकी। अनेक विदेशी व्यक्ति तथा शक्तियाँ हैदराबाद को उसका रही थीं। अस्त्र-शस्त्र जुटाये जा रहे थे; लड़ाई की बातें की जा रही थीं। विवश होकर भारत सरकार को सैनिक कार्रवाई करनी पड़ी। १३ सितम्बर १९४८ को सुबह ४ बजे महाराज श्री राजेन्द्रसिंह के प्रधान सेनापतित्व तथा मेजर जनरल चौधरी के नेतृत्व में भारतीय सेना ने हैदराबाद की सीमा में पदार्पण किया। पाँच दिनों में ही निजाम ने आत्मसमर्पण कर दिया। आज वहाँ भारत सरकार का शासन है। शीघ्र ही जनशासन की स्थापना हो, इसके लिए विविध कार्रवाइयाँ जारी हैं। इसमें संदेह नहीं कि उस समय के उपप्रधानमंत्री सरदार पटेल के विरुद्ध सैद्धान्तिक दृष्टि से जो भी कहा जाय, उन्होंने देशी राज्यों के सम्बन्ध में अपनी अपूर्व संघटन शक्ति और प्रबन्ध-कुशलता का परिचय दिया। आज जब वह नहीं हैं उनकी याद आती है।

स्वतन्त्र होने के बाद अनेक दिशाओं में महत्पूर्ण कार्य हो रहे हैं। उद्योग, धन्धे, कृषि, गोपालन, शिक्षा सभी क्षेत्रों के लिए नवीन

योजनाएँ बनाई जा रही हैं। स्वतन्त्रता की बाह्य या शारीरिक अभिव्यक्ति तो चतुर्दिक तेजी से हो रही है, मानसिक स्तर पर हम नवीन जिम्मेदारियाँ उठाने में असमर्थ हो रहे हैं। हमारे मानसिक निर्माण में बहुत ही कम परिवर्तन हुआ। देश के कन्धों पर जो बहुत बड़ी जिम्मेदारी—एक नवीन और शक्तिमान राष्ट्र के निर्माण की—आ पड़ी है उसको हम ठीक तरह से अनुभव नहीं कर रहे हैं। दलबन्दियाँ बढ़ी हैं; चरित्र का पतन हुआ है। गांधीजी पिछले दिनों दुखी हृदय से प्रायः कहा करते थे 'हर आदमी अपने ही मतलब की सोचता है, हिन्दुस्तान की किसी को चिन्ता नहीं है।' जब राष्ट्रनिर्माण के लिए प्रत्येक क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता है, हड़तालों तथा हड़ताल की धमकियों से लोगों के नाकों दम है। जो लोग युद्ध-काल में विदेशी ब्रिटिश सत्ता के साथ थे वे ही आज इन हड़तालों के अगुआ हैं। मजदूरों और किसानों के अभ्युदय के निमित्त भी कुछ दिनों तक राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने में सबको हाथ बटाने कीआवश्यकता है। रूस में ऐसी स्थिति पैदा करने वाले को राष्ट्र के विरुद्ध विद्रोही मानकर गोली मार दी जाती है और यहाँ स्वतन्त्रता के नाम पर, जन-सत्ता की दुहाई देकर, सब कुछ उपद्रव करना क्षम्य समझा जाता है।

विकास-रेखा एवं आलोचना

इस प्रकार १८३५ से लेकर १९५१ तक भारतीय राष्ट्रीयता का प्रवाह धीर गति से आगे बढ़ता रहा है। इस काल को हम चार निश्चित युगों में बाँट सकते हैं:—

प्रथम युग (१८३५ से १८८० तक)—यह युग राष्ट्रीय जाग्रति का भूमिका पक्ष है। इस युग में वे सब कारण धीरे-धीरे एकत्र हुए, जिनके द्वारा राष्ट्रीय युद्ध की नींव पड़ी।

द्वितीय युग (१८८१ से १९०७ तक)—शुद्ध आवेदन-निवेदन का युग। यह राष्ट्रीयता का बचपन है और इसके पोषक लिबरल हैं।

तृतीय युग (१६०८ से १६२० तक)—यह हमारी राष्ट्रीयता का कैशोर-काल है। १६०७ से इसका आरम्भ होता है। इसमें भी बचपन की ही प्रधानता है। और 'लिबरल' ही बहुत करके इसके अभिभावक हैं, पर इसमें उग्रता की—निर्भिकता की एक विशिष्ट भाव-धारा भी बह चली है। १६२० तक का काल उग्रदल के विकास का, आत्म-अवलम्बन की भावना के दृढ़ीकरण का काल है।

चतुर्थ युग—(१६२० के बाद) आत्मावलम्बन का युग है; जो एक प्रकार से अभी तक चल ही रहा है। असहयोग एवं सत्याग्रह इस युग के दो व्यापक एवं शक्तिमान आन्दोलन हैं; इसमें हमारी राष्ट्रीयता अत्यन्त दृढ़ स्वर में बोलती है। इसमें असीम बल एवं भावावेश है, पर अब भी इसमें खोट है। कभी-कभी साम्प्रदायिकता भी राष्ट्रीयता के बाने में बोलती है। इसमें समाजवादी प्रवृत्तियों का विकास हुआ है। १५ अगस्त १६४७ को भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के बाद अग्रगामी राष्ट्रीय शक्तियों पर बड़ी जिम्मेदारी आ गई है।

मनोवैज्ञानिक विकास

राष्ट्रीयता के विकास के मनोवैज्ञानिक पक्ष को लें तो १८४५ से १८८० तक का युग पूर्व और पश्चिम के संसर्ग से उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों एवं प्रवृत्तियों का युग है। १८८० से १६०७ तक का युग सरकारी शासन में अनुकूलताएँ लाने के प्रयत्न का युग है। १६०७ से १६२० तक का युग 'सुशासन' एवं 'स्वशासन' की विचा -धाराओं के संघर्ष का युग है, जिसमें यह भाव दिन-दिन प्रबल होता गया कि स्वराज्य श्रेष्ठ पर-राज्य से अच्छा है। १६२० से ३० तक का युग स्व-तंत्रता की फैलती हुई परिभाषा का युग है। इसमें मुख्यतः औपनिवेशिक स्वाधीनता का अर्थ पूर्ण राजनीतिक स्वाधीनता हुआ और अब उसके साथ सर्वसाधारण की पूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता का उद्देश्य भी हमारे राष्ट्रीय दृष्टिकोण में शामिल कर लिया गया और देश में ऐसे लोगों

का स्पष्ट बहुमत होता गया जो किसी भी प्रकार के राष्ट्र को स्वाधीन देखना चाहते थे। हिंसा-अहिंसा की विभाजक रेखा हलकी पड़ गई और स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद देश में प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने फिर सिर उठाया।

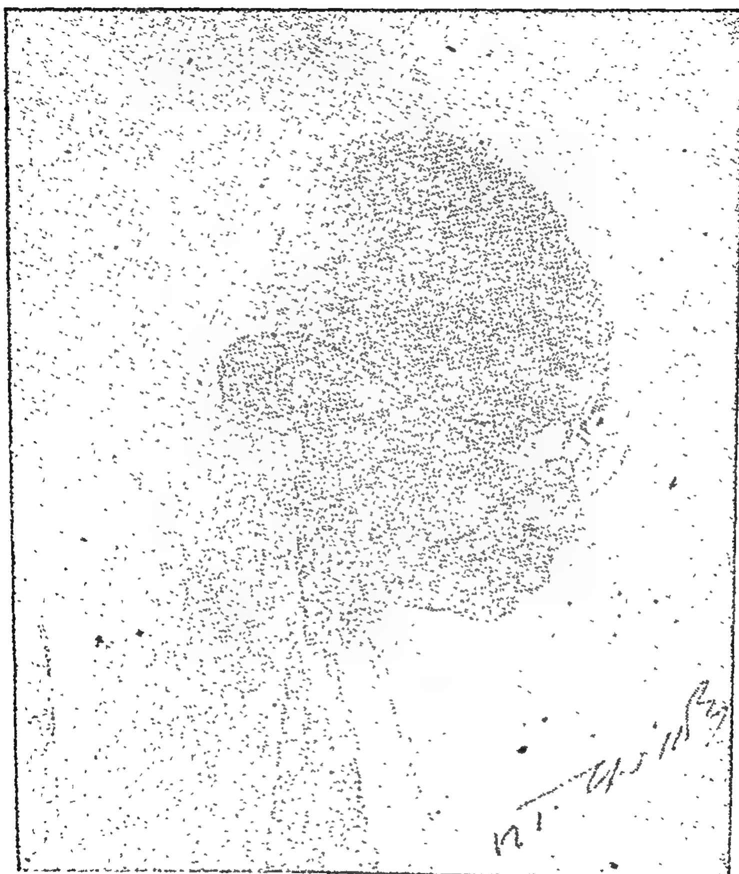
२६ जनवरी १९५० से हमारा राष्ट्र सार्वभौम स्वतन्त्र प्रजातन्त्र राज्य हो गया है। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य हमारे अन्तिम गवर्नर-जनरल थे। राजेन्द्र बाबू हमारे पहले राष्ट्रपति हैं।

दलों की दृष्टि से देखें तो इस समय तक हमारे देश में पांच राजनीतिक दल रहे हैं—(१) लिबरल—जो वैध आन्दोलन के पक्षपाती हैं। (२) नेशनलिस्ट—यह हिन्दू राष्ट्रीयता का पक्ष है। यह दल हिन्दू अधिकारों की रक्षा भी करना चाहता है, और देश के लिए स्वराज्य भी चाहता रहा है। गांधीजी की हत्या इसी दल के विषाक्त प्रचार का परिणाम है। (३) गांधीदल—यह अपने सच्चे अर्थ में भारत का सांस्कृतिक दल है। इसने संसार के सामने युद्ध की एक बिल्कुल नवीन एवं आश्चर्यजनक 'आइडियालोजी' (भाव-धारा) रखी है और यह कर्मठ दल ठोस विधायक कार्य के ऊपर आश्रित सत्याग्रह की नीति में विश्वास रखता है। (४) कांग्रेस दल—यह उग्र राष्ट्रवादी अनेक प्रकार के दलों का एक समन्वय है और 'डाईरेक्ट ऐक्शन' या सीधी लड़ाई द्वारा भारत को पूर्ण स्वाधीनता के लिए प्रयत्नशील रहा है। देश में इस दल की संख्या सबसे अधिक है और यह सबसे शक्तिमान है पर राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के बाद इसमें गुटबन्दियां बहुत बढ़ गई हैं और इसके छिन्न-भिन्न होने का खतरा पैदा हो गया है। त्याग और तप के स्पर्श से यह दल किसी दिन उठा था; आज ईर्ष्या-द्वेष, स्वार्थ तथा पतनशील दुर्गुणों के कारण गिर रहा है। (५) साम्यवादी दल—इसमें हम कांग्रेस समाजवादियों, साम्यवादियों सभी को गिन सकते हैं। अभी तक इस

दल पर पश्चिम की, विशेषतः साम्यवाद एवं मार्क्स की, भाव-धारा का प्रभाव है। धीरे धीरे यह दल शक्तिमान होता गया है। साहित्य, समाज सभी क्षेत्रों में इसने अपनी स्फूर्ति पश्चिमी मार्क्सवादियों से ग्रहण की है। यह दल अपनी भावनाधारा में प्रायः भौतिकवादी है; धर्म, नीति, सदाचार इत्यादि का साधारणतः विरोधी है। स्वतन्त्र भारत में इसने बड़ा हानिकर अभिनय आरम्भ किया है। राष्ट्र को शक्तिमान बनाने की जगह उसे दुर्बल बना रहा है। इधर साम्यवादियों के एक दल ने तोड़-फोड़ की कार्रवाई शुरू कर दी है। अनेक रेल दुर्घटनाओं तथा अग्निकांडों में इसका हाथ है। आँध्र, हैदराबाद, बंगाल तथा पूर्वी युक्तप्रान्त में इस दल ने कुछ शक्ति प्राप्त की है। इनके अतिरिक्त मुस्लिमलीग, हिन्दू महासभा इत्यादि के दल भी हैं। पर इनके निर्माण का आधार राष्ट्रीयता नहीं, अराष्ट्रीयता या संकुचित आत्म-रक्षण और आत्मविकास है।

असफलताओं की प्रतिक्रिया—इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में पहले सहयोग एवं सुधार, फिर भारतीयकरण, फिर औपनिवेशिक स्वाधीनता और बाद में पूर्ण राजनीतिक तथा आर्थिक स्वाधीनता का प्रवाह हम देखते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि भविष्य में इसका क्या रूप होगा; बहुत कुछ अन्तर्राष्ट्रीय परिवर्तनों तथा युद्ध के परिणामों पर यह निर्भर है। समाजवाद एवं गांधीवाद दोनों के लिए भविष्य में अनुकूल संयोग उपस्थित हो सकते हैं। पर भारतीय राजनीति में दो प्रकार की (सांस्कृतिक और आर्थिक) स्वाधीनता के लिए जो सङ्घर्ष आज हो रहा है, उसका कोई शुद्ध एवं निश्चित रूप तब बनेगा जब हम शुद्ध भारतीय की दृष्टि से ही सब समस्याओं की ओर देखने की आदत डालेंगे। अब भी औसत भारतवासी प्रायः संकुचित, धार्मिक, जातिगत, दलगत या प्रान्तीय स्वार्थों की दृष्टि से ही समस्याओं पर विचार करने का अभ्यस्त है।

आज की स्थिति—देश की असाधारण स्थिति में जनता का विवेक डावांडोल हो रहा है। जिस राम राज्य की कल्पना गांधीजी ने की थी वह हमारी आंखों से लुप्त हो गया है। दुःख यह है कि गांधीजी का नाम लेकर जनता की श्रद्धा से राजनीति का व्यापार चलाने वाले नेताओं ने भी उन स्वप्नों को भुला दिया जिनके लिए गांधीजी जिये और मरे। आज जनता जीवन की प्रारंभिक आवश्यकताओं के विषय में इतनी पीड़ित है जितनी कभी न थी। रोटी, कपड़ा, आश्रय सभी का अभाव है। तब जनता कैसे अनुभव करे कि हमें स्वतंत्रता मिली। कोई निश्चित योजना न होने के कारण शासन में भी बहुत शिथिलता आ गई है। पूँजीवादी योजना और समाजवादी प्रवृत्ति साथ नहीं चल सकती। खादी और मिल एक ही क्षेत्र में साथ नहीं चल सकती पर आज कल्पना के घोड़ों पर सवार हमारा नेतावर्ग यही कर रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि कठिनाइयाँ अनेक हैं। जन जीवन का स्तर गिर गया है; आबादी तेजी से बढ़ रही है पर ऐसे समय हमें जिस साहसिक और आत्मत्याग-पूर्ण नेतृत्व तथा पथदर्शन की आवश्यकता थी वह आज प्राप्त नहीं। राष्ट्र शंकित, भ्रमित और खीझ से भरा हुआ है। स्वयं कांग्रेस के नेताओं में मतैक्य नहीं—विभेद बढ़ रहा है। कितने ही पुराने कांग्रेस नेता कांग्रेस से निकल कर नया दल बना रहे हैं। शक्ति के प्रमाद ने अधिकारी वर्गों को चंचल कर दिया है। इसलिए कांग्रेस का जन-मानस पर जो अधिकार था वह आज नहीं रह गया और राष्ट्रीय नेतृत्व में एक व्यवधान आ गया है। इन अँधेरी घड़ियों में गांधीजी की याद आती है। राष्ट्र के शासन का ढाँचा पुराना ही बना है। आश्चर्य है कि पंडित जवाहरलाल जैसे चिन्तनशील नेता भी 'स्टीलफ्रेम' के पंजे में आ गये हैं। आज देश को क्रांतिकारी नेतृत्व की आवश्यकता है।



महात्मा गांधी

मोहनदास करमचन्द गांधी

['महात्मा']

: जन्म :

आश्विन कृष्ण १२, सं० १९२५ वि० : २ अक्टूबर १८६९ ई० ।

: मृत्यु :

माघ कृष्ण ५, शुक्रवार २००४ : ३० जनवरी १९४८ ई०

'आज महात्मा गांधी समग्र संसार के जीवन के मध्य में खड़े हैं, और कई शताब्दियों का भाग्य अपनी मुट्ठी में बन्द किये हुए है।"

—जान होम्स ।

कई वर्ष पूर्व अमेरिका के प्रसिद्ध धर्मशिक्षक श्री होम्स नें ये शब्द कहे थे, जो आज भी उतने ही सत्य लगते हैं।

२ अक्टूबर ! एक भाग्यवान दिवस, जिसने गांधी की ८१ वर्ष-गाँठें देखी हैं। यह छोटी सी दो की संख्या मानव जाति के इतिहास में तब भी याद की जायगी जब इतिहास की घटनावलियों के तिथि-क्रम मनुष्य के स्मृति-पट से मिट जायँगे।

ता० ३० जनवरी ! वह दिन जब भारतीय संस्कृति की मूर्त्त अभिव्यक्ति और प्रतीक गांधी को, राष्ट्र की विकृति और कुसंस्कृति ने गोलियों का उपहार दिया—जब इस युग-पुरुष की छाती ने उन मारक गोलियों का स्वागत किया, मानों जीवन निःशेष होकर भी मृत्यु पर छा गया हो। यह ३० जनवरी हमारे चिर-कलंक के रूप में युग-युग तक याद की जायग' ।

प्रवक्ता और महापुरुष शताब्दियों बाद संसार में आते हैं। उनके रूप में प्रभु का रूप हमारे सामने आता है। पृथ्वी पर ईश्वरत्व के अवतरण का यही रूप है। इन महापुरुषों के आते रहने से ही मनुष्यता अपने को सुरक्षित और पनपती हुई रख सकी है। हमारी संस्कृति की धरोहर को इन्होंने सुरक्षित रखा है। इन्होंने पथभ्रष्ट मनुष्य जाति को और अन्धकार में डूबते हुए दिलों को उभारा है और फिर ठीक मार्ग पर लगा दिया है। संसार का इतिहास इन महापुरुषों की कृति है और यदि हम इनको भूल जायँ तो अपने को उस विष से

प्रवक्ताओं का महत्व

बचा न सकेंगे जिसका नाम मृत्यु है और जिसमें आत्मा की मूर्च्छना का मारक अन्धकार है।

× × × ×

हाँ, तो कह रहा था कि आज से ८१ वर्ष पूर्व २ अक्टूबर ने मानवता की गोद में एक भावी महापुरुष का अवतरण किया था। तब से ८१ हेमन्त बीत गये हैं। १८६९ की दुनिया १९५१ में पहुँच गई है। इस बीच वह बढ़ा, पनपा, फूला और फला। उसने हमें प्रकाश दिया; उसने हमारे अन्तःकरण को जाग्रत किया—जैसे जीवन में, वैसे ही मृत्यु में भी। क्या अच्छा हो, आज हम लेखा लगालें और देखें कि उसने हमें क्या दिया; और उसकी महानता का रहस्य क्या है?

किसी विचारक ने जब लिखा था कि 'संसार अपने महापुरुषों के विषय में कुछ नहीं जानता' तो उसने मनुष्य जाति के विवेक पर एक अप्रिय पर सत्य टीका की थी। आज यातायात एवं प्रचार की वैज्ञानिक सुविधाओं के इस युग में भी वह बात कुछ कम सत्य नहीं है। राजनीति के प्रबल प्रभञ्जन ने यद्यपि गांधी को संसार के प्रत्येक भाग तक पहुँचा दिया और उन पर लिखा भी इतना जा चुका है कि एक अलग पुस्तकालय बन सकता है, फिर भी यह कहने में **गांधी के विषय में** जरा भी अत्युक्ति न होगी कि उनके विषय में संसार **अज्ञान** का ज्ञान नगण्य है और जो कुछ लिखा गया है वह अनुभूति एवं ज्ञान के लिए नहीं वरं समाचारपत्र एवं पुस्तक-पाठकों की उत्कंठा की तृप्ति के लिए लिखा गया है। हममें से भी, जो उस प्रकाशपिण्ड के निकट रहे हैं, बहुत ही थोड़े लोग ज्योतिःपुञ्ज की जगमगाहट में स्थिर दृष्टि से उसकी महानता को देख सके हैं। उसका वर्णन तो बहुत किया गया है पर उसे समझने, देखने और अनुभव करने की चेष्टा बहुत ही कम की गई है।

× × × ×

संसार में राजनीतिज्ञ तो बहुत हुए हैं और हमारे देश में भी उनकी कुछ कमी नहीं रही है। देशभक्तों की सूची उठाकर देखें तो दादाभाई, लोकमान्य, फीरोजशाह मेहता, मालवीय जी, देशबन्धु, मोतीलाल जी, लालाजी एक से एक नाम हमारे मन में गूँजते हैं। इनके चरणों में सिर झुक जाता है। इनके त्याग और मातृ-भूमि के प्रति इनकी अविरल निष्ठा को देखकर दिल आदर और सम्मान से उमड़ता है।

परन्तु एक प्रश्न! भारत को एक दुबले-पतले गांधी ने जिस तरह चेतना से भर दिया उस तरह ये क्यों न कर सके? वायसराय से लेकर साधारण सिपाही तक और महाराजाओं से लेकर साधारण जङ्गली गोंड तक क्यों उसके स्पर्श से सिहर उठा? ऐसा विराट् रूप दूसरों को प्राप्त क्यों न हुआ? एक आदमी जिसका व्यक्तित्व कुछ आकर्षक नहीं था, जिसका वक्तृत्व झल्लाहट पैदा करता था और जिसकी बौद्धिक शक्तियाँ कुछ असाधारण नहीं थीं क्यों भारत के प्राणों में बस गया और दुनिया में उसके प्रति इतनी उत्सुकता क्यों दिखाई देती है? वह क्या चीज है जिसने उसे ऐसे अजेय, ऐसे शक्तिमान रूप में हमारे सामने ला खड़ा किया।

यह विराटता दूसरों को क्यों प्राप्त नहीं?

बात यह है कि हमारा जीवन मूर्च्छना से भर गया था और जब हम आधुनिक सभ्यता की गति में आत्मविश्वास खोकर बेसुध बहे जा रहे थे, जब मनुष्य अपनी शक्ति एवं आनन्द के स्रोत को भूल गया था और दुनिया की बाहरी गुलकारियों, मदिर प्रवञ्चनाओं में भटक रहा था, जब हम अपने को मशीन समझ बैठे थे और जीविका एवं धन की प्रबल होड़ ने हमारे दृष्टिकोण को स्वार्थान्ध कर दिया था, तब ऐसे अन्धकारमय क्षितिज के ऊपर, गांधी की वाणी अकस्मात् बिजली की नाईं, चमक उठी और उसने बोध एवं विश्वास-भरे शब्दों में पुकार कर कहा—'ऐ भूले मनुष्य, तेरे लिए यह मार्ग असत् है। तू अपने

को भूल कर दुनिया को न पा सकेगा।'

गांधी, आत्म-विस्मृत, दैन्य से भरे हुए हमारे जीवन के बीच, असीम आत्मविश्वास के ध्रुवतारे की भाँति, हमें मार्ग-निर्देश करता है। यह छोटा सा आदमी! इसका साहस हमें आकर्षित करता था—गरीब इसकी ओर माता समझकर देखते थे; धनी और अधिकारी इसकी हिम्मत पर आश्चर्य करते थे। यह कैसा आदमी है! पर यही गांधी है; आत्म-विश्वास की मूर्ति; मानवता के दुःख से दुःखी और उसे अंधकार से प्रकाश में लाने को उद्यत! सर्वश्रेष्ठ मानव संस्कृति के प्रतीक-सा।

सतत साधना से गढ़ा जीवन

उसकी साधना उसके जीवन में प्रकाश-रेखा की भाँति चमक रही है। जब हम उसकी जीवनी पढ़ते हैं तो देखते कि हैं वह आरम्भ से अन्त तक साधनामय है। वह उठता है, गिरता है, फिर उठता है और आगे बढ़ता जाता है। यह साधना सत्य की साधना है। इस सत्य-साधना में अहिंसा उनका साधन है; अन्तःकरण कसौटी है; निजी एवं भारत का सार्वजनिक जीवन उसकी प्रयोगशाला है। और इस दृष्टि से देखें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचने में देर न लगेगी कि वह राजनीतिक नेता उतना नहीं, जितना साधक और हमारी संस्कृति का उद्धारक है। उसका सन्देश राष्ट्रीय नहीं अन्तर्राष्ट्रीय या सार्वदेशिक है। राजनीति को भी इस साधना ने प्रभावित किया पर वह इसलिए कि आज राजनीति ने हमारे जीवन को चारों ओर से आच्छन्न कर लिया है और बिना उससे निपटे कोई चल नहीं सकता। राजनीति में वह आँधी की तरह आया, इसलिए कि वह प्रत्येक ऐसे बन्धन का विरोधी था जो आत्मा को मूर्च्छित करता और अन्तःकरण की आवाज को दबाता है। वह ऐसी प्रत्येक शासन-प्रणाली एवं समाज-व्यवस्था के प्रति विद्रोही रहा जो मनुष्य में पशुता को बढ़ाती, स्वार्थ का भाव प्रबल करती और उसे वासनाओं का गुलाम बनाती है। और वह

प्रत्येक ऐसी चीज का समर्थक था जिससे आत्मिक शक्ति बढ़ती है, अन्तःकरण को बल मिलता है और जो मनुष्य में देवत्व लाती है।

समाज-सुधारक एवं राजनीतिज्ञ इत्यादि तो इस साधक पुरुष, सत्य-पुरुष गांधी, के टुकड़े, अपूर्ण पक्ष हैं। वस्तुतः उसका जीवन, बचपन से मृत्यु तक, साधना की एक अविच्छिन्न धारा है। यह असत् एवं प्रेय के साथ सतत संघर्ष का जीवन है जिसमें श्रेय की ओर जाने के लिए सतत युद्ध है, सतत तैयारी है, सतत जागरूकता है। प्रवासी भारतीय समस्या में, खिलाफत में, असहयोग में, सत्याग्रह में, हरिजन-सेवा एवं ग्राम-सेवा में सर्वत्र वही तैयारी का क्रम है वही साधना का जीवन है; वही श्रेय के चिरयात्री का चित्र है। वह स्पष्टतः आत्म-परिष्कार एवं आत्म-साक्षात्कार का मार्ग है।

प्रेय से श्रेय की ओर

दूसरी विशेषता यह है कि इस सत्य की साधना में न केवल लक्ष्य निर्मल एवं विशुद्ध है वरन् साधना की निर्मलता एवं विशुद्धता पर भी बहुत जोर दिया गया है। बुराई से भलाई पैदा नहीं हो सकती और अशुद्ध साधनों के द्वारा विशुद्ध लक्ष्य की प्राप्ति असम्भव है। इसका वैज्ञानिक कारण यह है कि साध्य वस्तुतः साधन की ही चरम परिणति का नाम है। वह साधनों से बिलकुल अलग-सी कोई चीज नहीं है। संसार में सत्य के शोधक और साधक भी बिलकुल ही नगण्य नहीं हुए पर दो-तीन को छोड़ साधनों की शुद्धता पर किसी ने इतना ध्यान न दिया। गांधी ने अपनी सत्य-साधना में जो अहिंसा को इतना महत्व दिया वह योंही नहीं है। संसार में जो जीवन है, सब स्रष्टा का चैतन्यांश है अतः सब पवित्र है; यह भाव रखकर ही मनुष्य सृष्टि के सम्पूर्ण जीवन की अभिन्नता को देख एवं ग्रहण कर सकता है। इस दृष्टि से अहिंसा विश्व की अभिन्नता, एकात्मरूपता की अनुभूति का आवश्यक

साधनों की शुद्धता

उपादान है, और इस अर्थ में, एक प्रकार से वह स्वयं अपरिणत सत्य ही है। इसमें अपने एवं दूसरे के जीवन-नाश की सबसे कम संभावना है। इससे शक्ति का क्षय नहीं होता; इससे आत्म शक्ति जाग्रत करनेवाली भावनाओं को उत्तेजन मिलता है। इसलिए यह अहिंसा तात्विक एवं व्यावहारिक दोनों दृष्टियोंसे गांधी की सत्य-साधन का महत्वपूर्ण अङ्ग है।

और अहिंसा को उसने अपने सतत परीक्षण एवं सतत जागरूकता के जीवन में माँज-माँज कर अत्यन्त व्यापक एवं परिष्कृत रूप दिया। केवल जीव का नाश न करने तक ही वह सीमित नहीं है; किसी को किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक पीड़ा उसके अकल्याण की भावना से न देना, उलटे उसके कल्याण के लिए कामना एवं चेष्टा करना भी उसकी अहिंसा में शामिल है। और इस भाव की परिणति के लिए ईर्ष्या-द्वेष, लोभ, भय इत्यादि तामसिक एवं असात्विक प्रवृत्तियों का त्याग करना आवश्यक है। इस बात को समझ लें तो हम हिन्दू संस्कृति के मूल तक पहुँच जाते हैं और आधुनिक सभ्यता में जो होड़, अशान्ति एवं प्रतिक्रिया है, उसका अन्त अपने आप हो जाता है।

इसलिए गांधी ने नीति (मारेलिटी) पर इतना जार दिया है। सच बात तो यह है कि बुद्ध के बाद, जीवन में नीति की प्रधानता पर इतना जोर देने वाला दूसरा महापुरुष हमारे बीच नहीं आया। गांधीजी का सारी हस्ती जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होनेवाले अन्तःकरण-नाशक कार्यों के विरुद्ध एक स्थायी —अविच्छिन्न—नैतिक विद्रोह है। जहाँ कानून मनुष्य की आत्मा के विकास की सुविधा नहीं देता, उसे धुँधला कर देता है तहाँ उसका मानना पाप है। जहाँ धर्म विवेक एवं सच्ची निष्ठा का तिरस्कार करता है और व्यक्ति एवं समाज की नैतिक उन्नति में बाधक होता है तहाँ वह त्याज्य है। इस प्रकार के नैतिक अत्याचार को आश्रय न देना सत्य-शोधक का कर्तव्य है और कर्तव्य-पालन में जो कष्ट

नीति का प्रवक्ता

मिले उन्हें शुद्ध हृदय से सहन कर लेना उसका धर्म है।

इस प्रकार उसका सत्याग्रह का तत्वज्ञान विशुद्ध भारतीय संस्कृति के मूल, जीवन की शुद्धता एवं नैतिकता से जन्म लेता है। इस नीति का उसने व्यापक प्रयोग किया और उसे व्यक्तिगत साधना के जीवन से उठा कर विश्व के राजमार्ग पर ला खड़ा किया। अपने प्रतिहिंसा-शून्य कष्टसहन के प्रयोग से उसने आधुनिक समाज-व्यवस्था के दोष हमारे सामने स्पष्ट कर दिये हैं। साधु एवं सज्जन का उत्पीड़न स्वयं समाज के विरुद्ध एक टीका है। श्री जी० वी० मेहता ने अपनी पुस्तक 'कांशंस आव ए नेशन' में ठीक ही लिखा है :—

"एक गांधी का अपना अपराध स्वीकार करना ही वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था के दोषपूर्ण होने की घोषणा है। इसे देख कर लोगों के अन्तःकरण में यह बात उठती है कि जो समाज-व्यवस्था डायर के लिए पेंशन का प्रबन्ध करती है और एक संत को छः वर्ष के लिए जेल भेज कर उसका मुँह बन्द कर देती है, उसके मूल में अवश्य ही कुछ दोष होगा।"

इस नैतिक भावना को जिसके बिना मनुष्य का जीवन पशु के स्तर को छूता है, गांधी ने मानव समाज के सामने अत्यन्त व्यावहारिक रूप में रखा और इसलिए वह इस युग का नैतिक बैरोमीटर बन गया।

× × ×

इस नीति के कारण ही हमारे लिए वह इतना महान् है। उसने भारतीय संस्कृति के उद्गम को पहचाना। उसने भारत की आत्मा को देखा। उसने भारत की मूर्छित दिव्य अन्तःशक्ति को चैतन्य किया। बहुत से लोग जो गांधी के टुकड़े देखते हैं, पूरा पूरा न देख सकने के कारण, धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में उसके हस्तक्षेप पर उत्तेजित हुए, पर मैंने तो गांधी को कभी इसलिए नहीं अपनाया कि वह राज-नीतिक नेता है। मैंने सब तरफ से उसे देखा है और अत्यन्त निर्दय

कसौटियों पर कसता रहा हूँ। मेरा तो यह विश्वास है कि वह उलटे राजनीतिक की अपेक्षा इन्हीं क्षेत्रों में बोलने एवं हस्तक्षेप करने का अधिकारी था क्योंकि तत्वतः वह भारत का राजनीतिक नेता नहीं, सांस्कृतिक नेता था और मृत्यु के बाद भी है। वह हमारी पंगु-सी हो रही हिन्दू संस्कृति का पक्ष है। राजनीति में उसको जो हमने देखा और पाया है इसका कारण यह है कि वह जीवन को सम्पूर्णता में ग्रहण करता है, खंड-खंड करके उसे नहीं अपनाता। इसलिए हम लोगों में से जहाँ कोई राजनीतिज्ञ, कोई समाज-सेवक, कोई आदर्शवादी और कोई व्यावहारिक बन कर बैठता है तहाँ वह राजनीतिज्ञ, समाज-सेवक, आदर्शवादी और व्यावहारिक सब एक में था—है। उसने जीवन के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में नीतिप्रधान धर्म को महत्व दिया। वह एक क्षेत्र में अर्थ और दूसरे में धर्म को लेकर नहीं चला। उसका सत्य सब में व्याप्त है। राजनीति में धर्म को स्थान न था। उसने कड़क कर कहा—"वह कौन सा क्षेत्र है जिसमें धर्म को स्थान नहीं?" जीवन के भिन्न दृष्टिकोणों के कारण ही सङ्कीर्णता पैदा होती है। यदि हम सर्वाङ्गीण दृष्टि से वस्तुओं को देख सकें तो यह सङ्कीर्णता कैसे रहे? जैसे राजनीति को लें तो गांधी की दृष्टि में वह सर्व-साधारण के कल्याण का साधन है। इस कल्याण का स्थूल तात्पर्य तो सबके लिये रोटी-कपड़े की समुचित व्यवस्था होना है। अब इस रोटी एवं कपड़े को ही लें तो राष्ट्र या राज्य की दृष्टि से यह राजनीति एवं अर्थ-नीति का प्रश्न है। समाजशास्त्री की दृष्टि से समाज में धन एवं सुविधाओं के न्यायपूर्ण बँटवारे और उचित समाज-व्यवस्था का प्रश्न है और मानवता की दृष्टि से नीति-शास्त्र, तत्वज्ञान एवं धर्म का प्रश्न है। इसलिए अलग-अलग दृष्टि कोणों से विचार करने वाले, इन क्षेत्रों एवं दृष्टिकोणों को अलग-अलग लेकर चलने वाले जहाँ उसे एक संकुचित रूप में ग्रहण करते हैं तहाँ

परिपूर्ण दृष्टि

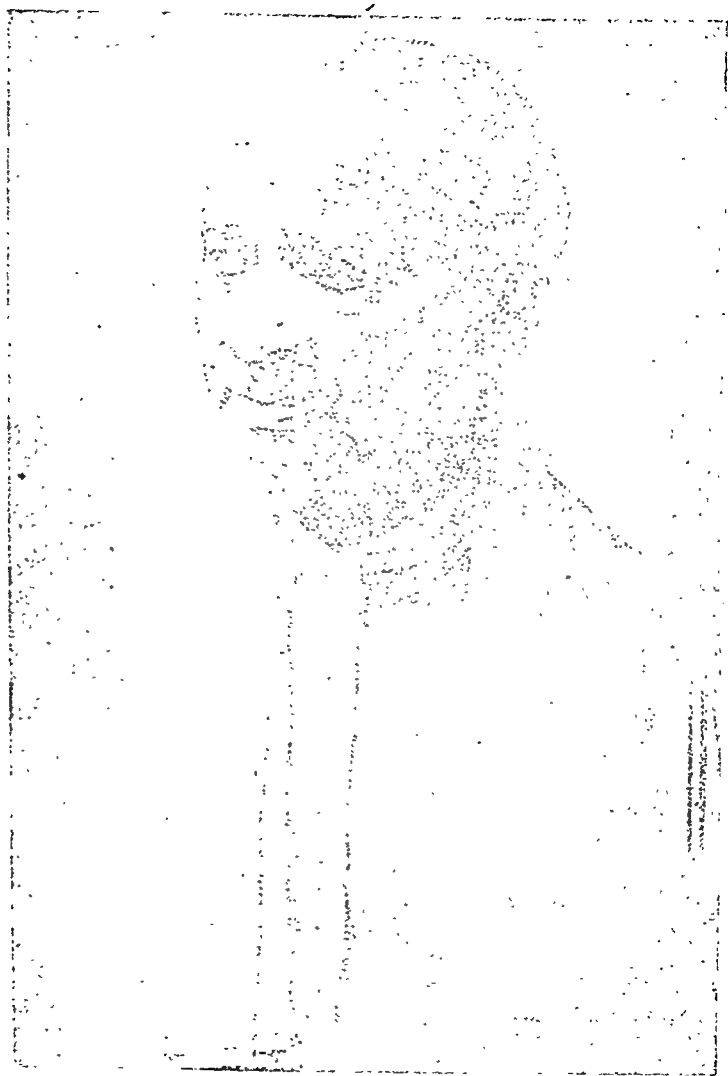
गांधी की दृष्टि में वह धर्म भी है, राजनीति भी है; समाज-सुधार भी। इन तीनों को मिलाकर उसने एक में—उस प्रश्न की परिपूर्णता में देखा।

मतलब यह कि राजनीति जीवन से भिन्न नहीं है। इसलिए वह उसके सार्वदेशिक नीतिपूर्ण धर्म से अलग न हो सकी। पर मेरी दृष्टि से तो विगत कई सौ वर्षों में ऐसी दूसरी शक्ति भारतवर्ष में न आई जिसने हिन्दू संस्कृति के विनाश की गति को इतनी सफलता एवं शीघ्रता के साथ रोक दिया हो और जिसने उसके उद्धार एवं उसकी पुनः प्रतिष्ठा में इतना अधिक कार्य किया हो।

भारतीय समाज-का व्यवस्था प्रतिबिम्ब

जन्म से बनिया और आदर्श से ब्राह्मण गांधी में भारतीय समाज-व्यवस्था पूर्णतः प्रतिबिम्बित है। धर्म और आदर्श की प्रतिष्ठा में लगने वाला उसका त्याग और तपस्या का जीवन आदर्श ब्राह्मण का जीवन है। इस आदर्श को कार्यमय बनाने में उसका उत्साह, उसका युद्ध, उसकी लगन एक आदर्श क्षत्रिय को प्रकाशित करती है। उसकी सहिष्णुता, उसका परिश्रम, उसकी समझौते की व्यावहारिक बुद्धि, उसके श्रेष्ठ वैश्यत्व का उदाहरण है और मजदूर के प्रति, अछूत के प्रति उसका असीम प्रेम, उसका निरन्तर सेवामय जीवन, उसकी अपने को भङ्गी कहने की उत्सुकता और किसान-मजूर जैसा स्वच्छ, सीधा-सादा परिश्रमी जीवन बिताने की भावना उसे श्रेष्ठ शूद्र के रूप में हमारे सामने लाती है। इस प्रकार वह भारतीय सभ्यता एवं समाज-व्यवस्था का शुद्ध समीकरण एवं समन्वय है। जब कभी उसके जीवन का उचित रूप में अध्ययन किया जायगा, इतिहासकार एवं विवेचक इसी निश्चय पर पहुँचेगा कि संस्कृति के उद्धारक गांधी ने भारतीय राजनीति को भी उच्च स्तर पर पहुंचाने का सतत प्रयत्न किया।

———



सरदार वल्लभभाई पटेल

वल्लभभाई पटेल

—'सरदार'—

जन्म : ३१ अक्टूबर १८७५ ई०

मृत्यु : १५ दिसम्बर १९५० ई०

"वल्लभभाई बर्फ से ढके ज्वालामुखी हैं।"

—स्व० मौलाना शौकतअली

[१]

जीवन-कथा

वल्लभभाई का नाम आज किससे छिपा है? नागपुर, बोरसद, बारडोली उनकी दृढ़ सैनिकता और प्रबन्ध शक्ति का गान करते हैं। गुजरात पर उनकी अमिट छाप है। १९२० में राजनीति को स्वच्छ, पवित्र और शक्तिमान बनाने का जो प्रयोग गांधीजी ने आरम्भ किया और उसके फल-स्वरूप सार्वजनिक जीवन के मन्थन से जो रत्न निकले उनमें से वल्लभभाई भी थे। १९२१ ईस्वी में जनता को अपना परिचय देते हुए उन्होंने स्वयं कहा था—

परिचय

"मैं छल-छबीला रसिया था। राजनीति में भाग लेने से ताश खेलना हजार गुना अच्छा समझता था। मुझे इस मक्कारी और मसखरापन के व्यापार से घृणा थी। सहसा इस क्षेत्र में गांधीजी प्रकट हुए। उन्होंने चमत्कार ही तो किया। मेरी काया पलट गई।"

और फिर १२ वर्ष के बाद हम उन्हें राष्ट्रनायक के रूप में सत्याग्रह-सेना का नेतृत्व करते देखते हैं।

बालजीवन और शिक्षण

गुजरात में लवा और कदवा, कुरमी जाति की दो उपजातियाँ हैं। जैसा कि इनके नाम से प्रकट है ये अपने को क्रमशः लव और कुश के वंशज बताती हैं। वल्लभभाई लवा उपजाति के थे। इनकी जन्म-भूमि गुजरात के पेटलाद तालुका का करमसद गाँव है। वल्लभभाई के पिता जवेरभाई की आर्थिक स्थिति

वंश परिचय

साधारण थी। उनके यहाँ खेती होती थी और कुछ निजी जमीन भी थी। पर जहाँ उनकी आर्थिक स्थिति साधारण थी, तहाँ वह वीरता और साहस में वहुत बढ़े-चढ़े थे। १८५७ ई० में, जब देश में, निराशा की बांध को तोड़कर, हृदय के समस्त क्षोभ को लेकर, विद्रोह का ताण्डव आरम्भ हुआ जवेरभाई खेतों की हरियाली और कृषक-जीवन की मस्ती को भूलने लगे। कुदाल, फावड़े और हल वेजान-से मालूम हुए। फलतः ३ साल तक उसका पता न चला। पीछे मालूम हुआ कि भारतीय इतिहास की उस वीराङ्गना, झाँसीवाली महारानी लक्ष्मीबाई के बुँदेलों के साथ शामिल होकर उस विद्रोह में वह भी अपना हिस्सा अदा करते रहे हैं। और इतनी ही वात नहीं। उनकी निर्भीकता और बुद्धि गदर की अगणित कठिनाइयों के बीच भी स्थिर रही और इन्हीं दिनों की एक घटना में यों प्रकाशित हुई। जवेर-भाई मल्हारराव के कैदी हो गये थे। एक दिन की

पिता

वात है, कैदखाने के सामने वैठकर महाराज मल्हार-राव शतरंज खेल रहे थे, ज़वेरभाई सीकचों से तमाशा देख रहे थे। जब मल्हारराव गलत चाल चलने लगे तो ज़वेरभाई ने कैदखाने के सीकचों के वीच से लक्ष्य कर कहा—"राजा, खोटी चाल मत चल, अपने अमुक अमुक मोहरे को अमुक-अमुक चाल चला।" मल्हरराव कैदी की सलाह से शतरंज में विजयी हुए। ऐसे वुद्धिमान व्यक्ति को जेल में रखना उन्हें उचित न मालूम हुआ। ज़वेरभाई छोड़ दिये गये। ज़वेरभाई का जीवन १८५७ ई० के भारत के प्रतिनिधि के रूप में व्यक्त हुआ था। इस वीरता और साहस के साथ उनमें ईश्वर-भक्ति और श्रद्धा भी वहुत थी और संयमपूर्ण जीवन के कारण उनका स्वास्थ्य भी वहुत अच्छा था। ९२ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ। वल्लभभाई में जो साहस था, खतरे के वीच में चमक उठने वाली जो सैनिक प्रतिभा थी, जो असीम कष्ट-सहिष्णुता थी वह सब उनको पिता से ही विरासत में मिली थी।

प्रभु को वल्लभभाई से आगे चलकर जो काम लेना था, उसके चिह्न बालजीवन की पगडंडियों पर भी हम यत्र-तत्र बिखरे देखते हैं।

प्रारम्भिक शिक्षण

वल्लभभाई का बचपन माता-पिता के साथ गाँव में ही बीता। घर पर पिता की देख-रेख में इनकी थोड़ी-बहुत शिक्षा हुई। पिता सुबह खेत पर जाते समय इन्हें साथ ले जाते और रास्ते में पहाड़े याद कराते। घर पर थोड़ी शिक्षा पाने के बाद यह नड़ियाद पहुँचे। वल्लभभाई और लड़कों की भाँति सुस्त और दब्बू न थे। जहाँ गये, अपना जीता जागता जीवन और नटखट स्वभाव साथ ले गये। इनके नटखट और उलझनेवाले स्वभाव को प्रकाशित करनेवाली बचपन की अनेक घटनाएँ आज प्रसिद्ध हो गई हैं।

जब यह नड़ियाद में पढ़ते थे तब की बात है। जैसा कि आज भी बहुत से स्कूलों में होता है, स्कूल के एक मास्टर पाठ्य-पुस्तकों का

स्कूल में हड़ताल

व्यापार करते थे। इससे उनको कुछ बच जाता था। वह छात्रों पर दबाव डाला करते कि मुझसे ही पुस्तकें खरीदो। वल्लभभाई ने आन्दोलन उठाया कि कोई लड़का उनसे पुस्तकें मोल न ले। लड़कों में बड़ी उत्तेजना फैली; यहाँ तक कि हड़ताल हो गई। ५-६ दिन स्कूल बन्द रहा। अन्त में शिक्षक को झुकना पड़ा और तब हड़ताल समाप्त हुई।

नड़ियाद की शिक्षा के बाद वल्लभभाई बड़ौदा पहुँचे। संस्कृत पढ़ने में इनका मन न लगता था; वह उनको दुर्बोध प्रतीत होती थी

'पधारो महापुरुष !'

इसलिए मैट्रिक में इन्होंने गुजराती ली थी। छोटेलाल नाम के एक शिक्षक गुजराती पढ़ाते थे पर वह संस्कृत के बड़े भक्त थे। संस्कृत न लेनेवाले लड़कों से चिढ़ते थे। वल्लभभाई जब उनकी कक्षा में पहुँचे तो वह व्यंगपूर्वक बोले "पधारो महापुरुष!" उस समय उन्हें क्या मालूम था कि जिन शब्दों में उन्होंने व्यंग किया है वे एक दिन सत्य

होंगे। १३-१४ वर्ष के इस नटखट बालक और मास्टर की यों बातचीत हुई : —

"कहाँ से पधारे ?"—मास्टर ने पूछा।

वल्लभभाई ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया—"करमसद से।"

मास्टर बोले—"संस्कृत छोड़कर गुजराती ले रहे हो ! क्या तुम्हें नहीं मालूम कि बिना संस्कृत के गुजराती नहीं शोभती ?"

नटखट बालक ने उत्तर दिया—"पर मास्टर जी, यदि हम सब बालक संस्कृत पढ़ते तो फिर आप किसे पढ़ाते !"

"उद्धत बालक !" क्लास की पिछली बेंच पर दिन भर खड़ा रहने की आज्ञा हुई।

पर इस घटना से ही शिक्षक और विद्यार्थी वल्लभ का मनमोटाव हो गया। मास्टर का क्रोध यहीं तक न ठहरा। वह वल्लभ को तङ्ग करने लगे। हुक्म देते कि घर से पहाड़े लिखकर लाओ। अँग्रेजी की ऊँची क्लास के विद्यार्थी का यह अपमान था। फिर दिन-दिन वह पहाड़ों का बोझ बढ़ाते जा रहे थे। गुजराती में 'पहाड़े' शब्द को 'पाड़े' कहते हैं जिसका दूसरा अर्थ गाय भैंस का बछरा भी होता है। एक दिन मास्टर साहब ने पूछा—"अरे तुम पाड़े करके लाये ?"

नटखट वल्लभभाई बोले—"मास्टर साहब, पाड़े लाया तो था परन्तु स्कूल के दरवाजे पर उनमें से दो एक भड़क पड़े और उनके भड़कते ही सारे के सारे भाग गये !"

मास्टर साहब लाल हो गये और इस 'रिमार्क' के साथ कि 'मैंने ऐसा लड़का नहीं देखा' वल्लभभाई को गुस्ताखी की सजा देने के लिए हेडमास्टर के पास भेज दिया। हेडमास्टर के पूछने पर विद्यार्थी वल्लभ ने उत्तर दिया—"क्या करें साहब यह मुझे तंग करते हैं। मुझसे पहाड़े लिखवाते हैं। भला यह भी कोई सजा है ? पढ़ने की पुस्तक से कुछ

'ऐसा लड़का नहीं देखा !'

लिखायें तो मुझे कुछ लाभ भी हो। इस पहली पुस्तक के एक-दो के पहाड़े से तो किसी को कुछ लाभ हो नहीं सकता।" हेडमास्टर ने वल्लभभाई को बिना कुछ कहे-सुने छोड़ दिया। यह हेडमास्टर साहब—श्री नरवण—अभी कुछ दिनों पहले जीवित थे और अन्त तक उनका यही मत था कि—"मैंने ऐसा लड़का नहीं देखा !"

दो-एक महीने के बाद फिर इनका शिक्षक से झगड़ा हो गया और उसने इतना तूल पकड़ा कि यह बड़ौदा हाई-स्कूल से निकाल दिये गये। नड़ियाद लौट आये और वहीं से मैट्रिक की परीक्षा पास की।

जीवन में प्रवेश

ऊपर यह बात लिखी जा चुकी है कि वल्लभभाई के माता-पिता की आर्थिक अवस्था अच्छी न थी। अबतक तो वल्लभभाई की शिक्षा किसी तरह चली पर कालेज की शिक्षा का भार वे न उठा सकते थे। उधर वल्लभभाई में भी ऊँची साहित्यिक शिक्षा प्राप्त करने की विशेष उत्कंठा न थी। असल में उनका हृदय बैरिस्टर बनने के लिये लालायित था। पर यह एकाएक तो हो नहीं सकता था इसलिए उन्होंने मुख्तारी की परीक्षा पास कर ली और गोधरा में मुख्तारी करने लगे। कुछ दिनों बाद बोरसद चले गये और वहाँ प्रैक्टिस शुरू की। इनकी प्रैक्टिस खूब चली। ज्यादातर यह फौजदारी के मामले ही लेते थे। इस सिलसिले में इन्हें मानव स्वभाव की विचित्रता का खूब ज्ञान हुआ। यह मुकदमों में बड़ा परिश्रम करते और बड़ी सूक्ष्म एवं लगन के साथ उन्हें लड़ते थे। बाल की खाल निकालने और जिरह करने में पटु थे। इनकी दलीलों से अदालतों के हाकिम दङ्ग रह जाते थे। छोटे-मोटे अधिकारियों एवं पुलिस अफ़सरों पर वल्लभभाई का बड़ा आतङ्क था। हस्वेएड नामक एक अङ्गरेज मजिस्ट्रेट छिछोरी प्रकृति का था। बात बात में तू तड़ाक और अवे तवे पर आ जाता था। कत्ल के एक मामले

मुख्तारी

में वल्लभभाई ने उसे बड़ा तंग किया। वह बात याद करके उत्तर जीवन में भी वह अपनी हँसी नहीं रोक सकते थे।

जब वह गोधरा में थे तब एक बार वहाँ भयंकर प्लेग फैला। अदालत के नाज़िर का लड़का बीमार हुआ। वल्लभभाई ने उसकी बड़ी सेवा सुश्रूषा की पर वह न बच सका; चल बसा। श्मशान से लौटते समय वल्लभभाई को अपनी तबियत जरा भारी मालूम पड़ी। घर आकर बीमार पड़े; गिल्टी निकल आई। बीमारी की दशा में भी गाड़ी में बैठ आनन्द पहुँचे और पत्नी से कहा— "तुम करमसद जाओ; मैं नड़ियाद जाता हूँ; अच्छा हो जाऊँगा।" बेचारी पत्नी ऐसे समय उनके साथ रहना चाहती थी पर दबाव डालकर उसे भेज दिया। असल में होनी कुछ और थी। वल्लभभाई तो नड़ियाद पहुंच कर अच्छे हो गये पर उधर करमसद में पत्नी बीमार पड़ गई। 'आप्रेशन' के लिए वल्लभभाई उसे बम्बई पहुंचा आये। उसका समाचार पत्र से, प्रायः रोज ही, उन्हें मिलता रहता था। पर पत्नी की तबियत फिर न सुधरी और एक दिन जब वल्लभभाई अदालत में एक मुक़दमा लड़ रहे थे उन्हें पत्नी के देहान्त का समाचार तार से मिला। तार को पढ़कर उन्होंने मेज पर रख दिया। मुक़दमे का सा। काम समाप्त कर जब बाहर आये तब मित्रों से तार की चर्चा की! ऐसे समाचार से भी वह विचलित न हुए और बराबर अपना काम करते रहे। धीरज का गुण उनमें बहुत प्रारम्भिक अवस्था से पाया जाता था।

पत्नी-वियोग

\+ \+ \+

अब इनके पास कुछ पूँजी एकत्र हो गई थी और विलायत जाकर अपनी बैरिस्टर बनने की इच्छा की पूर्ति कर सकते थे। इसलिए इन्होंने एक कम्पनी से यात्रा के सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार शुरू किया। कहीं एक पत्र इनके बड़े भाई विट्ठल-भाई के हाथ लगा। अंग्रेजी में दोनों के नाम वी० जे०

बैरिस्टर

पटेल होने के कारण यह गड़बड़ी हुई। बड़े भाई ने इन्हें समझाया कि "मैं तुम से बड़ा हूँ; पहले मुझे इंग्लैंड जाने दो। मेरे वापस आने पर तुम चले जाना।" इन्होंने स्वीकार कर लिया और इस बातचीत के १५ दिन बाद ही विट्ठलभाई इंग्लैंड चले गये। जब तीन वर्ष बाद बैरिस्टरी की परीक्षा पास करके लौटे तब यह इंग्लैंड गये। इंग्लैंड में रहते समय वह नटखट स्वभाव न जाने कहाँ हवा हो गया। यह एक परिश्रमी विद्यार्थी के रूप में दिखाई पड़े। अध्ययन का यह हाल था कि निवास से मिडिल टेम्पुल का पुस्तकालय ११ मील दूर था। वल्लभभाई बड़े तड़के उठते और नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर पुस्तकालय पहुँच जाते। फिर पढ़ने लगे तो पढ़ने ही लगे। दूध-रोटी मँगाकर वहीं खा लेते और फिर पढ़ने लगते। कभी-कभी तो जब शाम को पुस्तकालय बन्द हो जाता, सब लोग चले जाते और कर्मचारी आकर इनको पुस्तकालय बन्द होने की सूचना करते तब यह उठते और घर आते। इन दिनों इन्होंने सत्रह-सत्रह घंटे अध्ययन किया था और फल भी वैसा ही हुआ। यह बैरिस्टरी की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में प्रथम उत्तीर्ण हुए। इतने अच्छे परीक्षा फल के कारण ५० पौंड की एक छात्रवृत्ति मिली और चार टर्म की फ़ीस माफ़ हो गई। परीक्षा में लिखे इनके उत्तरों को पढ़कर इनकी प्रतिभा पर परीक्षकों को आश्चर्य हुआ। उनमें से एक ने भारतप्रवासी चीफ जस्टिस स्काट के नाम वल्लभभाई को एक सिफ़ारिशी पत्र भी दिया कि ऐसे आदमी को न्याय-विभाग में ऊँची जगह देनी चाहिए।

जब तक वल्लभभाई इंग्लैंड में रहे अत्यन्त सीधे-सादे ढङ्ग से रहे। वहाँ के कोई प्रलोभन उनको आकर्षित न कर सके। नाटक-सिनेमा, सैर-सपाटे में कभी वह शामिल न हुए। यहाँ तक कि परीक्षा फल निकलते ही सीधे हिन्दुस्तान को रवाना हो गये। भारत पहुँचे और अहमदाबाद में बैरिस्टरी करने लगे। थोड़े ही समय में इनकी बैरिस्टरी

खूब चमकी और इनकी धाक-सी जम गई। रुपया खूब कमाया पर इस समय और इनके पहले इनका जीवन आराम से जिन्दगी बितानेवाले नवशिक्षित आधुनिक भारतीय का जीवन था। श्रद्धा-विश्वास हवा हो चुके थे। एक बार गुजरात क्लब में इन्होंने स्वयं ही कहा था—"....मैं दुर्गा पूजा के दिन सैर-सपाटों और आनन्दविनोद में गुजारता था। उस समय मैं मानता था कि इस अभागे देश के निवासियों के लिए यही आवश्यक है कि वे विदेशियों का अनुकरण करें। मैं जो कुछ शालाओं में पढ़ता था उससे मेरा मन उन दिनों एक ही निष्कर्ष निकाल सका था और वह यह कि हमारे देशवाले हलके और नासमझ हैं और हम पर राज्य करने वाले विदेशी हमारे हित-चिन्तक, उद्धार-कर्त्ता और उच्च जीवन के लोग हैं। हमारे देशवासी तो केवल गुलाम ही रहने योग्य हैं। इस तालीम का जहर आज सारे देश को पिलाया जा रहा है।"

इस समय तक इनके बड़े भाई विट्ठलभाई की बैरिस्टरी बम्बई में जोरों से चलने लगी थी। बम्बई के जन-सेवोपयोगी वातावरण के कारण वह लोकसेवा के क्षेत्र की ओर आकर्षित हुए। उनका बहुत-सा समय सार्वजनिक एवं लोकोपयोगी कार्यों में जाता था। दोनों भाइयों ने मिलकर निश्चय किया कि देश सेवा के लिए आत्म-त्यागी सन्यासियों की आवश्यकता है; अतः दो में से एक आदमी देश-सेवा करे और दूसरा कुटुम्ब का पालन। विट्ठलभाई ने लोक-सेवा का पथ चुना और वल्लभभाई ने कुटुम्ब की जिम्मेदारी अपने सिर पर उठा ली। उनका मन राजनीति में न लगता था और अधिकांश लोगों की तरह वह उसे घृणा और उपेक्षा की निगाह से देखते थे। जब महात्माजी दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई समाप्त कर अहमदाबाद आये तब वल्लभभाई की बैरिस्ट्री अच्छी चल रही थी। वल्लभभाई के जीवन की गति कुछ ऐसी थी कि आरम्भ में गांधीजी इनको आकर्षित न कर सके बल्कि गांधीजी के

लोक-सेवा के क्षेत्र में प्रवेश

सिद्धान्त इनको अव्यवहारिक से लगे। इन्होंने अपने मित्रों से एक बार कहा भी था—"गांधी क्यों इन लोगों के सामने ब्रह्मचर्य की बातें करते हैं ? यह तो भैंस के सामने भागवत सुनाने की बात है।"

पर ज्यों-ज्यों गांधी जी गुजरात के राजनीतिक जीवन में भाग लेने लगे त्यों-त्यों वल्लभभाई का ध्यान उनकी ओर खिंचने लगा। कुछ विश्वास हुआ कि अब प्रांत में ठोस काम होगा।

बेगार प्रथा इसी समय गोधरा में प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ। गांधीजी सभापति थे। इसमें एक रचनात्मक कार्यक्रम बनाया गया और उसकी पूर्ति के लिए एक कमेटी बनी। वल्लभभाई उसके मन्त्री हुए। किसी काम का भार लेकर शांति से बैठने वाले आदमियों में वह न थे। इन्होंने बड़े उत्साह से कार्य आरम्भ किया। उस समय बेगार की प्रथा जोरों पर थी। पहले उसे ही बन्द करने का निश्चय हुआ। उधर गांधीजी चम्पारन चले गये, अतः जिम्मेदारी वल्लभभाई पर आ पड़ी। इन्होंने कमिश्नर को पत्र लिखा और उसका उत्तर न आने पर ७ दिन की नोटिस दी कि उत्तर न मिला तो हाईकोर्ट के फैसले के आधार पर बेगार को गैर-कानूनी ठहराने और लोगों को प्रांत भर में बेगार बन्द कर देने की सूचना दे दी जायगी। छठें दिन कमिश्नर ने बुलाया और उनके मनोनुकूल काम कर दिया।

उधर गांधीजी चम्पारन से लौटे और उनपर खेड़ा-सत्याग्रह का बोझ आ पड़ा। गांधीजी ने पूछा—"मेरे साथ खेड़ा चलने को कौन तैयार है ?" उत्तर में पहला नाम वल्लभभाई का

खेड़ा सत्याग्रह में आया। उस दिन से यह रणक्षेत्र में कूदे। जीवन बदल गया। खेड़ा-सत्याग्रह के सम्बन्ध में गाँव गाँव घूमे और किसानों तक सत्याग्रह का सन्देश पहुंचाया। किसान उठ खड़े हुए; सत्याग्रह सफल हुआ।

जलियाँवाला में विदेशी शासन की जो विभीषिका दिखाई पड़ी उसने राष्ट्र की संतप्त आत्मा को कोड़े मार कर जगा दिया। देश में तूफान उठा। गांधीजी देश के व्यापक क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। कलकत्ता और फिर नागपुर की कांग्रेसों में असहयोग का कार्यक्रम पास हुआ। उनके अनुसार वल्लभभाई ने बैरिस्टरी छोड़ दी। सन्तान को उच्च शिक्षा के लिए कहाँ विलायत भेजनेवाले थे पर असहयोग के संदेश ने दिल में ऐसा घर किया कि यहाँ के सरकारी स्कूल से भी उन्हें हटा दिया गया। गुजरात में घूम-घूम कर असहयोग का प्रचार करने लगे। सरकार दमन पर तुल गई। पर इस दमन के साथ-साथ जनता में और उत्साह पैदा होता गया। सत्याग्रह के लिए गुजरात में गांधीजी और वल्लभभाई ने जोरों की, पर ठोस, तैयारी की। बारडोली और आनन्द तालुके की तैयारी अपूर्व थी। बारडोली का नाम सारे भारत में प्रसिद्ध हो गया था पर चौरी-चौरा हत्याकांड के कारण सत्याग्रह स्थगित करना पड़ा। गांधीजी गिरफ़्तार कर लिये गये। उसके बाद तो गुजरात का सारा भार वल्लभभाई पर ही पड़ गया। गुजरात के सच्चे नेता बन गये। इन्हीं दिनों गुजरात विद्यापीठ के लिए बर्मा तक यात्रा करके दस लाख रुपये एकत्र किये।

असहयोग आन्दोलन

जब नागपुर में झंडा-सत्याग्रह आरम्भ हुआ तो वल्लभभाई गुजरात से स्वयं-सेवक भेजने लगे। जमनालालजी की गिरफ्तारी के बाद कांग्रेस ने वल्लभभाई के ऊपर इस सत्याग्रह की जिम्मेदारी सौंप दी। वल्लभभाई ने सत्याग्रह का बड़ा अच्छा संगठन किया, सरकार को झुकना पड़ा। गवर्नर ने इन्हें बुलाया, इनसे बातचीत की। १०-१५ दिन के अन्दर ही जनता की सारी माँगें स्वीकृत हो गईं और सारे कैदी छोड़ दिये गये।

नागपुर सत्याग्रह

इसी प्रकार बोरसद-सत्याग्रह में वल्लभभाई की विजय हुई।

सरकार ने बोरसद की प्रजा पर अराजक और जरायपेशा लोगों को आश्रय देने के इल्ज़ाम लगाकर अतिरिक्त पुलिस नियुक्त की और उसके खर्च के लिए दो लाख चालीस हजार दण्ड जनता के सिर मढ़ा। आरोप बिल्कुल झूठा था। वल्लभभाई ने उसे सत्य सिद्ध करने के लिए सरकार को चुनौती दी और एक महीने तक लगातार घूम-घूम कर लोगों से यह दण्ड न देने को कहते रहे। अन्त में सरकार ने होम मेम्बर को जाँच के लिए भेजा और दण्ड माफ कर दिया।

बोरसद-सत्याग्रह

जब महात्माजी जेल से छूट कर आये तो वल्लभभाई का बोझ कुछ हलका हुआ। इस समय वह अहमदाबाद म्युनिसिपलिटी के अध्यक्ष चुने गये और पाँच वर्ष तक उन्होंने इस पद पर रहकर नगर की बड़ी सेवा की। इसी प्रकार गुजरात के जल-प्रलय में उन्होंने बाढ़-पीड़ितों की सेवा-सहायता का इतना अच्छा प्रबन्ध किया कि सरकार को भी उनकी प्रशंसा करनी पड़ी।

नगर-सेवा और अन्य-कार्य

पर जिस कार्य ने वल्लभभाई को सर्वभारतीय-रूप दे दिया वह तो बारडोली सत्याग्रह था। १९२७ ई० की बात है : बन्दोबस्त के हाकिम मि० जयकर ने तजवीज कर दी कि लगान में ३० प्रतिशत वृद्धि की जाय। इससे बेचारे गरीब किसानों में बड़ा असन्तोष फैला। इस पर सेटिलमेंट-कमिश्नर मि० एण्डर्सन ने जयकर-रिपोर्ट की जाँच की और उक्त अफसर की भर्त्सना करते हुए अद्भुत 'उदारता' दिखाकर बढ़ती २९ फीसदी करदी! सरकार ज़रा और आगे बढ़ी और उसने अपनी उदारता एवं प्रजा-पालकता दिखाते हुए घोषणा की कि केवल २२ प्रतिशत बढ़ती की जायगी। किसानों ने बड़ा विरोध किया, अर्जियाँ दीं कि जितनी माल-गुजारी है उतनी देने में हमारी कमर टूटी जा रही है, बढ़ी हुई

बारडोली सत्याग्रह

मालगुजारी देने में हम सर्वथा असमर्थ हैं पर सरकार कब सुनने लगी? उधर कौंसिल के सदस्यों ने तथा आवेदन-निवेदन में विश्वास रखने वाले कुछ और लोगों ने भी प्रयत्न किया पर कुछ न हुआ तब ? सितम्बर १६२७ को तालुका के किसानों की सभा हुई जिसमें निश्चय हुआ कि बढ़ा हुआ लगान न दिया जाय। लोग वल्लभभाई के पास पहुंचे। इन्होंने साफ कह दिया कि—"सिर्फ बढ़ा हुआ लगान रोकने से काम नहीं चल सकता। इसे सत्याग्रह नहीं कह सकते। पहले अपने दिलों को तौल लो; जमीन जायदाद सबका मोह छोड़ सको तो सत्याग्रह में पड़ो।" इन्होंने अपने विश्वसनीय साथियों द्वारा किसानों की जाँच कराई और तब ४ फरवरी १६२८ को सारे तालुका के किसान प्रतिनिधियों की सभा हुई। इस सभा में ७६ गाँवों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। वल्लभभाई ने उनसे बार-बार पूछकर जान लिया कि किसान अपनी बात पर दृढ़ हैं। फिर भी उनसे कहा, खूब सोच समझ लो। सरकार तुम्हें बर्बाद करने और मिट्टी में मिला देने के लिए सारी शक्ति लगा देगी। एक ओर तुम्हारी स्त्रियाँ दाने-दाने को तड़पेंगी और दूसरी ओर तुम्हारे दुधमुँहे बच्चे एक-एक बूँद दूध के बिना भूखों मरेंगे। माल की जब्ती होगी। यह सब देख सको, तो इधर कदम रखना अन्यथा चुप बैठ रहना। इसके बाद भी लोगों को सोचने-विचारने के लिए ८ दिन का समय दिया।

इधर वल्लभभाई ने अहमदाबाद आकर ६ फरवरी (१६२८) को बम्बई के गवर्नर सर लेस्ली विल्सन को बारडोली की स्थिति पर पत्र लिखा और सब बातें समझाकर विनय की कि 'सरकार नये बन्दोबस्त के अनुसार लगान वसूल करना मुलतवी रखे और एक बार अच्छी तरह जाँच कर ले।' पर सरकार ने इस पत्र पर कुछ भी ध्यान न दिया। उधर सरकार की तरफ से लगान अदा करने की डुग्गी पिटवा दी गई। लगान अदा करने के लिए १२ फरवरी का दिन निश्चित किया गया

पर उस दिन तहसील में एक कानी कौड़ी भी न पहुँची। स्वयं-सेवक घूम-घूम कर सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कराने लगे। ८ दिनों में तो बारडोली का नक्शा ही बदल गया। न जाने कहाँ का उत्साह आकर इस भूमि में फट पड़ा। निश्चय के अनुसार, ८ दिन बाद, १२ फरवरी को तालुके के किसानों की विराट सभा हुई। इस सभा में सत्याग्रह का निश्चय हुआ। जब तक सरकार लगान-वृद्धि के मामले की जाँच करने या पहले लगान को जारी रखने का निश्चय न करे तब तक उसे एक पैसा न दिया जाय, यह बात तय पाई। सभा के बाद महादेव भाई ने यह भजन गाया—

'शूर संग्राम को देख भागे नाहीं
देख भागे सोई शूर नाहीं।'

सबसे पहला काम सरदार ने यह किया कि तालुके में दौरा करके लोगों को सत्याग्रह का मर्म बताया और उत्साह भर दिया। इसके बाद सारे तालुके का अद्भुत संगठन किया। प्रत्येक गाँव में सैनिकों का एक दल बन गया। पहले बारडोली में चार आश्रम थे, अब सरदार ने आठ नई छावनियाँ और खोल दीं। सारे तालुके को पाँच मुख्य भागों में विभाजित किया। प्रत्येक भाग एक मुखिया के अधीन किया। ये मुखिया ऐसे थे जो गाँव में जाकर वर्षों से काम कर रहे थे। और उनके ऊपर लोगों की बड़ी श्रद्धा थी। सबके सेनापति वल्लभभाई थे। बारडोली सत्याग्रह-युद्ध का केन्द्र था। यहाँ एक प्रकाशन विभाग और सत्याग्रह कार्यालय खोला गया जहाँ से 'सत्याग्रह-समाचार' नामक दैनिक पत्र प्रकाशित होता था। सर्वत्र समाचार और आज्ञायें पहुंचाने का अच्छा प्रबन्ध किया गया। कई लोगों ने अपनी मोटरें इस काम के लिए दे दी थीं। २४ घंटे के अन्दर किसी भी प्रश्न और नूतन परिस्थिति पर सरदार की आज्ञा प्रत्येक विभाग-पति के पास पहुँच जाती थी। सरदार का अनुशासन बड़ा कड़ा था।

मोरचाबन्दी

आज्ञा में तर्क-वितर्क करने की गुञ्जाइश न थी। सैनिक नियमों का पालन करना पड़ता था। संघटन और अनुशासन इतना अच्छा था कि सारे तालुके में सरदार की आज्ञा बिना कुछ न हो सकता था। यहाँ तक कि सरकारी अफ़सरों को आवश्यक वस्तुओं के लिए कई बार सत्याग्रह छावनी की शरण लेनी पड़ती थी। टाइम्स आव इण्डिया के सम्वाददाता को लिखना पड़ा था कि "बारडोली से अँगरेजी राज्य उठ चुका है।"

इस सत्याग्रह-युद्ध ने बहिनों की काया-पलट कर दी। वे भी मैदान में निकल आईं। बम्बई की मिठू बहन पेटिट, श्रीमती सूरज बहन मेहता इत्यादि ने घूम-घूम कर इनमें वह जागृति की कि बारडोली की देवियाँ एक शक्ति बनकर उठ खड़ी हुईं। उधर सरकार दमन पर तुल गई। जब्तियों, गिरफ्तारियों की धूम मच गई। हजारों की जमीन कौड़ियों में नीलाम की जाने लगी। जानवरों की भी यही दशा हुई। सरकार के भेजे हुए पठानों ने गुण्डई पर कमर कस ली। उनके नादिरशाही अत्याचारों से पृथ्वी थर्रा उठी। पर किसान स्त्री-पुरुषों ने अद्‌भुत धैर्य और शान्ति से सब कुछ सहन किया। जो नेता बारडोली देखने आते सरदार के अद्‌भुत संघटन और लोगों के त्याग को देख दंग रह जाते।

दमन

जब सरकार ने देखा कि दबाकर लगान वसूल करना असम्भव है तो कुछ ढीली हुई। उधर कौंसिल के कई सदस्य समझौता कराने की चेष्टा करने लगे। देश में सरकार की दमन-नीति का घोर विरोध हुआ। बम्बई प्रान्तीय कौंसिल से, सरकारी दमन के विरोध में, १६ सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया। वे अपने निर्वाचन-क्षेत्रों से बारडोली के प्रश्न को लेकर फिर खड़े हुए और चुन लिये गये। २७ जून १९२८ को जमनालाल जी बजाज के साथ भारत सेवक-समिति के श्री कुँजरू,

श्री वजे तथा श्री ठक्कर बारडोली का निरीक्षण करने आये। वे सारे तालुकों में घूमे; किसानों से मिलकर उनकी स्थिति का भलीभाँति अध्ययन किया और रिपोर्ट प्रकाशित की जिसमें सरकारी नीति की निन्दा की और तुरन्त जाँच करने की आवश्यकता बताई। इस रिपोर्ट से नरमदल वालों के भी कान खड़े हुए। श्री चिन्तामणि, डा० सप्रू आदि भी सरकार की निन्दा करने लगे। इस समय सारे भारत का ध्यान बारडोली पर लगा था।

देश-विदेश से सहायतार्थ रुपये आ रहे थे। जरूरत पड़ते ही प्रत्येक प्रान्त से स्वयंसेवक आने को तैयार थे। सर्व श्री केलकर, जमनादास मेहता और ब्रेलवी ने विज्ञप्ति निकाल कर भारत-सरकार से इस पक्ष को निबटाने की प्रार्थना की। वायसराय ने गवर्नर को पहले ही शिमला बुलाया था। इसके बाद गवर्नर ने मिलने के लिए वल्लभभाई को बुलाया। वल्लभभाई, तीन अन्य मित्रों के साथ, सूरत में गवर्नर से मिले। खूब खुलकर बातें हुईं। गवर्नर चाहते थे, जनता पहले लगान अदा कर दे, फिर सब कुछ हो जायगा। यह इज्जत का सवाल बन गया था फलतः समझौता न हो सका। पर कौंसिल के कई सदस्य समझौता कराने के उद्योग में लगे रहे। इसी बीच एक सदस्य श्री रामचन्द्र भट्ट ने जाँच तक लगान की बढ़ी हुई रकम जमा कर देने की इच्छा प्रकट की। गवर्नर ने उसे स्वीकार कर लिया। फलतः बड़ी दौड़-धूप के बाद ६ अगस्त १९२८ को समझौता हो गया। सरकार ने नये बन्दोबस्त की फिर से जाँच कराने की घोषणा की और घोषणा में यह भी कहा कि 'सरकार जब्त की हुई जमीनें लौटा देगी, कैदियों को छोड़ देगी।' सत्याग्रह की विजय हुई। १९ अगस्त को समस्त तालुके में विजयोत्सव मनाया गया।

इस विजय के बाद वल्लभभाई रचनात्मक कार्यों में लगे रहे।

उनके नेतृत्व में गुजरात ने अपने अन्दर की शक्ति का अनुभव किया।

गिरफ्तारी

उधर १६२१ की ३१ दिसम्बर को लाहौर कांग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास किया। १६३० का मार्च का महीना आया। गांधीजी दांडी-यात्रा की तैयारियाँ कर रहे थे और वल्लभभाई गुजरात की किसान-शक्ति को जगा रहे थे। ७ मार्च को वल्लभभाई रास पहुँचे। वहाँ सभा और भाषण की योजना की गई थी। पर वहाँ पहुँचते ही उन्हें जिला-मजिस्ट्रेट का आर्डर मिला जिसमें भाषण देने की मनाही की गई थी। वल्लभभाई इसे कैसे मान सकते थे? गिरफ्तार किये गये। तीन महीने कैद और ५००) रु० जुर्माना (न देने पर ३ सप्ताह की कैद और) की सजा हुई।

जेल में वल्लभभाई को बड़ा कष्ट सहना पड़ा। १५ पौंड वजन घट गया। २६ जून को वह छोड़े गये। इस समय तक सत्याग्रह की ज्वाला देश भर में फैल गई थी। मोतीलालजी ने गिरफ्तार होते समय वल्लभभाई को स्थानापन्न राष्ट्रपति बनाया। इनके समय में धरासणा और वडाला के मोर्चों पर सत्याग्रही स्वयंसेवकों ने जिस वीरता और साहस का प्रदर्शन किया, वह अद्भुत था। सैकड़ों स्वयंसेवकों और देवियों ने लाठी-वर्षा के बीच अप्रतिम शान्ति का परिचय दिया। १ अगस्त को लोकमान्य की वर्षी के दिन बम्बई में जुलूस निकला। वल्लभभाई, मालवीयजी, शेरवानी, डा० हर्डीकर इत्यादि भी साथ थे। विक्टोरिया टर्मिनस के सामने जुलूस गैरकानूनी कहकर रोक दिया गया। शाम को ४ बजे से दूसरे दिन ८ बजे तक जुलूस सड़क पर डटा रहा। दूसरे दिन सुबह बहिनों एवं सरदार वल्लभभाई इत्यादि को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और बाद में लोगों पर भयङ्कर लाठी वर्षा हुई जिसमें सैकड़ों बुरी तरह घायल हुए। वल्लभभाई तथा अन्य नेताओं को ३-३ महीने कैद की सजा हुई। मालवीयजी को १००) जुर्माना अथवा जुर्माना न देने पर

रिहाई और फिर गिरफ्तारी

१५ दिन कैद की सजा हुई। किन्तु किसी अज्ञात आदमी-द्वारा, मालवीयजी की इच्छा के विरुद्ध, जुर्माना जमा कर देने पर वह छोड़ दिये गये।

सरकार से—गांधी-इर्विन—समझौता हुआ। सब कैदी छोड़े गये। आर्डिनेंस उठा लिये गये। करांची में धूम-धाम से कांग्रेस हुई। वल्लभभाई ही उसके अध्यक्ष चुने गये। गांधीजी गोलमेज कान्फ्रेंस में गये पर वहाँ कुछ परिणाम न निकला। इधर देश की परिस्थिति कठिन होती गई। बंगाल, सीमाप्रांत और युक्तप्रांत के लिए सरकार ने आर्डिनेंस जारी कर दिये। गांधी-इर्विन समझौते का बार-बार भङ्ग किया गया। जब गांधीजी लौटकर आये तो काँग्रेस कार्य समिति की बैठक बम्बई में हुई। जवाहरलालजी कार्य समिति की बैठक में शरीक होने के लिए जाते समय गिरफ्तार कर लिये गये। फिर गांधीजी ने शान्तिपूर्वक वायसराय से बातचीत करने की आज्ञा मांगी पर उनका अनुरोध बुरी तरह ठुकरा दिया गया। फलतः ५ जनवरी १६३२ से फिर सत्याग्रह आरम्भ हुआ। सरकार ने इस बार अकस्मात् कांग्रेस संगठन पर आक्रमण किया पर युद्ध चलता ही रहा। वल्लभभाई भी गिरफ्तार हो गये।

राष्ट्रपति

बाद में सत्याग्रह स्थगित हुआ। पूना-परिषद्, दिल्ली तथा करांची के सम्मेलन, पटना में महासमिति की बैठक और कांग्रेस पार्लमेंटरी-बोर्ड की स्थापना के समय सरदार जेल में ही बन्द थे। जब स्वास्थ्य अधिक गिर गया तब १६३४ ई० के अन्त में इनको रिहा किया गया। भलीभाँति स्वास्थ्य सुधार भी न पाये थे कि कौंसिल-निर्वाचन की समस्या सामने आ गई। कांग्रेस पार्लमेंटरी बोर्ड का भार इनके सिर आ पड़ा। जिम्मेदारी लेने की देर थी कि यह जी-जान से जुट गये और समस्त देश में दौरा करके जीवन की लहर दौड़ा दी। चुनाव के समय अन्य दलों की गर्वोक्तियों का जवाब देते हुए इन्होंने कहा

था कि 'जब कांग्रेस के स्टीम रोलर चलेंगे तो सब विरोधी कंकड़-पत्थर के समान कुचल कर चौरस हो जायँगे।' निर्वाचन में कांग्रेस को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई। सीमाप्रान्त, युक्तप्रांत, बिहार, आसाम, उड़ीसा, मध्यप्रान्त, बम्बई, मद्रास में कांग्रेस के लोग सबसे अधिक संख्या में चुने गये। कांग्रेस ने इन प्रान्तों के वैधानिक कार्य के लिए पार्लमेण्टरी उपसमिति बनाई और वल्लभभाई उसके अध्यक्ष बनाये गये। इस पद से सात प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमंडलों का सञ्चालन करते हुए वल्लभभाई ने जिस दृढ़ता और अनुशासन का परिचय दिया वह सबकी जानकारी की बात है। राजकोट-प्रकरण में भी सरदार ने अपूर्व संघटन-शक्ति का परिचय दिया था। कांग्रेस मन्त्रिमंडलों के इस्तीफे के बाद वह फिर अपने रचनात्मक कार्य में लग गये। इन वर्षों में यह बराबर कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य रहे। ९ अगस्त १९४२ को, अन्य नेताओं के साथ, बम्बई में गिरफ्तार करके अहमदनगर के किले में रखे गये। कहा जाता है कि १९४२ की जन-क्रान्ति की योजना बनाने में इनका प्रमुख हाथ था। १५ जून १९४५ को जेल से छूटे। १९४६ के प्रारम्भ में धारा सभाओं का जो चुनाव हुआ उसका संघटन इन्होंने ही किया था। इसमें कांग्रेस को अद्भुत सफलता हुई। १९४७ में देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् वह भारत सरकार के स्वराष्ट्र विभाग (होम डिपार्टमेंट), देशी राज्य विभाग तथा सूचना एवं ब्राडकास्टिंग विभाग के अध्यक्ष तथा उप-प्रधानमन्त्री हुए। और अपनी निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता के कारण प्रतिक्रियावादी अधिकारियों एवं मुस्लिम लीगियों की आँख का काँटा बन गये। उनके कार्यकाल में छः महीनों के अन्दर ही देशी राज्यों में तेजी से परिवर्तन हुए। अनेक छोटे-छोटे राज्य उड़ीसा, मध्यप्रान्त, बम्बई में मिला दिये गये। काठियावाड़ के राज्यों को मिला कर 'सौराष्ट्र' राज्य की स्थापना की गई। रीवाँ तथा अनेक बुन्देलखंडी राज्यों को मिला कर विन्ध्य, इन्दौर, ग्वालियर

इत्यादि को मिलाकर मध्यभारत तथा राजपूताना की रियासतों के एकीकरण द्वारा राजस्थान संघ बनाने का उपक्रम हुआ। हैदराबाद का प्रश्न उन्हीं की दृढ़ता से हल हुआ। और आज सब देशी राज्य भारत संघ में मिला लिये गये हैं। ब्राडकास्टिंग विभाग भी तेजी से बढ़ा, नये-नये रेडियो स्टेशन खुले। हाँ, स्वराष्ट्र विभाग में उनको सफलता नहीं मिली। गांधीजी की हत्या दिल्ली में जिस प्रकार की गई उसके लिए देश में उनकी काफी आलोचना हुई और इसमें सन्देह नहीं कि सरदार, अज्ञानवश, इस क्षेत्र में धोका खा गये।

घोर परिश्रम के कारण वर्षों से उनका स्वास्थ्य नष्ट हो गया था। गांधीजी के देहावसान के बाद वह एक दम शिथिल पड़ गये। कई बार मृत्यु सामने आकर चली गई। परन्तु अन्त में १५ दिसम्बर ५० को बम्बई के बिड़लाभवन में उनका देहावसान हो गया। उनकी मृत्यु से राष्ट्र की भुजा टूट गई।

[२]

जीवन की समीक्षा

शूर संग्राम को देख भागे नहीं
देख भागे सोई शूर नाहीं।

—कबीर

सबसे पहली बात जो वल्लभभाई के जीवन में शुरू से अन्त तक एक स्वर्ण-रेखा की तरह चली गई है, उनकी सच्ची वीरता है। उनके जीवन पर निर्भयता की छाप है। वल्लभभाई ने महात्माजी को अपनाया जरूर पर वह उनकी भाँति साधक नहीं, शिक्षक नहीं, एक योद्धा हैं। इसी रूप में वह खिलते थे। आदर्श सत्याग्रही की भाँति वह अपने को मिट्टी में—शून्य में नहीं मिला सके, उनमें सत्याग्रही की अजातशत्रुता नहीं है, उनमें वीरोचित क्षमा है। युद्ध उनका स्वभाव था। युद्ध को देखकर उनमें अद्भुत

योद्धा

भावावेश उमड़ता और मध्ययुगीन वीर राजपूत की नाईं सामने के युद्ध में उनका जीवन हँस उठता। युद्ध में वल्लभभाई निखर उठते थे—छाती में आँधी का साहस, भुजाएँ फड़कती हुईं; दिल उमङ्गों के सुरूर पर चढ़ा हुआ; वाणी आग उगलने वाली! युद्ध में वह जीते-से मालूम पड़ते। युद्ध के बाद के वल्लभभाई को युद्ध के समय के वल्लभभाई से मिला लो, उनका रहस्य निकल आयेगा। पहला दूसरे के सामने मुर्दा है।

खतरे से प्रेम

यह आदमी, अपने जीवन के प्रत्येक साँस के साथ खतरे को प्यार करता था। जोखम का काम हो फिर देखो उसे। उसका दिल जूझने के लिए बल्लियों उछलता। वह आग से खेलना चाहता। बारडोली की लड़ाई की भूमिका जब बँध रही थी तब उसने किसानों की सभा में कहा था—"...मेरे साथ कोई खिलवाड़ नहीं कर सकता। मैं किसी ऐसे काम में नहीं पड़ता जिसमें कोई खतरा या जोखम न हो। जो लोग आपत्तियों को निमन्त्रण दें, उनकी सहायता के लिए मैं तैयार हूँ!"

लोहा ठंडा हो रहा है!

—और ऐसा भी नहीं कि यह प्रवृत्ति असहयोग काल में एकाएक उत्पन्न हो गई हो। नहीं, वह उनमें से शुरू से थी। कठिनाइयाँ उन्हें झुका नहीं सकतीं, भय उन्हें डरा नहीं सकता। जब वह बालक थे तब भी यही निर्भीकता थी। उसी बालपन की घटना है:—उनकी काँख में फोड़ा हुआ। गाँव में रहने वालों की दवा। एक गँवार वैद्य ने दवा बताई—लोहा गर्म करके फोड़े में भोंक दो! बालक वल्लभभाई झट तैयार। लोहा गर्म हुआ। भोंकने वाले ने उसे हाथ में लिया पर उसका दिल इस कोमल बालक को देखकर काँप गया। हिचकिचाने लगा। बालक झुँझला उठा—"क्या देख रहा है भाई! लोहा ठंडा हो रहा है। ला तुझसे नहीं बनता तो मैं भोंक लूँ!" ग्रामीण दङ्ग रह गये।

इस वीर पुरुष के दिल में वह लोहा कभी ठंडा न हुआ। जब वह उस लोहा को ठंडा होता देखता था तो तड़प उठता था। जबतक वह गर्म है; जब तक वातावरण में आँधी, तूफान और खतरा है; जब तक ज्वाला धू-धू करके आकाश में उठती जाती हो तब तक ही उसका स्वर्ग होता। आँधी रुकी, ज्वाला बुझी और दिल उछालनेवाली चीज़ सुस्त पड़ी। खतरे के समय, ज्वालामुखी की तरह, उसके मुख से आग ही आग निकलती थी।

लोहा सदा गर्म है

सच बात तो यह है कि वल्लभभाई का विवेक गांधीजी को भले ही चूमता हो पर उनकी 'स्पिरिट', उनकी प्रेरणा, उनकी प्रकृति, लोकमान्य से ज्यादा मिलती थी। निश्चय ही लोकमान्य के 'शठं प्रति शाठ्यं' 'जैसे को तैसा'—को वल्लभभाई ने, गांधीजी के प्रभाव में, कोमल कर दिया पर चीज बहुत करके वही रही। उसी पर मिश्री की डली पड़ गई। गांधीजी के 'शठ प्रत्यपि सत्यं'—काँटे के बदले फूल—को वह अपनाना चाहते थे—जहाँ तक शरीर का सवाल है, अपना ही लिया था; उसे श्रेष्ठ भी समझते थे पर उनका जीवन जिन चीजों से गढ़ा गया था उनमें वह 'फिट' नहीं होता, मिलकर बिल्कुल ही एक नहीं हो जाता—अलग ही अलग रहता था। वह उसे अपनाते पर गांधीजी की भाँति, इस साधना में उनकी आत्मा परिपूर्ण होकर खिलती नहीं। वह परिस्थिति एवं बुद्धि-विवेक से गांधीत्व की तरफ झुके हुए थे पर प्रकृति, स्वभाव और प्रवृत्ति से 'लोकमान्यत्व' की तरफ। और सब मिलकर जैसे थे, उसमें न लोकमान्य थे, न गांधी; इन दोनों के सम्मिश्रण थे। दोनों की कुछ बातें थीं; कुछ नहीं।

गांधी भी, लोकमान्य भी

क्षण भर दोनों—लोकमान्य और गांधी—की कसौटी पर कसकर देखें। लोकमान्य की अगाध विद्वत्ता वल्लभभाई में नहीं थी; लोकमान्य

के गम्भीर शास्त्रज्ञान से दूर थे। लोकमान्य की राजनीतिक व्यवहार-बुद्धि उनमें नहीं थी। दूसरी ओर उनमें वह अथक परिश्रम, वह दृढ़ लगन हम देखते हैं जो लोकमान्य के जीवन की विशेषता थी। लोकमान्य की भाँति ही वल्लभभाई जन-सेवा में आत्म-विस्मृत होकर चलते थे। लोकमान्य के सदृश ही वह अपने महत्व का स्मरण नहीं रखते थे। और अपने विषय में बहुत कम लिखते या बोलते थे। इतना ही क्यों, लोकमांन्य की भाँति ही ऊपर से रूखे, निष्ठुर और अभिमानी-सा लगते हुए भी भीतर से सरल, कोमल और निरभिमान थे।

लोकमान्यत्व

इतनी समानताओं के बाद कुछ निष्कर्ष निकालने ही बैठें तो क्या निकले? पर इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि उन्हें हम लोकमान्य के साथ नहीं बैठा सकते। सब कुछ होते हुए भी लोकमान्य और वल्लभ-भाई के निर्माण में एक महान् अन्तर है और वह यह कि लोकमान्य जहाँ राजनीतिज्ञ थे, वहाँ वल्लभभाई राजनीतिज्ञ नहीं—योद्धा थे, सैनिक थे, सेनापति थे। राजनीतिज्ञ और योद्धा में तत्वतः ही अन्तर है। राजनीतिज्ञ का अपनी जबान पर काबू होता है; उसके लिए वह एक अस्त्र है। उसके शब्द ठण्डे, प्रायः दो-अर्थी, होते हैं। वह अपने मन का भाव जबान तक नहीं आने देता। वह अवसर का उपयोग करता है। और योद्धा जिसे हम उपयोगिता कहते हैं उसे लेकर नहीं चलता; भावना को, 'स्पिरिट' को लेकर चलता है। भौतिक सुविधाएँ प्राप्त कर लेना उसका उतना अभिप्रेत नहीं, जितना लक्ष्य है। वह खतरे को प्यार करता है। वीरता उसकी देवी है और साहस उसका अनुचर है। जब आसमान पर घटाएँ छा रही हों तब जहाँ राजनीतिज्ञ के ललाट पर विचार की रेखाएँ होती हैं और आँखों में चिन्ता की छाया, तहाँ योद्धा का दिल उमङ्गों से भरा हुआ अब उमड़ा अब उमड़ा ऐसा होता

राजनीतिज्ञ नहीं, योद्धा

रहता है। शत्रु की ललकार सुनकर राजनीतिज्ञ सोचेगा कि अभी वार करना चाहिए या नहीं; योद्धा झट बाहर निकल पड़ेगा। इस दृष्टि से लोकमान्य और वल्लभभाई समान प्रवृत्ति लेकर भी समान नहीं थे। और उनमें अन्तर था।

गांधी की तराजू पर

और महात्माजी को लेकर वल्लभभाई की ओर देखते हैं तो भी इसी बात पर पहुँचते हैं कि दोनों में अन्तर है। अन्तर मात्राओं का नहीं, प्रवृत्तियों का। और प्रवृत्तियों के साथ तात्विक भेद भी तो है। गांधीजी एक साधक थे। सत्य, आत्म-साक्षात्कार उनका लक्ष्य था। इसलिए स्वाभातः उनका जीवन अनावृत, खुला हुआ, है। इस सत्य की साधना में सहायक होने वाली छोटी-छोटी बात भी वह कह डालते थे;—जिन व्यक्तिगत बातों के कहने में आदमी काँप उठे, सत्य की साधना में जरा भी सहायता मिलने की सम्भावना हो तो उन्हें भी वह अत्यन्त निष्ठुरता के साथ कह डालते। कुछ नगण्य व्यक्तिगत उपहार पास रख लेने पर कस्तूरबा के सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ और जैसी निष्ठुरता के साथ लिखा था, वह दूसरे से सम्भव नहीं; वह निर्मोही आध्यात्मिक साधक से ही सम्भव है; वह उसी का पथ। वल्लभभाई एक सच्चे आत्म-त्यागी पुरुष की भाँति अपने जीवन के प्रति मौन थे। इतने मौन कि झुँझलाहट होती। गांधी विरोधी के साथ लड़ते पर उसे विरोधी समझकर नहीं, उसके विनाश के लिए नहीं; उसे सुधारने के लिए, उसे गलत रास्ते से हटाने के लिए। युद्ध के समय भी विरोधी के सच्चे कल्याण का ध्यान उन्हें रहता। यह साधक की, अन्तःकरण की पोर-पोर में भिनी हुई उदारता है जिसकी ऊँचाई पर वस्तुः कोई शत्रु नहीं रह जाता। वल्लभभाई की उदारता वीर योद्धा की उदारता थी जो छिपकर वार करना नहीं जानती पर सामने की लड़ाई में शत्रु को आग्नेय नेत्रों से देखती और उसे मटियामेट कर देना

चाहती है; जो शत्रु की पराजय से उल्लसित है। इसी प्रकार जब गांधी जी, सच्चे सत्याग्रही की भाँति, विरोधी को अपने कार्य-क्रम की सूचना पहले ही दे देते तब वल्लभभाई के मुँह से शत्रु या मित्र कोई, क्रिया में आने के पहले, उनका कार्यक्रम नहीं जान सकता था।

इतना ही नहीं, माखनलाल जी के सुन्दर शब्दों में तो जब— "महात्माजी छोटे से छोटे आदमी के कुतूहलों तक का जवाब देते हैं (तब) वल्लभभाई से सवाल पूछने का साहस ही बहुत कम को ही पाता है। उनके विषय में तो केवल यही कहा जा सकता है कि वह जवाब सदैव अपने विरोधी को ही देते हैं। महात्माजी जीवन की आत्म-कथा लिख सकते हैं किन्तु वल्लभभाई आत्म-चर्चा कभी करते ही नहीं। महात्मा जी का संयम और उनका तप महान् प्रयत्नों की सिद्धि है, वीर वल्लभभाई का संन्यास एक दिन प्रातःकाल उठकर किया हुआ, किन्तु सदैव टिकनेवाला, सिपाही का प्रण है। महात्माजी, साधक, सुधारक और शिक्षक हैं। वल्लभभाई न सुधारक हैं, न साधक, न शिक्षक हैं। वह योद्धा हैं, सेनानी हैं, सिपहसालार हैं। महात्माजी की महान् क्षमा में आत्म-निरीक्षण और आत्मचिन्तन होना ही चाहिये। वल्लभभाई की क्षमा वीरोचित क्षमा है, उसमें अपने योद्धा की सौ भूलें माफ हैं..."

असमानताएँ

इतनी बातें कर लेने पर यह कहने का अवसर आता है कि वल्लभभाई वस्तुतः उन उपकरणों से बने थे जिनसे शहीद का सृजन होना है। वह एक योद्धा थे। बुद्धि-विवेक, परिस्थिति, मौनावलम्बन और संघटन-शक्ति ने इस योद्धा को योद्धा से ऊपर उठाया और तत्वतः योद्धा होते हुए भी उसे सेनापति—सरदार के आसन पर ला खड़ा किया।

'सरदार'

---

*'कर्मवीर' (सरदार के जीवन काल में लिखा गया शब्द-चित्र)

वल्लभभाई के जीवन में वह कूट रहस्यमयता नहीं, जो राजनीतिज्ञ की खास चीज है पर उनमें वह गम्भीरता और प्राणोन्मादकारी भावावेश दोनों उपयुक्त मात्रा में हैं जो एक सफल सरदार या सेनापति के निर्माण के लिए आवश्यक हैं। युद्ध में वह इस तरह स्वतन्त्रता-पूर्वक खेलते जैसे पानी में मछली तैरती है। उस समय कोई कठिनाई उनका दम नहीं तोड़ सकती। परन्तु राजनीतिज्ञता की वार्तों, समझौते की चर्चाओं में उनका वह भावावेश शिथिल पड़ जाता और प्रतिभा कुण्ठित हो जाती। वह स्वयं कहते थे—"...मुझे लड़ते-लड़ते जो संकट और जो उलझन पड़ जाय, उसे मैं तड़ाक से सुलझा लूँगा। ऐसी उलझनें सुलझाने की सूझ मुझे कहाँ से मिलती है, मैं नहीं जानता। परन्तु समझौते की ढीली चर्चाओं में मेरा जी नहीं लगता। ऐसी अकर्मण्य चर्चाओं में कितनी ही बार तो मैं गड़बड़ में पड़ जाता हूँ।"

और जब युद्ध चलता हो तो उनकी वाणी की आग देखिये। मैं दूसरे किसी भारतीय नेता को नहीं जानता जो युद्ध-काल में इतने सरल सीधे पर इतने शक्तिमान शब्दों की सृष्टि करने में समर्थ रहा हो।

वाणी में आग है

उनकी वाणी आग उगलती। और ये उनके चन्द नमूने हैं—"शत्रु का लोहा गरम भले हो जाय पर हथौड़ा तो ठण्डा रह कर ही काम दे सकता है।" बारडोली के किसानों से कष्ट-सहन की तैयारी के लिए कहते हुए—"किसान होकर यह बात मत भूल जाना कि वैशाख-जेठ की भयङ्कर गर्मी के बिना आषाढ़-श्रावण की वर्षा नहीं होने वाली है।" या "मरने-मारने की तालीम सिपाहियों को देने में सरकार को छः महीने लगते हैं। हमें तो सिर्फ मरना ही सीखना है, उसमें तीन महीने भी क्यों लगने चाहिएँ!" वल्लभभाई ने विद्वान की परिभाषा भी खूब बनाई है—"विद्वान वह जो भाषा को अटपटी और कुटङ्गी बना दे।" विद्यार्थियों के सामने भाषण देते हुए कहते

हैं—"अरे, क्या साँप को अपनी काँचली उतार फेंकने में दुःख होता है ? कोई मेहनत पड़ती है ? इसी तरह हम भी एक दिन पराये शासन की काँचली उतार देंगे। उसमें श्रम और कष्ट काहे का ?" इसी प्रकार—"यदि राजसत्ता अत्याचारी हो तो किसान का सीधा उत्तर है—"जा जा, तेरे ऐसे कितने हा राज मैंने मिट्टी में मिलते देखे हैं।" इसी प्रकार बारडोली सत्याग्रह के समय बालोड में भाषण देते हुए—"सरकार जेल में मेहमान चाहती है। आप उसे मुँह-माँगे मेहमान देना।" इसी प्रकार गिरफ्तारी के समय के ये वाक्य भारतीय वातावरण में गूँजते हैं—सरकार यदि यह समझती हो कि मेरे पङ्ख काट देने से मैं बिना पंखों वाला हो जाऊँगा तो मैं यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि वे तो वर्षा की घास की तरह नित्य नये उगते जाने वाले हैं !"

यह युद्ध के समय का बोलना है पर वैसे वल्लभभाई में बोलने की आदत बहुत कम थी। वह बोलते कम, करते अधिक। बात-शूर उन्हें लुभा नहीं सकता था। वह लेकचर फटकारने वाले आदमी नहीं थे। विज्ञापनबाजी उन्हें पसन्द नहीं; काम की नहीं, और हो भी तो बहुत थोड़ी, आवश्यकता भर; व्यक्तित्व की तो बिल्कुल ही नहीं। वह गरजने वाला मेघ नहीं, बरसने वाला धुआँधार था। वैसे उसका मौन गजब का था। वह ठोस वीरता के पुजारी थे, पोल के शब्द उन्हें आकर्षित नहीं कर सकते थे।

\+ \+ \+

कठोर मुख, दृढ़ जबड़े, शत्रु को ललकारती आँखें—जिनमें उनके लिए व्यंग और जहर भरा है, यह वल्लभभाई थे। एक अंग्रेज पत्रकार ने ठीक ही लिखा है कि उनकी मुखमुद्रा से उनकी आन्तरिक शक्ति का पता चलता है। उनके व्यंग अपने विष के लिए अमर हैं। गांधीजी से लेकर साधारण अनुयायी तक किसी पर व्यंग करने का अवसर आने पर व्यंग करने से नहीं चूकते थे। तूफानों में वह चट्टान की भाँति अचल रहते

थे और विरोधी के प्रति लोहे की भाँति सख्त। गांधीजी का इस्पात का लचीलापन उनमें नहीं था। विरोधी चाहे वे कांग्रेस के अन्दर के हों या बाहर के, उनसे डरते थे कि पीछे लग गया तो जड़ उखाड़ कर फेंक देगा। निश्चय ही सङ्गठन और कार्य की उनमें अपूर्व क्षमता थी और गुजरात में उनकी शक्ति को ललकारने वाला उनकी मृत्यु के बाद भी कोई नहीं।

फिर इन सबके अलावा वल्लभभाई ने किसान का दिल देखा और भारत के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में उसे अपना लिया था। वह किसान को खूब समझते और किसान उन्हें खूब समझता। काका कालेलकर ने ठीक ही लिखा था कि "जब किसान व्याकुल होने लगता है, तब वल्लभभाई का खून खौलने लगता है।" इस दर्द के कारण ही उन्होंने गाँवों को अपना क्षेत्र बनाया और किसान को अपनाने के लिए स्वयं किसान बन गये। खेड़ा, बोरसद, बारडोली सब इसके प्रमाण हैं। वर्तमान भारतीय नेताओं में कोई ऐसा नहीं है जिसने किसानों के लिए प्रत्यक्ष रूप से इतना किया हो जितना वल्लभ-भाई ने किया। वह भारतीय किसान की आशा थे और उनके सम्बन्ध में जोना बेली (Jonna Baillie) की ये लाइनें चिर-सत्य हैं—

किसान की आशा

Ev'n to the dullest peasant standing by
Who fasten' d still on him a wandering eye,
He seemed the master spirit of the land

वल्लभभाई कांग्रेस की संगठनात्मक प्रतिभा और शक्ति के प्रतीक थे। इस विषय में वह बेजोड़ थे। जिस काम को उन्होंने हाथ में लिया उसे अन्तिम सीमा तक पहुंचाया। देशी राज्य विभाग का उन्होंने ऐसा सुन्दर संगठन किया कि चन्द महीनों में देश का प्रतिक्रियावादी नृपति वर्ग-उनके नाम से काँपने लगा। जूनागढ़ और हैदराबाद की समस्याएँ उन्होंने दृढ़तापूर्वक हल कीं। उनसे दुश्मनी करके कोई ज्यादा दिन उनकी आक्रामक शक्ति से बच नहीं सकता था। उनकी मौन हँसी विरोधी के भाग्य पर व्यंग के समान थी।



चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

—'राजाजी'—

जन्म : १८७९ ई०

"हममें एक व्यक्ति (राजाजी) है जिसका दिमाग़ सुलझा हुआ है, और जो स्पष्टता के साथ विचार करता है।"

—वल्लभभाई पटेल

× × ×

"वल्लभभाई इज़ पावर : भूलाभाई इज़ डाइरेक्शन : राजाजी इज़ कलकुलेशन। राजाजी हैज़ ए मैजीशियन्स कैपेसिटी टु रीड दि अपोनेंट्स माइंड एंड इन फोरस्टालिंग हिज़ मूवमेंट्स ही सेल्डम फेल्स। फर्दर ही डिसप्लेज़ एकस्ट्राआर्डिनरी कीननेस इन डिसकवरिंग दि वीक पाइंट्स इन दी एनेमीज़ आर्मर"।

—'डान', बम्बई

× × ×

"इफ़ महात्माजी वेयर आस्कड टु नेम हिज़ सिक्स बेस्ट लेफ्टिनेंट्स—इन दि डिसाइपिल्स आफ आउटस्टैंडिंग एबीलिटी एंड स्टर्लिंग वर्थ, ही उड अनहेसिटेटिंग्ली काउंट मि० सी० राजगोपालाचारी ऐज़ वन आफ़ देम। मि० राजगोपालाचारी इज़ ऐन इनटेलेकचुएल जायंट; ही इज़ वाइज़ली नोन फार हिज़ मेंटल अलर्टनेस। ऐन इफेक्टिव स्पीकर एंड ऐन एरूडाइट स्कालर; हिज स्लेज-हैमर स्टाइल, एंड दि इनसिज़िव कानसाइज़न आफ हिज़ एक्सप्रेशन, आर दि एनवी आफ आल आफ अस। ही इज़ ए श्रूड स्टेट्समन, एंड ए पर्सपिकेशश पैट्रियट। हिज़ सिमप्लिसिटी, सिंसियारिटी एंड सेल्फ़लेसनेस आर प्रावर्बियल।"

—प्रो० अब्दुल हमीद (ट्रिब्यून)

यदि महात्माजी से उनके छः सर्वोत्तम नायकों—सर्वोच्च योग्यता और गुणवाले शिष्यों के नाम पूछे जायँ तो वह बिना किसी हिचकिचाहट के उनमें एक श्री सी० राजगोपालाचार्य का नाम गिनायेंगे। श्री राजगोपालाचार्य एक बौद्धिक दानव-'देव' हैं; वे अपनी मानसिक जागरूकता के लिए ठीक ही प्रसिद्ध हैं। एक प्रभावशाली व्याख्याता, एक व्युत्पन्न विद्वान, भारी हथौड़े-सी चोट करनेवाली उनकी शैली और छेदकर टुकड़े-टुकड़े कर देनेवाली उनकी अभिव्यक्ति हम सबके लिए ईर्ष्या की वस्तु है। वह एक विचक्षण राजनीतिज्ञ और सूक्ष्मदृष्टि देशभक्त हैं। उनकी सरलता, सचाई और आत्मोत्सर्ग कहावत की तरह प्रसिद्ध हैं।"

—प्रो० अब्दुल हमीद

('ट्रिब्यून' में राजाजी के निर्वाचन दौरे के विरुद्ध लिखे गये एक लेख में)

[१]

एक चित्र

एक दुबला-पतला नाटे कद का आदमी, सफाचट मुँड़ा हुआ सिर, जिसपर एक छोटी शिखा आर्य संस्कृति की पताका की भाँति फहराती है, गड्ढों के भीतर से झाँकती हुई आँखें और उनके बीच बाज की तरह उठी हुई लम्बी नाक, जरा झुके हुए कन्धे, रङ्गीन शीशे का चश्मा मक्खन की भाँति स्वच्छ खादी में लिपटा हुआ, एक कन्धे पर तह किया हुआ दुपट्टा और पाँवों में चप्पल, यह राजगोपालाचार्य (जिन्हें हम, लोग आदर और प्रेम से राजाजी कहते हैं) हैं। पहली दृष्टि में इस आदमी को आप देखेंगे और भूल जायँगे; इसमें कोई ऐसी बात नहीं

जो एक सरसरी निगाह से देखनेवाले को असाधारण प्रतीत हो, अपनी ओर खींचे और देखने को बाध्य करे।

पर नहीं, इसमें कुछ है- कुछ क्यों बहुत कुछ है। आकृति-विज्ञान का विद्यार्थी मुँह की बनावट देखकर कह देगा कि इस आदमी में विशालता चाहे न हो पर गहराई में वह अगाध है। उनकी नाक, आगे की ओर उठा हुआ मुँह और अतल से आपकी ओर यों देखनेवाली आँखें मानों आपके मर्मस्थल तक घुसकर जो कुछ आप में छिपा है, सब देख छोड़ेंगी, ये ऐसी चीजें नहीं जो ठीक तरह से देखने पर भुलाई जा सकें। उसके ओठों की मुस्कराहट में दुनिया के प्रति, विरोधी के प्रति तीव्र और प्रच्छन्न व्यङ्ग है। जो कहता है, तुम कहाँ हो?— जो कहता है, मैं सब समझता हूँ और समय आने दो, देखोगे, मैं क्या समझता हूँ।

राजाजी को मैंने देखा कई बार है—सुना है, प्लेटफार्म पर उतना नहीं जितना गोष्ठियों में। जब वह अभिव्यक्तिमय ('रिवीलिंग) 'मूड' में रहे हैं तब मेरी बुद्धि ने और मेरे मन ने चुपचाप उन्हें नाप और तौल लेना चाहा—मन पर उनका एक मानसिक, सूक्ष्म, चित्र उतारने की चेष्टा की है पर सदा मैंने अनुभव यह किया है कि वह कुछ ठीक-ठीक दूसरों की पकड़ में आनेवाला व्यक्तित्व नहीं है। उसकी में वाणी में उसका दिल फट नहीं पड़ता; जितना बाहर निकलता है उससे बहुत अधिक अन्दर सुरक्षित रखा होता है और जो बाहर निकलता है वह भी विराम-चिह्नों के साथ, एक खास अर्थ लेकर आता है।

यह दुबला-पतला विचक्षण आदमी भारतीय राजनीति की दुनियाँ में लोगों के लिए एक समस्या और एक रहस्य बना घूमता है। आज पहाड़ की चोटी पर तो कल तलहटी में, आज विरक्त तो कल शक्ति पर आरूढ़! यह कैसा आदमी है?

[२]

जीवन का विकास

'राजाजी' का जन्म तामिलनाडु के उस सेलम जिले के एक वैष्णव ब्राह्मण कुटुम्ब में १८७९ ई० में हुआ था जिसने भारत के सार्वजनिक जीवन को दो महती विभूतियाँ प्रदान की हैं। भारत के प्रसिद्ध विधान-पण्डित और जैसा कि एक समय वह कहे जाते थे, 'इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के नेपोलियन' स्व० श्री सी० विजयराघवाचार्य को अभी हम भूले नहीं हैं। दूसरी विभूति, श्री वी० वी० नरसिंह ऐयर को नवीन सन्तति भूल गई है, जिन्होंने अनेक कौटुम्बिक दुर्घटनाओं के कारण, एक प्रकाशमान राजनीतिक जीवन का त्याग करके संन्यास ग्रहण कर लिया।

राजाजी में प्रतिभा का प्रकाश आरम्भ से ही दिखाई दिया। स्कूल और कालेज में एक मेधावी छात्र समझे जाते थे। तर्क की शक्ति भी उनमें खूब थी इसीलिए वकालत की ओर उनका झुकाव भी था। और कानून की परीक्षा पास करते ही सेलम में उन्होंने वकालत शुरू भी कर दी।

शिक्षण और वकालत

वकालत खूब चली। सार्वजनिक सेवा भावना भी उनमें किशोरकाल से ही थी। इसलिए वह नागरिक प्रश्नों में दिलचस्पी लेने लगे और बहुत जल्द म्युनिसिपलिटी के चेयरमैन हो गये। अपने समय में उन्होंने नगर के सुधार के अनेक कार्य किये। वह सेलम कोआपरेटिव बैंक के जन्मदाताओं में एक हैं और समाज सुधार के कार्यों में उस समय से दिलचस्पी ले रहे हैं जब कट्टरता के सामने मुँह खोलना खतरे का काम था।

राजाजी के समान प्रतिभा का व्यक्ति सेलम-जैसी छोटी जगह में बँध कर कब तक रह सकता था। अन्त में वह मद्रास चले आये और

वहीं हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। १६१६ का अन्त हो चुका था और १६१७ के साथ देश में एक चेतना जाग्रत हो रही था। माता बसन्त के 'होम रूल' आन्दोलन ने लोगों में एक जान डाल दी थी। राजाजी उससे कैसे अलग रह सकते थे। सच पूछिये तो उनका असली सार्वजनिक जीवन मद्रास में ही आरम्भ हुआ।

गांधी का आगमन

शीघ्र ही भारतीय क्षितिज पर उस व्यक्ति का उदय हुआ जिसने बाद में देश की काया पलट दी और भारतीय राजनीति को भिक्षा और प्रवञ्चना के जाल से निकालकर एक खतरे और गम्भीर चिन्ता का विषय बना दिया। युद्ध समाप्त हो चुका था और अंग्रेजी साम्राज्यवाद विजय के उन्माद से प्रमत्त हो रहा था। इस आनन्द की घड़ी में स्वतन्त्रता की माँग का कर्कश स्वर उसके कान में पड़ा। यह चिढ़ गया और इस चिढ़ और क्रोध में पञ्जाब की भूमि पर उसने जो हत्याकांड किया, उसने सदियों के सोये भारत की आत्मा को ठोकर मारकर जगा दिया। पददलित और प्रताड़ित, अपमानित और मूर्छित भारत देखते-देखते यों उठ खड़ा हुआ जैसे समुद्र के शान्त तल पर कोई तूफान उठ खड़ा होता है। कलेजों में एक आग थी और लोग दीवाने से स्वतन्त्रता का अलख जगाते घूमते फिरते थे। यह सब एक जादू-सा मालूम होता था जिसे लोग अजब हैरत से देखते थे। विश्वास न होता था कि यह सब सच्चा है। दिलों में एक उमङ्ग और आँखों में एक सुरूर था और प्राणों में एक स्वप्न और पीड़ा थी।

इस समय राजाजी की वकालत अपनी जवानी पर थी। साठ हजार वार्षिक से कम की आय न थी। कौटुम्बिक जिम्मेदारियाँ बहुत ज्यादा थीं पर वह समय आ गया था जिसके लिए उनकी अन्तर्धारा धीरे-धीरे उनको खींचकर तैयार कर रही थी। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में एक घड़ी आती है जब वह अपने जीवन के लक्ष्य और धारा के बहुत निकट

होता है और जब ठीक तरह देख सुन और पहचान सके तो वह अपने को पा लेता है। जीवन की कुञ्जी सामने होती है और आदमी उसकी तरफ से दृष्टि हटाकर अपने को खो देता है। राजाजी के लिए वह घड़ी आ पहुंची थी और उनको बाह्य और अन्तःसम्पन्नता और शक्ति में से एक को चुन लेना था। राजाजी के अन्तर में जो ब्राह्मण था वह उठ खड़ा हुआ; उन्होंने वैभव को ठोकर मार दी और राष्ट्र के मुक्ति-यज्ञ में कूद पड़े और तब से वह उसके साथ हैं। १९२१ ई० में श्री-विजयराघवाचार्य के मकान पर गांधी जी से इस प्रतिभावान वकील की भेंट हुई थी और प्रथम दर्शन में ही दोनों ने दोनों को समझा और ग्रहण कर लिया। तब से अन्त तक उनका सम्बन्ध ज्यों का त्यों रहा—वरन् दिन-दिन सुदृढ़ होता गया। मतभेद हुए पर सम्बन्ध पर उसका असर नहीं पड़ा।

तब से राजाजी देश के प्रमुख नेताओं में हैं। वर्षों तक अपरि-वर्तनवादी दल के प्रधान नेता, कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य और विविध रचनात्मक कार्यों के जन्मदाता एवं संगठनकर्ता रहे हैं और मद्रास सरकार के प्रधान मन्त्री—'प्रीमियर'—रह चुके हैं और कुछ वर्ष पहले तक, कांग्रेस की बागडोर मानों उनके ही हाथ में थी। युद्धकाल-सम्बन्धी कांग्रेस महासमिति की नीति से मतभेद होने के कारण उन्होंने कांग्रेस कार्यकारिणी की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को मिलकर काम करना चाहिये, इस मत का प्रचार करने लगे। गत पाँच-छः वर्षों की घटनाओं ने उनकी राजनीतिज्ञता को स्पष्ट कर दिया है।

एकदिन भारतीय कांग्रेस समिति में मौ० आजाद और जवाहर-लाल को उनके 'स्वभाग्य निर्णय' वाले सूत्र की हँसी उड़ाते हमने देखा पर बाद में उन्हीं लोगों ने भारत के बटवारे को उससे भी बुरे रूप में स्वीकार किया। जो लोग उनका मजाक उड़ाते थे उन्होंने देखा कि

राजाजी सुदूर भविष्य के अंधकार में देखने की कैसी गहरी शक्ति रखते हैं। आज वह फिर देश के एक श्रेष्ठ नायक हैं। सफलतापूर्वक बंगाल की गवर्नरी करने के बाद स्वतन्त्र भारत के प्रथम भारतीय गवर्नर जनरल हुए। इस समय वह भारत सरकार के स्वराष्ट्र मंत्री हैं। सामान्य समय में वह स्वतन्त्र भारत के प्रधान मन्त्री या राष्ट्रपति होने के योग्य हैं।

× × +

पर यही तो आज सवाल है। गया और आज के रूप में इतना अन्तर कैसे हो गया? गया कांग्रेस का वह दृश्य! देशबन्धु (दास) और मोतीलाल जैसे दृढ़ नेताओं के बीच एक पतला दुबला, खादी में लिपटा चश्माधारी व्यक्ति खड़ा होता है। उसकी वाणी में आग नहीं है और न फल्गू का हर-हर करके बहता हुआ वेग है। व्यङ्ग और कूट से युक्त तर्क के तीक्ष्ण तीरों की एक वर्षा-सी हो रही है और कौंसिल-प्रवेश के पक्षपाती महारथियों का बुरा हाल है। *मोतीलाल जी दाँत पीस रहे हैं और देशबन्धु का चेहरा तमतमा उठा है। और इन सब के बीच दृढ़ता और शक्ति की मूर्ति बना, अपने बर्फ-से ठंडे पर पत्थर-से दृढ़ तर्क-बाणों को लिए वह मुस्करा रहा है!

गया कांग्रेस का दृश्य

वह दास और नेहरू-जैसे राजसिक और शासक स्वभाव के व्यक्तियों को अपने तीव्र व्यङ्गों और तर्कों से टुकड़े-टुकड़े कर देने वाला

*"व्हेन ए बैटिल रायल वाज़ बींग वेज्ड ऐट गया ओवर दि काउंसिल-इंट्री क्वेश्चन, ए स्लिम फीगर क्लैड इन होमली होम-स्पन ऐंड रैप्ड वार्मली अगेंस्ट ए चिल विंड, वियरिंग डार्क गोगलस, स्कोर्च्ड दास ऐंड नेहरू विद ए कोल्डली इनटेलेक्चुएल स्पीच, शैटरिंग टु पीसेज; दि केस दे वेयर ट्राइंग टु इस्टैबलिश फार लिफ्टिंग दि बान आन काउंसिल-एंट्री।"

—'कोई है' (सिंध आबज़र्वर)

तेजस्वी राजगोपालाचार्य कहाँ चला गया ? वह कौंसिल का कट्टर विरोधी, जिसे स्व० देशबन्धु ने 'महात्मा का महन्त' कहकर पुकारा और जो स्वराजियों की तीव्र निन्दा और चोट सहकर भी उठता गया; जो सारी कांग्रेस में राष्ट्र की जीवन्त आत्मा और उसकी उद्बुद्ध हुङ्कार को लेकर खड़ा हो गया था और जिसने अङ्गद की भाँति पाँव रोपकर कह दिया था कि यहाँ से नहीं हटेंगे और तुम माया-जाल में फँसने जा रहे हो; वह राष्ट्र के पौरुप को पुकारते हुए चलनेवाला और आत्म-विश्वास की आग का चिर-अग्निहोत्री आज कहाँ है ? क्या वह वोटों के लिए उत्सुक, निर्वाचन में बेसुध और मिनिस्टरी की कुर्सी पर बैठकर ठण्डे दिल से बोलनेवाला या अहिंसा के सर्वश्रेष्ठ प्रयोक्ता और साधक से उसके प्रयोग के विषय में जोर से मतभेद प्रकट करनेवाला व्यक्ति वही सी० आर० वही राजगोपालाचार्य है जो एक दिन गांधी की अनुपस्थिति में 'स्थानापन्न महात्मा' की पदवी से विभूषित हुआ था ?

और यह प्रश्न कोई नया नहीं है। राष्ट्र ने सदा राजाजी के नाम के सामने एक प्रश्न—चिह्न लगाया है। इस प्रश्न के पीछे घटनाओं का एक ताँता रहा है। जब सत्याग्रह युद्ध चल रहा था और राजाजी कांग्रेस के कार्यवाहक अध्यक्ष थे तब भी वह मन्दिर प्रवेश बिल के सम्बन्ध में 'खिलौने सी' व्यवस्थापक सभा के सदस्यों से मिलने, मद्रास-गवर्नर से भेंट करने और कनवेसिंग में अपना समय लगाने के कारण देश के विराग-भाजन हुए थे। कांग्रेसी, विशेषतः यू० पी० वाले, उनसे इतने नाराज हुए थे कि उनको इस्तीफा दे देना पड़ा था।

उसके बाद, १९३५ ई० में, राजाजी ने त्रिचनापली के स्थानीय निर्वाचन को लेकर देश के सामने एक समस्या खड़ी कर दी। उन्होंने अनुशासन के विरुद्ध जाने के लिए डा० राजन जैसे परखे हुए नेता

को न केवल कांग्रेस वरन् समस्त सार्वजनिक संस्थाओं से इस्तीफा देने को बाध्य किया। 'स्ट्रैटेजी' की दृष्टि से राजाजी का कथन ठीक था पर नीति की दृष्टि से राजन का वह कथन कुछ कम जोरदार न था कि कभी-कभी आत्मा की रक्षा के लिए अनुशासन या नियम को तोड़ना एक नैतिक कर्तव्य हो जाता है। वस्तुतः समस्त सत्याग्रह आन्दोलन का यही एक वास्तविक आधार रहा है। पर राजाजी ने इसे स्वीकार न किया। इतने पर ही बात समाप्त हो जाती तो भी कुछ समझ में आता। पर राजन को सब संस्थाओं से इस्तीफा देने को बाध्य कर राजाजी ने देश की जनता को अपने इस निश्चय से सन्न कर दिया कि "मैं समस्त सार्वजनिक जीवन से अलग हो रहा हूँ।" देश ने, कांग्रेस कार्यसमिति ने, गांधीजी और राजाजी के साथियों ने—सबने समझाया पर वह टस से मस नहीं हुए। उनका राष्ट्रपति चुना जाना निश्चित था पर उन्होंने उसे स्वीकार न किया, सार्वजनिक जीवन से अलग हो गये और उपनिषद् का अध्ययन करने लगे।

डा० राजन का मसला

पर जिस व्यक्ति ने कांग्रेस की अध्यक्षता ठुकरा दी, अपने पुराने साथियों का अनुरोध अस्वीकार कर दिया, जिसने राष्ट्र का कहना न माना और एकान्त आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने के अपने निश्चय पर अटल रहा वही मद्रास की राजनीति की एक माँग पर अपने आप पुनः राजनीतिक जीवन में लौट आया और मद्रास का 'प्रीमियर' (प्रधान मन्त्री) बन गया और डा० राजन को अपने मन्त्रिमण्डल का एक सम्मानित सदस्य बनाया। कांग्रेस के शासनकाल में कदाचित् ही किसी प्रधान मन्त्री ने इतना कुशलता से शासन की जटिलताओं को पार किया होगा। वह कांग्रेस पक्ष के सर्वोत्तम प्रधान मन्त्री थे।

कुछ ऐसा ही आश्चर्यजनक दृश्य दस साल पूर्व भी हमारे सामने आया। लगभग चार वर्ष से राजाजी कांग्रेस के प्रधान नेता हो रहे

थे। अपनी बुद्धि की शक्ति से उन्होंने कांग्रेस कार्यसमिति को गांधीजी के मार्ग से भिन्न एक मार्ग पर डाला। पूना, बम्बई, वर्धा उनकी विजय-यात्रा के पद-चिह्न मालूम पड़ते थे। उनके जादू में लोग गांधी की अहिंसा का एक विशिष्ट अर्थ करने लगे और सरकार से युद्ध में सहयोग के लिए भी तैयार हुए। राजाजी और जवाहरलाल जी निकट आते-से देख पड़े। फिर हमने उनको गांधीजी, जवाहरलालजी तथा अपने प्रिय पुराने साथियों के विरोध में भी अलग अकेला खड़ा होते देखा। कांग्रेस में एक स्वर से उनका विरोध हुआ, फिर भी इन विरोध के तूफानों के बीच अविचलित भाव से वह अपने स्थान पर खड़े रहे। लोग 'पाकिस्तान' के मन से विरोधी पर स्ट्रेटेजी से समर्थक इस ब्राह्मण को देखकर विस्मित रह गये। यह क्या है? क्यों है?

भारतीय राजनीति के विद्यार्थी के सामने यदि ये दृश्य एक भूल-भुलैया के रूप में आये तो कोई आश्चर्य की बात न होगी। जब कल का वीतराग आज अनुरागी बन जाय और कल संन्यास की प्रतिज्ञा पर दृढ़ व्यक्ति आज राजनीति की देवी पर आसक्त दिखाई दे तो इस उलझन के सामने साधारण आदमी प्रश्न-चिह्न क्यों न लगाये और क्यों न यह चीज उसे उलझनों से भरी हुई और टीका-टिप्पणियों के योग्य दिखाई दे? क्यों न वह पूछे कि क्या १९२२ और १९३२, १९-३५, १९३७ और १९४२, १९४९ और आज के राजाजी एक ही हैं?

पर ये प्रश्न जैसे विकट लगते हैं, वैसी, डरने लायक इनमें कोई चीज नहीं है। असल बात यह है कि राजाजी बदले नहीं हैं, परिस्थिति बदल गई है। दुःख हो पर सच यह कि १९५१, १९२२ नहीं रह गया है और हम जो मनुष्य को उसकी स्थिति से अलग करके देखना चाहते हैं, राजाजी जैसे व्यक्ति को, जिसमें स्ट्रेटेजी है और स्ट्रेटेजी है, कैसे समझ लेंगे? मूर्ति वही है पर पार्श्वभूमि बदल गई है और रंगों

की भिन्नता के अभाव में हम चित्र को आसानी से पहचान नहीं पाते हैं।

यदि हम राजाजी का विश्लेषण करके एक बार उन्हें देख लें तो सर्वत्र उनका सामञ्जस्य भी कर सकेंगे और परिस्थिति के साथ उनका ठीक अनुपात लगाने में सफलता भी होगी। यह ऊपर-ऊपर से देखने पर न होगा, इसलिए हम जरा नीचे पैठें और देखें यह राजाजी नाम का जो व्यक्ति है, वह अन्दर से क्या है और कैसे, क्या लेकर ढला है।

[३]

विश्लेषण : अध्ययन

राजाजी के विषय में पहली बात तो यह कि उनका सारा निर्माण बौद्धिक है। ऐसा नहीं कि उनमें भावना का सर्वथा अभाव हो पर इस भावना पर सर्वत्र विवेक का अंकुश है। जीवन पर बुद्धि का अभेद्य कवच पहने हुए यह व्यक्ति संसार के मञ्च पर विविध अभिनय करता फिरता है। राजनीति के चक्रव्यूह में भी बुद्धि ही उनका प्रधान अस्त्र है।

कानून ने इस बुद्धि पर शान दे-देकर उसे उस्तरे सा तीक्ष्ण कर दिया है और अस्त्र-चालक का अस्त्र पर इतना विश्वास हो गया है कि

उस्तरे की तीक्ष्ण बुद्धि

उसने अन्य जरूरतों और अस्त्रों की उपेक्षा करने की आदत अपने में पैदा कर ली है। 'स्वदेशमित्रन' के संपादक श्री सी० आर० श्रीनिवासन ने राजाजी के सम्बन्ध में, एक बार, ठीक ही लिखा था—

The brain has directed and dominated his career; tuned on the lathe of law, it has developed a razor edge. You will never catch him napping. You will never find him surrender for lack of argument. Give him a weak case, he will make it strong. Give him a strong case, he will seek to

make it stronger." अर्थात् "उनकी जीवनसरणि को इस मस्तिष्क ने ही नियन्त्रित और संचालित किया है। कानून की खराद पर चढ़कर उसने उस्तरे की पैनी धार अपने में पैदा कर ली है। आप उन्हें कभी असावधान (झपकी लेते) नहीं पायँगे। आप उन्हें कभी तर्काभाव से हथियार डालते नहीं देखेंगे। उन्हें कमजोर 'केस' दो, वह उसे मजबूत बना देंगे; उन्हें मजबूत केस दो, वह उसे सुदृढ़तर बनाने की कोशिश करेंगे।"

इस सात्विक ब्राह्मण में यह बुद्धि कुछ यों उठी और ओतप्रोत हो गई है कि ब्राह्मण की स्वाभाविक नम्रता और तप सिर ऊपर नहीं उठा पाते हैं। राजनीति में आकर और परिस्थिति के उतार-चढ़ाव में पड़कर इस बुद्धि ने कूटनीति और 'स्ट्रेटेजी' का रूप धारण किया है। देखने में सीधे-सादे और सरल इस ब्राह्मण में हम गांधी-युद्धकला के चाणक्य का दर्शन करते हैं। यदि गांधीवाद में कोई कूटनीति-पक्ष सम्भव है तो राजाजी उसके सर्वोत्तम प्रतिनिधि हैं।

सच पूछें तो गांधीजी के निकट अनुयायी होकर भी गांधीवाद की आत्मा राजाजी में बहुत कम है;—गांधीवाद का मस्तिष्क ही मस्तिष्क है। गांधीवाद तो आत्मा का अनावृत रूप लेकर चलता है—कम से कम चलना चाहता है। उसमें 'डिप्लोमैसी' नहीं है, नीति नहीं है; शतरञ्ज की चाल नहीं, राजमार्ग का आवाहन है। यह विरोधी के दुःख से दुखी है और विरोधी को पराजित करने को उतावला नहीं — इसमें उसे प्रसन्नता भी नहीं। पर राजाजी, अपने निर्माण में, पं० मोतीलालजी के कँडे के आदमी हैं। वह एक महान् 'स्ट्रेटेजिस्ट' और 'टैक्टीशियन' (हिन्दी में 'चालबाज' इसका ठीक अनुवाद है पर यह शब्द भद्दे और निन्दायुक्त अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण मैंने अंग्रेजी शब्द ही रहने दिया है) हैं। स्व० देशबन्धु और मोतीलालजी के दाँत

हृदय नहीं, मस्तिष्क

खड़े करने वाले इस व्यक्ति की विलक्षणता हमने गया कांग्रेस में देखी थी। तब से उस पर बराबर मेरी नजर रहा है पर सब-कुछ देख सुनकर भी मेरा मत है कि शुद्ध गांधीवाद में राजाजी अपने को ओतप्रोत नहीं कर सके हैं। इसका कारण यह है कि उनके मस्तिष्क ने उनके हृदय को दबा दिया है और गांधीवाद शुद्ध मस्तिष्क जैसी कोई चीज नहीं है। वह मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय की ही चीज अधिक है।

जब मैं यह कह रहा हूँ तब गांधीजी के उस प्रमाण-पत्र को भूला नहीं हूँ जो उन्होंने एकाधिक बार राजाजी को दिया है। मुझे याद है

गांधीजी के प्रमाण पत्र की बात

कि 'गाँधीजी ने एक बार कहा था कि राजगोपालाचार्य ही मेरे एक ऐसे अनुयायी हैं जिन्होंने असहयोग आन्दोलन का अध्ययन और विवेक-पूर्वक मेरा अनुगमन किया है।' यह सर्वोत्तम प्रशंसा है जो आज तक गांधीजी द्वारा उनके किसी अनुयायी की हुई है। एक दूसरे अवसर पर जब गांधीजी को 'सर्वाधिकारी' नियुक्त किया गया था और अपने बाद दूसरे को अपने स्थान पर नामजद करने का अधिकार दिया गया था, एक प्रमुख नेता ने उनसे पूछा कि गिरफ्तार होने पर आप अपने बाद किसे उत्तराधिकारी बनायेंगे, तब गांधी ने तुरन्त कहा था "Well, there is Rajaji"—"अरे राजाजी तो हैं ही।"

जब गांधीजी के द्वारा उनको विश्वसनीय शिष्यता के ऐसे उत्तम प्रमाण-पत्र मिल चुके हैं तब मेरा यह कहना कि राजाजी गांधीवाद की आत्मा में ओतप्रोत नहीं हैं, क्या महज मेरी ढिठाई है ? मैंने सोचा है और गांधीजी के वचनों के प्रकाश में भी विचार करके देखा है, मुझे अपनी बात लौटा लेने का कोई कारण नहीं दिखा ! वस्तुतः मेरा कथन उनके कथन का विरोधी नहीं है। मैं कहता भी यही हूँ कि जहाँ तक गांधीवाद के सार्वजनिक क्रियापक्ष (अर्थात् सार्वजनिक आन्दोलनों) का

सम्बन्ध है, राजाजी उसकी 'स्ट्रैटेजी' के गांधी क्षेत्र में सर्वोत्तम जानकार हैं पर गांधीवाद के आध्यात्मिक और चिरन्तन पक्ष के लिए हमें राजाजी और वल्लभभाई की ओर न देखना होगा; उसमें आचार्य विनोबा और श्री किशोरलाल भाई हमारा पथ-प्रदर्शन करेंगे।

इसलिए मुझे अपनी यह धारणा बदलने का कोई कारण नहीं कि राजाजी प्रधानतः एक बौद्धिक प्रतिभावाले प्राणी हैं। उनमें वही विशेषताएँ हैं जो एक प्रथम श्रेणी के मस्तिष्क वाले प्रतिभाशाली बौद्धिक व्यक्ति में होती हैं और वही दुर्बलताएँ भी हैं जो प्रतिभा और बुद्धि के बल पर चलने वाले व्यक्तियों में होती हैं। यह योगी और साधक का साधना-पक्ष नहीं है; यह नैयायिक और तार्किक का तर्क और बुद्धि-पक्ष है। गांधीजी के अनुयायियों में शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति हो जिसमें राजाजी जैसी सूक्ष्म तर्कना, बुद्धि की विलक्षणता, रासायनिक की भाँति किसी चीज को टुकड़े-टुकड़े, अलग-अलग करके देखने की शक्ति और विरोधी को शाब्दिक उत्तर देने की क्षमता हो। पर जहाँ राजनीति की दृष्टि से ये गौरवास्पद विशेषताएँ हैं तहाँ शुद्ध साधना की दृष्टि से ये ही बाधक दुर्बलताएँ हैं। गांधीवादी हँसता भी है, व्यंग भी करता है पर उसके हास्य और व्यंग में चुभनेवाली किरकिराहट या विष नहीं होता; वह हास्य और व्यंग विरोधी को और उससे भी अधिक उसकी अपनी आत्मा को ऊँचा उठाता है। वह वातावरण से कटुता दूर कर देता है और उसे सरल तथा नम्र बनाता है और विरोधी के लिए उसकी पराजय को तीव्र और असह्य नहीं बनने देता। वह एक 'लिफ्ट' है, जब राजाजी के व्यङ्ग की काट विरोधी के कलेजे के आर-पार हो जाती है; वह बैठ जाता है। राजाजी जब किसी चीज के पीछे पड़ते हैं तो फिर पड़ते हैं—तन्मय हो जाते हैं और फिर वह नहीं या यह नहीं। जिन्होंने दासदल के उच्छेद के लिए उनको

विचक्षणता में बेजोड़

२०५

समस्त देश में तूफान खड़ा करते देखा है और फिर पिछले कौंसिल-निर्वाचन में, मद्रास प्रांत से, जस्टिस पार्टी का राजनीतिक अस्तित्व नष्ट कर देने के लिए रात-दिन अपने को भूलकर दौरा करते देखा है—खाने की सुध नहीं, सोने की चिन्ता नहीं, शरीर की याद नहीं, केवल क्रिया और क्रिया है, वह भारतीय राजनीति में राजाजी के अपूर्व युद्ध-कौशल को कैसे भूल सकता है? वही मुँड़ा सिर, वही खुली शिखा, वही फकीरी बाना, हाथ में कोई अस्त्र नहीं, केवल बुद्धि के भरोसे वातावरण को हिला देनेवाला—क्या भारतीय इतिहास में चाणक्य के सिवा और किसी से उनकी उपमा दी जा सकती है? यह स्पष्टतः एक बौद्धिक कूटनीतिज्ञ का प्रहार है जिसमें विरोधी को चूर-चूर कर डालने की कामना है। और जब एक बार वह प्रहार करने लगते हैं तो करने ही लगते हैं; फिर खड़े होकर शान्त होकर, यह नहीं देखते कि विरोधी मृत्यु के कितना निकट पहुँच गया है और अब क्या मुझे इन प्रहारों को रोक लेने की आवश्यकता नहीं है। युद्ध और संघर्ष में वह गति ही गति हैं। प्रहार का निश्चय कर लेने पर शीघ्रता उनकी एक बड़ी शक्ति है; और दूसरी दृष्टि से यह उनकी एक कमजोरी भी है।

युद्ध में गति ही गति है

यह कहते हुए मुझे उनके जीवन का एक मनोरंजक, पर अत्यन्त महत्वपूर्ण, घटना का स्मरण आ रहा है। जब उनकी वकालत जोरों पर थी तबकी बात है। मोफस्सिल में वह एक मुकदमा लड़कर और अपनी फीस के रुपये वसूल कर लौट रहे थे। कोई ठीक सड़क न थी। और वहाँ से आने के लिए सिर्फ बैल-गाड़ी ही एक सवारी थी। रात हो चली थी और दूर का सफर था। वह बैलगाड़ी में लेट गये और रुपयों की थैली उन्होंने सिरहाने रख ली। आधी रात को जब गहरी नींद में

जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना

सो रहे थे, एक फाटक पर, जहाँ मार्ग-कर (Toll) लिया जाता था, गाड़ी रुकी और 'गेटमैन' ने इनको जोर से आवाज देकर जगा दिया। राजाजी ने सोचा कि डकैतों के किसी दल ने गाड़ी घेर ली है और मुझे लूटने के लिए आ पहुँचा है। बस, उठते ही उन्होंने रिवाल्वर निकाला और उस आदमी के सिर में चुपके से गोली मार दी। वह आगे के संघर्ष की तैयारी कर रहे थे कि उनको ठीक स्थिति मालूम हुई। वह झट कूद पड़े और दर्द से कराहते हुए उस आदमी को गोद में उठा लिया। तेजी से बैलगाड़ी दौड़ाई गई और अस्पताल पहुंचाया गया। जब तक वह आदमी चंगा न हो गया, राजाजी ने उसकी खूब सेवा-सुश्रूषा की और अच्छे होने पर उस दिन का वह सब रुपया, जो उनके साथ था, उन्होंने उसे भेंट में दे दिया।

गांधीजी के प्रभाव एवं वर्षों के त्यागमय जीवन ने उस जल्दबाजी पर प्रबल नियन्त्रण लगा दिया है। आज तो उन पर गम्भीरता का एक दुर्भेद्य आवरण है पर इस घटना के मूल में जो संस्कार थे, वे सर्वथा निर्मूल नहीं हुए हैं। सतह के नीचे वह आग सोई पड़ी है।

× × ×

राजाजी की आँखों ने कमजोर होकर उन्हें एक और सुविधा प्रदान की है। उनकी आँखों पर रंगीन चश्मा होता है। स्वर्गीय देश-

चश्मे के पीछे!

बंधु दास ने एक बार कहा था—"C R.'s dark glasses make him see others all right, but he can not see himself." अर्थात् "राजगोपालाचार्य का काला चश्मा उन्हें दूसरों को तो ठीक तरह देखने (की शक्ति) देता है परन्तु वह स्वयं अपने को नहीं देख सकते।" मैं नहीं कह सकता कि यह बात कहाँ तक ठीक है पर मैं इतना कहूँगा कि इस चश्मे ने उनकी बड़ी सेवा की है और उनकी स्थिति विरोधी के लिए अगम्य बना दी है। यदि वह किसी से बात

कर रहे हों तो दूसरों की आँखों में उदय होनेवाले भावों को यह देख सकते हैं पर उनपर उन बातों का क्या प्रभाव पड़ रहा है और क्या प्रतिक्रिया हो रही है, यह चश्मे के अन्दर उनकी आँखों में छिपा रह जाता है। इस दृष्टि से वह सदा फायदे में रहते हैं और युद्ध-काल में इस फायदे का महत्व बहुत अधिक है।'दूसरों को कुतूहल और रहस्य में डाल देने में उनको एक मजा आता है पर यह सब प्रायः षड्यन्त्र के रूप में नहीं, युद्ध-नीति और व्यूह-रचना के रूप में होता है।'*

वाणी की विभूति का अभाव

आश्चर्य तो यह है कि राजाजी-जैसा प्रथम श्रेणी के मस्तिष्कवाला व्यक्ति जन-समाज में इतना प्रभावशाली कैसे हो गया? उनमें जन-समूह के नेतृत्व के गुणों का अभाव है। जनता के हृदय पर शासन करने के लिए राजनीति में वाणी सबसे प्रबल अस्त्र है और राजाजी को जो वाणी मिली है वह प्रथम श्रेणी के वक्ता की वह वाणी नहीं जो श्रोताओं के समूहों को हिलाती है जैसे प्रलय-प्रभञ्जन वृक्षों को झकझोर देता है। उनमें स्व० लाला लाजपतराय की वह सिंह-गर्जना नहीं जो दिल के बुझते दियों में एक भभक पैदा करती थी; उनमें महामना मालवीय जी की वह धारा-प्रवाह वक्तृत्व शक्ति नहीं जिसमें प्रवाह के साथ अन्त तक मृदुला का आवरण होता था; उनके पास भूलाभाई का सुसंस्कृत शब्द-कोश और भाषा की वह पालिश और संस्कृति भी नहीं है जिसे सुनने के लिए भाषा और साहित्य के आचार्य का दिल व्याकुल हो उठे। तब उनमें वह क्या है, जिसे सुनने के लिए लोग इतने उत्सुक

---

*"ही टेक्स डिलाइट इन बीइंग ऐन इनट्रीगर। बट मेनी ए टाइम इट इज़ नाट दि प्लाटर बट दि टैकटीशियन इन हिम दैट डामिनेट्स।"

—"कोई है।"

होते हैं। बात यह है कि किसी जटिल समस्या को थोड़े और सरल शब्दों में अत्यन्त सरलता और स्पष्टता के साथ उपस्थित करने की उनमें असाधारण शक्ति है। एक लेखक ने ठीक ही लिखा था—"He lacks the torrential rhetoric of Mrs. Naidu; he has not the explosive imagination of Mr. S. Srinivas Iyenger but for a concise, trenchant, skilful summiug up of a case, either in attack or in defence, he is perfect." अर्थात् "उनमें श्रीमती नायडू की अलंकृत वाग्धारा का अभाव है; उनमें श्री एस० श्रीनिवास ऐयङ्गर की विस्फोटक कल्पना-शक्ति की कमी है किन्तु किसी 'केस' का एक संक्षिप्त; तीक्ष्ण और चातुर्यपूर्ण सारांश निकाल लेने में—फिर चाहे वह आक्रमण में हो या रक्षा में वह परिपूर्ण हैं। उनकी वाणी महान् जन-समूहों की अपेक्षा ड्राइङ्ग रूम के श्रोताओं के अधिक उपयुक्त है। वह दूर-दूर तक पहुँचने की शक्ति से तो हीन है ही, उसमें मृदुता और मुलायमियत भी नहीं है।* वह शिशिर की ठण्डी—हड्डियों में कम्पन पैदा करने वाली हवा के समान हैं जो अप्रिय होने पर भी अन्दर तक प्रविष्ट होकर मनुष्य को हिला देती है।

शिशिर की कम्पन-कारी हवा के समान

वस्तुतः वह जनता के नेता नहीं हैं। वह कार्यकर्त्ताओं के पथ-प्रदर्शक हैं। वह शिक्षित, विशेषतः अंग्रेजी भाषा जाननेवाले, उच्च मध्य श्रेणी के नेता हैं, जो भावना के वेग की जगह बुद्धि के चमत्कार को अधिक पसन्द करता है। उनमें एक लोकप्रिय नेता होने के लिए आवश्यक मात्रा से कहीं अधिक बुद्धि है। जो चीज उनके सामने होती

---

*"...हिज वायस नाट मेयरली लैक्स रेंज—ऐंड रीच बट आलसो साफ्टनेस ऐंड स्वीटनेस।"—सी० आर० श्रीनिवासन

है उनमें वह तन्मय हो जाते हैं और उसके लिए फिर किसी चीज का भी त्याग कर सकते हैं चाहे उसका भावनागत मूल्य कुछ भी क्यों न हो। उनमें भावना की आग नहीं और न जन-समूह के हृदय तक पहुँचनेवाली जिह्वा है। *राजनीति में वह एक प्रबल वस्तुवादी (रियलिस्ट) हैं। यह उनकी योग्यता और प्रतिभा का सर्वोत्तम प्रमाणपत्र है कि राजनीति के जिस बाजार पर सस्ती भावना का आधिपत्य हो और जहाँ भाव-प्रवणता और जोश देशभक्ति के लक्षण समझे जाते हों तहां केवल अपनी बुद्धि के बल पर उन्होंने देश में वह स्थान प्राप्त कर लिया जो आज उनका है। शत्रु मित्र सब उनकी इस सूक्ष्म बुद्धि का लोहा मानते हैं। मद्रास के भूतपूर्व गवर्नर सर जार्ज स्टेनली उनके बड़े प्रशंसक थे और लार्ड एरस्किन भी उन पर वैसे ही मुग्ध थे। राजाजी की बुद्धि ने उनके जीवन को एक और विशेषता प्रदान की है और वह यह कि सार्वजनिक सेवा को वह व्यक्तिगत आसक्ति या मोह से बिल्कुल अलग करके देखते हैं। वर्षों की सार्वजनिक सेवा और परिचय ने भी कार्यकर्त्ताओं से व्यक्तिशः उनको अलग रखा है। वह आपके साथ काम इसलिए करते हैं कि सार्वजनिक हित का वैसा तकाजा है और इसलिए कि उस अच्छे काम से उनके लक्ष्य का सम्बन्ध है। पर कार्यकर्त्ता के पीछे जो व्यक्ति है उसकी तह में जाने या उसके अन्तर को स्पर्श करने का वह प्रयत्न नहीं करते। इस विषय में वह अपने गुरु—गांधीजी—से सर्वथा भिन्न हैं। गांधीजी व्यक्ति के दिल में पैठते थे इसलिए उनके सामने ऐसे सैकड़ों आदमी अपना मन अनावृत करके, खोलकर रख देते थे जिनका उनके राजनीतिक या सामाजिक कार्यक्रम या जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं था। राजाजी को व्यक्ति से कोई मतलब नहीं। वह

---

*"दि ट्रूथ इज़ ही इज़ टू मच ऐन इनटेलेक्चुएल टु मेक ए पापुलर लीडर। ही हैज़ नाट दी फायर आफ़ पैशन, नार दि टंग आफ़ पर्सुएशन इन हिम।"

उसे एक कार्य-विशेष के साधन (वेहेकिल) के रूप में लेते हैं और उस कार्य के लिए उसको आदरपूर्वक ग्रहण करते हैं। इसीलिए जब गांधीजी का सम्बन्ध व्यक्ति से अधिक मौलिक, अधिक स्थायी और अधिक पूर्ण था, तब राजाजी का सम्बन्ध बाह्य और नैमित्तिक है। इसलिए राजाजी के साथी और प्रशंसक तो बहुत हैं; उनको श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखनेवालों की संख्या भारत, विशेषतः मद्रास, में बहुत अधिक है पर उनके साथ घनिष्ठता और मित्रता का सम्बन्ध रखनेवाले अंगुलियों पर गिन लिये जा सकते हैं—मुझे सन्देह है कि उनका कोई हार्दिक सखा और मित्र है भी या नहीं।*

पर इसमें उनका कोई दोष नहीं है। उनकी बुद्धि ही इस विषय में उनका 'कम्पास' है। वह व्यक्ति और कार्य को एक करके देखना पसन्द नहीं करते। डा० राजन वाले विवाद में हम राजाजी के इस दृष्टिकोण का एक प्रबल प्रमाण पाते हैं। डा० राजन् से उनका बड़ा ही मधुर सम्बन्ध रहा है। उन्हीं के कारण डा० राजन राजनीतिक क्षेत्र में आये। डा० राजन राजाजी को गुरु-तुल्य मानते रहे हैं पर सार्वजनिक प्रश्न पर राजाजी ने व्यक्तिगत सम्बन्ध का ज़रा भी ख्याल न किया। अपनी इस निरपेक्षता के कारण भी राजाजी जन-समूह के नेता नहीं बन सकते। औसत आदमी घृणा और प्रेम, दुर्बलता और

---

* श्री सी० आर० श्रीनिवासन इस विषय में अपना अनुभव बयान करते हुए लिखते हैं—"आई हैव नोन राजाजी फार वेलनाई ट्वेंटी ईयर्स बट नेवर इंटीमेटली। ही इज़ नाट दि टाइप टु मेक फ्रेंड्स ईज़िली। ही हैज़ अनडाउटेडली ए वाइड सर्किल आफ एक्वेंटेंसेज़, बट फ्यू इंटीमेट्स। हैविंग डेलीबेरेटली संटर्ड आल टाईज़ विद दोज़ नियर टु हिम, इट सीम्स टु मी, ही इज़ परपीच्युयली आन हिज़ गार्ड अगेंस्ट फार्मिंग फ्रेश अटैचमेंट्स। ही विल टाक टु यू फ्रीली बट नेवर विदाउट रिज़र्व।"

शक्ति का एक मिश्रण होता है; वह मशीन की तरह समझा जाना पसन्द नहीं करता इसलिए वह उस नेता की ओर अधिक आकर्षित होता है जिसका दृष्टिकोण मानवी हो और कमजोरियों में उसके साथ सहानुभूति प्रदर्शित कर सके; जो सब कमजोरियों के साथ भी उसे ममत्व से अपना बना ले। राजाजी में यही बात नहीं है। इसलिए उनके साथी और कार्यकर्ता उनके प्रति किसी गहरी आसक्ति और ममता का अनुभव नहीं करते; वहाँ उनके लिए प्रेम नहीं, आदर है; घनिष्टता नहीं, सम्मान है।

किसी ने कहा था कि महात्मा की शक्ति और कार्यक्षमता वल्लभभाई, सेवा और विनय राजेन्द्र बाबू और दिमाग तथा तत्वज्ञान राजगोपालाचार्य हैं। इस बात में सत्य का बहुत अंश है। मैं जानता हूं कि वह गांधीजी के सिद्धान्तों को लेकर उन्हीं से अलग मार्ग पर रहे हैं पर ऐसा तो होता रहता है। मैं जीवन-दृष्टि की बात कर रहा हूं और सब मिलाकर व्यक्ति को देखने का मेरा प्रयास है।

तार्किक की सिद्धियाँ

राजाजी स्वाभावतः तार्किक हैं। तार्किक की तरह वह बातों और समस्याओं की तह तक पहुँचते हैं। उसमें तार्किक की सीधी काट है और वह तर्क को प्यार करते और उनमें रस लेते हैं; केवल विश्वास के कारण किसी बात को मानने वाले वह नहीं हैं; उनमें श्रद्धा और विश्वास की मात्रा बहुत कम है। श्रीनिवासन ने लिखा है—"ही हैज़ सीन हिज़ मास्टर परफार्म मिरेकिल्स। दैट हैज़ बट गिवन हिम फेथ इन हिज़ मास्टर नाट इन दि मटेरियल्स ऐट हिज़ डिस्पोज़ल" (उन्होंने अपने गुरु को चमत्कार करते देखा है। इन चमत्कारों ने गुरु में उनको विश्वास करना तो सिखाया है, गुरु के साधनों में विश्वास करना नहीं।) गांधी तत्वज्ञान को आज जो रूप मिल गया है, उसमें राजाजी की बहुत बड़ी देन है। अपने तर्क और बुद्धि के द्वारा उन्होंने असहयोग काल में,

और उसके बाद भी, गांधी जी के शब्दों में वह गहराई और बारीकी निकाली जो कदाचित् गांधीजी को भी लिखते समय न सूझी होगी। गांधी तत्वज्ञान के सम्पादक और भाष्यकार के रूप में उन्होंने उसमें सूक्ष्मता (Subtlety) की खोज और प्रतिष्ठा करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है पर इस सूक्ष्मता में उसके अन्तःसौन्दर्य और महत्ता (Sublimity) की किञ्चित् क्षति भी हुई है।

बात यह है कि राजाजी प्रेरणा (Intuition) और संस्कार से नहीं वरन् बुद्धि और तर्क के आश्वासन से महात्माजी के भक्त और अनुयायी हैं। इस अनुसरण में निष्ठा नहीं है, जो गांधी तत्वज्ञान की आत्मा है; इस अनुसरण में व्यवहार बुद्धि और तर्क का कौशल है। इस अनुसरण में बुद्धि का प्रयोग है। राजाजी महात्माजी के आध्यात्मिक शिष्य नहीं हैं; उनकी गहरी आध्यात्मिकता और आत्म-प्रेरणा तथा अन्तःवाणी से उनका सम्बन्ध नहीं है। वह गांधीजी के बौद्धिक शिष्य हैं। गांधीवाद के प्रति उनकी पहुँच बुद्धिगत है। उन्होंने उसे ग्रहण इसलिए किया है कि वर्तमान परिस्थिति में व्यक्ति और समाज तथा भारतीय राजनीतिक दुरवस्था से मुक्ति का वह सबसे सरल, सम्भव और बुद्धिगम्य उपाय है। गांधीजी के सत्याग्रह का राजनीतिक आधार भी मनुष्य की आध्यात्मिक वृत्तियों को लेकर बना है। वह मनुष्य की तात्विक पवित्रता तथा उसकी पवित्रोन्मुखी वृत्ति में विश्वास रखते हैं; इसलिए वह अपने कार्यों और आन्दोलन द्वारा मानव में मूर्छित देवत्व को जगाने की चेष्टा करते हुए चलते हैं। राजाजी मानव का तात्विक अनुसन्धान करते हुए राजनीति में चलने को तैयार नहीं हैं। वह मनुष्य की दुर्बलताओं, समाज की परिस्थितियों की भलीभाँति जाँच-पड़ताल करने और सब प्राप्त साधनों और सुविधाओं का विचार कर लेने के बाद ही किसी कार्य में हाथ डालना पसन्द करते हैं। अन्तःप्रेरणा को वह सार्वजनिक मामलों में प्रधानता देने को तैयार

नहीं। उनका निर्णय लम्बे विचार-विमर्श का परिणाम होता है और प्रत्येक निर्णय के मूल में अगले कार्यक्रम की सफलता के लिए वातावरण बनाने का ध्यान होता है। वे पक्के बुद्धिवादी हैं और अपने जीवन के प्रबलतम अस्त्र (बुद्धि) का पूरा उपयोग करते हैं।

× × ×

इतनी बातें कर लेने के बाद अब आप राजाजी को देखने और पहचानने की चेष्टा करें। पहली बात जो उनके विषय में याद रखने की है यह है कि तीक्ष्ण बुद्धि-विवेक उनके जीवन का मेरुदण्ड है। उनका जीवन इसी से आवेष्ठित और ओतप्रोत है। मैंने एक बार लिखा था कि वह गांधी युग के एक बौद्धिक चमत्कार हैं। यह बात आज भी उतनी ही ठीक है। सिवाय मोतीलालजी के दूसरा कोई नेता गांधी-युग में ऐसा नहीं हुआ जिसने राजाजी की भाँति सार्वजनिक क्षेत्र में बुद्धि-शक्ति का इतना व्यापक उपयोग किया हो। कई वर्ष हुए, कांग्रेस के एक भूतपूर्व अध्यक्ष ने, जो स्वयं वकील थे और जिनको अपनी बौद्धिक शक्ति का अभिमान था, एक दिन सभा के बाहर निकलकर थके स्वर में कहा था—"इस काले चश्मेवाले व्यक्ति के साथ वादविवाद विकट बौद्धिक संग्राम है।" और यह बिलकुल ठीक है। उनके साथ साधारण वार्तालाप भी एक बौद्धिक विनोद – चमत्कार होता है। प्रश्नों की तह तक पहुंचने की उनकी शक्ति अद्भुत है। दिल्ली कन्वेशन में उनका भाषण सबसे स्पष्ट और सुलझा हुआ था जब कि अन्य नेताओं के भाषण आशा और सन्देह, किन्तु और परन्तु के अद्भुत मिश्रण प्रतीत होते थे। यही बात वर्धा महासमिति की बैठक के विषय में भी कही जा सकती है। वह वैज्ञानिक प्रयोगशाला के प्रयोगकर्ता वैज्ञानिक की भाँति प्रत्येक बात की भलीभाँति परीक्षा करते हुए चलते हैं और इसमें उनकी बुद्धि

बुद्धि का व्यापक उपयोग

को थकते किसी ने नहीं देखा। प्रत्येक बौद्धिक द्वन्द्व उनमें और ताजगी लाता है।

उनकी सफलता का दूसरा रहस्य उनका दृढ़ आत्म-विश्वास है। इस विषय में भी वे हमें मोतीलाल जी की याद दिलाते हैं। वे वाद-विवाद में बिल्कुल निश्चिन्त और अविचलित रहते हैं—इस बात में वह मोतीलालजी से कहीं श्रेष्ठ हैं।

आत्म-विश्वास

उनमें अद्भुत इच्छाशक्ति है। पिछले निर्वाचन में जस्टिस पार्टी को निर्मूल कर देना उन्हीं का काम था। उनको अपने अन्दर पूर्ण विश्वास होता है और उचित मौके पर वह अपनी बुद्धि के अस्त्र का उपयोग करते हैं। जब तक वह अवसर नहीं आ जाता वह शान्त बैठे रहेंगे। वह बीच में कभी आपके भाषण में बाधा न डालेंगे। उतावलापन उनमें नहीं है। पर उनकी बारी आई तो वह विरोधी पर निर्दय आक्रमण करेंगे और विपक्षियों की दलीलों को चूर-चूर कर देंगे।

इस विषय में भी वह मोतीलालजी से अधिक अच्छी स्थिति में हैं। मोतीलालजी अपने शत्रुओं या विरोधियों को अत्यन्त उपेक्षा और घृणा से देखते थे पर राजाजी विजयी होकर भी उनको उत्तेजित होने का मौका नहीं देते। वह स्वभाव से विनयशील नहीं हैं और उनको अपनी श्रेष्ठता का ज्ञान भी है परन्तु अभ्यास और आत्मानुशासन से उन्होंने विनय को प्राप्त कर लिया है। विरोधी के प्रति यह विनय भी उनकी युद्ध-कला का एक अंग है।

मोतीलालजी से भिन्नता

उनकी इच्छाशक्ति और आत्म-विश्वास के विषय में एक छोटी घटना मुझे याद आती है। एक बार की बात है कि स्व० डा० रङ्गाचार्य को उनके अँगूठे का आपरेशन करना था। आपरेशन से पूर्व उनका एक सहकारी क्लोरोफार्म (बेहोशी की दवा) सुँघाने आया। राजाजी ने कहा—"नहीं क्लोरोफार्म की आवश्यकता नहीं है। मैं

बिना क्लोरोफार्म के ही आपरेशन का दर्द और दृश्य सह सकूँगा।" आपरेशन के समय, वह सचमुच अविचलित खड़े रहे। इस दुबले आदमी की यह इच्छा-शक्ति देखकर डाक्टर दंग रह गये।

फिर इस इच्छा-शक्ति के साथ उनकी काम करने की लगन भी अद्भुत है। वह एक अथक परिश्रम करनेवाले कार्यकर्ता हैं। जब वह एक कार्य में लग जाते हैं तब उसको समाप्त करके ही दम लेते हैं। एक बार वह त्रिचनापल्ली में डा० राजन के बँगले में ठहरे हुए थे। तार आया कि आपके पिता जी बहुत ज्यादा बीमार हैं और अन्तिम क्षण के पहले आपको देख लेना चाहते हैं। राजाजी उस समय जरूरी पत्र-व्यवहार में व्यस्त थे। उन्होंने तार पढ़ा और मोड़कर रख दिया। उनके भावुक नवयुवक सेक्रेटरी, जो उनकी अगाध पितृभक्ति से परिचित थे, द्रवित खड़े थे। राजाजी ने शांत भाव से कहा—"ईश्वर की इच्छा प्रबल है। हम अपना काम समाप्त करने के बाद रात की गाड़ी से घर चलेंगे।" और उसी संलग्नता के साथ काम करते रहे।

सबके ऊपर बात यह है कि सेवा के लिए उन्होंने जीवन की सुविधाओं और शृङ्गारिकता का पूर्णतः त्याग किया है। इस विषय में वह बिल्कुल एक फकीर ही हो गये हैं। मद्रास की प्राइम मिनिस्टरी के समय भी उनकी सरलता वही थी। उनमें ब्राह्मण का त्याग और वैश्य की व्यापारिक संलग्नता है। और इन दोनों ने उन्हें चाणक्य बना दिया है। उन्होंने मद्रास का प्रधान मन्त्रित्व ग्रहण करने में निश्चय ही एक महान् त्याग किया। वह इसके लिए तैयार न थे पर प्रांत के अन्तर्द्वन्द्व ने उन्हें एकान्त छोड़कर बाहर आने को विवश किया।

इन सब बातों की ओर ध्यान रखते हुए जब हम राजाजी को देखते हैं तो उनके जीवन में जो विरोधाभास प्रतीत होता है वह नष्ट हो जाता है। 'स्ट्रेटेजी' में बराबर, समयानुसार, स्थिति के अनुसार, वह परिवर्तन करते रहे हैं पर इन परिवर्तनों के बीच उनके लक्ष्य का ध्रुवतारा एक

ही रहा है। जब लोग राजाजी के ढंग और उनकी बातों से असन्तोष प्रकट करते हैं तब यह भूल जाते हैं कि राजाजी एक भावुक मरने-मारने को तैयार देश-भक्त नहीं है। वह तरंग पर उठते और गिरते नहीं हैं। वह स्वभावतः एक त्यागी, गम्भीर सेवक, पर अपनी सेवा की सिद्धि में एक पूर्णतः विकसित कूटनीतिज्ञ,—'डिप्लोमैट'—हैं। असल में राजाजी में त्याग और साधुता, कूटनीतिज्ञता और विचक्षणता दोनों का अद्भुत मिश्रण है। मुझे याद है, उनके एक अनुयायी ने एक बार कहा था कि 'वह सन्त फ्रांसिस और कौटिल्य दोनों के मिश्रण हैं।' साधारण आदमी जब उनकी ओर श्रद्धा से आकर्षित होता है तब शिक्षित श्रोता उनकी तर्कनाशक्ति पर आश्चर्य से अभिभूत हो जाता है। आधुनिक भारतीय राजनीति में राजा जी अपनी बौद्धिक सिद्धियों और चमत्कारों के लिए बेजोड़ रहेंगे।

इस कूटनीतिज्ञता के साथ उनमें अपने दृढ़ विश्वासों के लिए अकेले खड़ा होने का अद्भुत निश्चय भी है। जब वह किसी को ठीक समझ लेते हैं तब उसके लिए साथियों और सहकर्मियों का भी विरोध सहन करने को तैयार हो जाते हैं। मुस्लिम-लीग और कांग्रेस के सह-योग के प्रश्न पर हम उनका यह रूप देख चुके हैं। इस विषय में वह गांधी जी के निकट हैं। यह दृढ़ता उनके जीवन का एक अंग है और उपनिषद् तथा गीता के स्वतन्त्र अध्ययन ने इसको पक्का कर दिया है।

उनकी बुद्धि बिलकुल अनावृत है—उसमें किसी प्रकार की शंका या संशय नहीं। वह जो कुछ सोचते हैं बिलकुल स्पष्ट, दिन के प्रकाश की तरह, सोचते हैं। जब लोगों के दिमागी आकाश पर बादल घिर रहे होते हैं तब भी वह अपना मार्ग स्पष्टता के साथ देख सकते हैं। अपने विचारों को इतनी स्पष्टता के साथ रखनेवाला कांग्रेस में कोई नहीं है। किसी भी स्थिति में वह आश्चर्यचकित, दिग्मूढ़ नहीं होते। और यही कारण है कि यह जानते हुए भी कि मेरा अन्तःकरण सत्य के

मार्ग की ओर ठीक इङ्गित करता है, गांधीजी तक राजाजी के तर्कों का उत्तर देने में अपने को असमर्थ पाते थे। बारडोली और वर्धा के निर्णय उनकी तर्क-शक्ति के प्रमाण हैं। उनकी बातें इस स्पष्टता से, तर्कों की क्रमिक परम्परा में, मोती की लड़ियों की भाँति, गुँथी हुई आती हैं कि गांधीजी में परम विश्वास रखनेवाला भी कहता है—'श्रद्धा गांधीजी की ओर जाती है पर दिमाग राजाजी की ओर झुकता है।' या 'कल्याण तो गांधी के पथ से ही होगा, पर वर्तमान परिस्थिति में राजाजी ठीक कहते हैं!' वल्लभभाई ने एक बार ठीक ही कहा था—

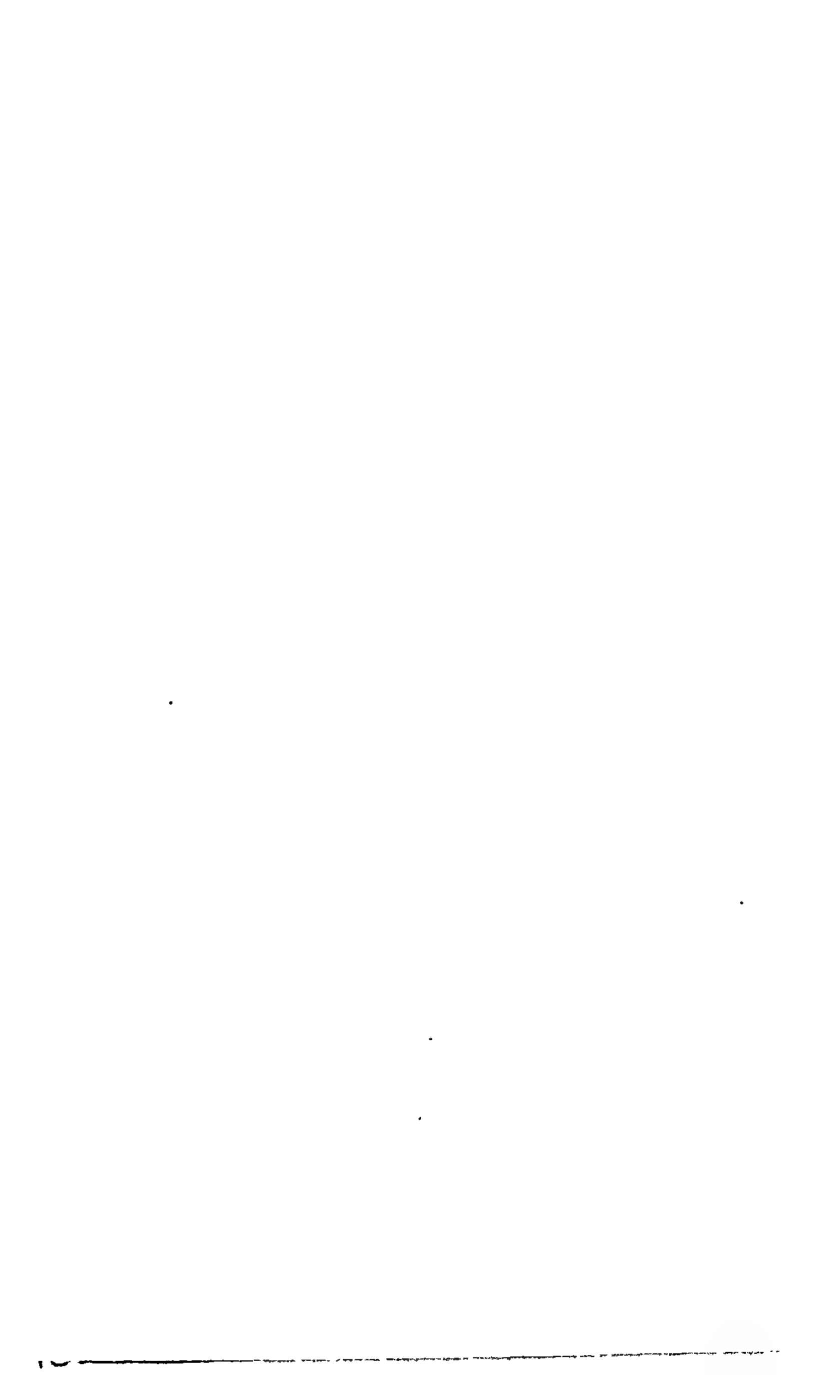
"हममें एक शख्स (राजाजी) है जिसका दिमाग सुलझा हुआ है, और जो स्पष्टता के साथ विचार करता है।"

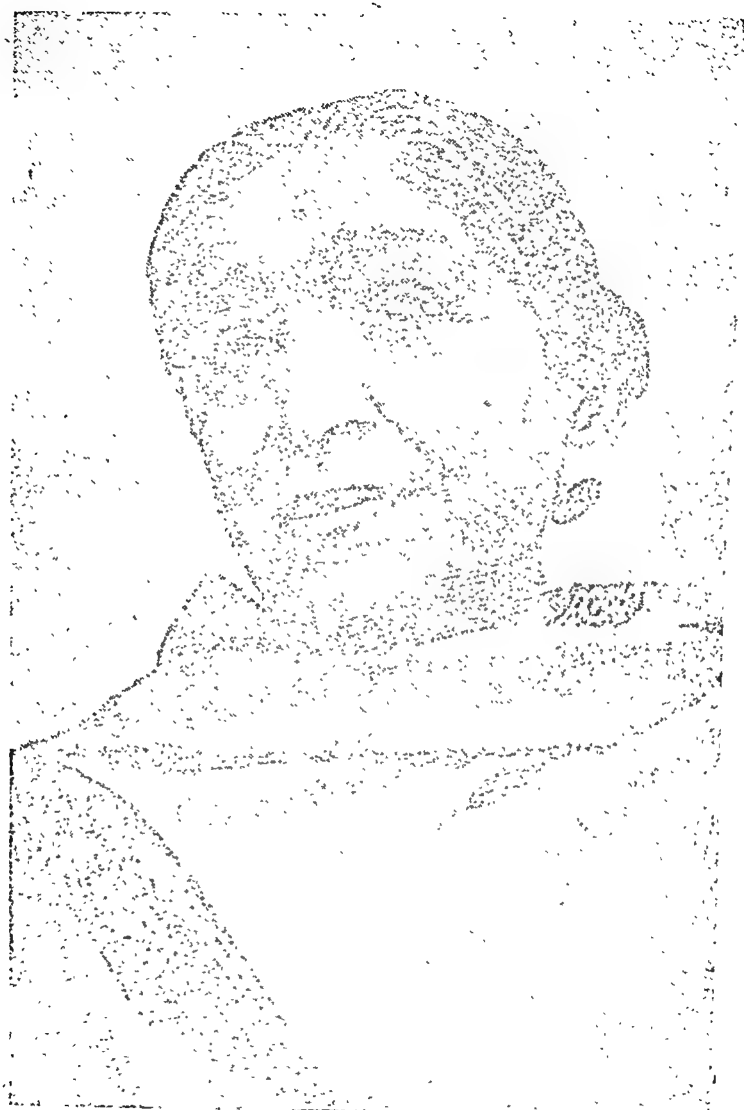
× × ×

कांग्रेस की विधायक राजनीति में राजाजी का हिस्सा बहुत अधिक है। अस्पृश्यता-निवारण में उनकी देन उल्लेखनीय है। खादी-प्रचार में तिरुचेनगोडू आश्रम तथा अन्य संस्थाओं द्वारा उन्होंने काफी काम किया है। मादकद्रव्य बहिष्कार आन्दोलन के तो वह पिता हैं।

वह तमिल के एक मँजे हुए लेखक हैं। उनकी कहानियाँ हमें टालस्टाय की याद दिलाती हैं। गीता और उपनिषद् की उनकी टीकाएँ बहुत लोकप्रिय हैं। राजाजी न केवल धर्म और दर्शन के एक अच्छे विद्यार्थी हैं वरं एक साधक भी हैं। आवश्यकता प्रतीत होने पर वह राजनीति को इस प्रकार छोड़ सकते हैं, मानो उससे कभी कोई सम्बन्ध ही न था।

पर सब कुछ परिस्थिति पर निर्भर करता है। छोड़ते-छोड़ते ग्रहण और ग्रहण करते-करते त्याग उनकी विशेषता है। इसीलिए आज पुनः वह भारत-सरकार के गृह-सचिव हैं।





सरोजिनी नायडू

सरोजिनी नायडू

: आधुनिक भारतीय स्त्रीत्व की प्रतिनिधि :

...

जन्म : १३ फरवरी १८७९ ई०

मृत्यु : २ मार्च, १९४९ ई०

"Tho' you deny the hope of all my being,
Betray my love, my sweetest dream destroy,
Yet will I slake my individual sorrow,
At the deep source of Universal joy,
O Fate, in vain you hanker to control,
My frail, serene, indomitable soul."

"चाहे तू मेरे संपूर्ण जीवन की आशा से मुझे वंचित कर दे, मेरे प्रेम को छिन्न-भिन्न और मेरे मधुरतम स्वप्न को नष्ट कर दे फिर भी मैं अपने व्यक्तिगत दुःख को विश्वानन्द के गम्भीर स्रोत में डुबाकर रहूँगी। ऐ भाग्य! तू मेरी क्षीण, शान्त और अजेय आत्मा पर प्रभुता स्थापित करने की चेष्टा व्यर्थ ही कर रहा है।"

[१]

पहला प्रभाव

१६२१ ई० में पहली बार मैंने देवी सरोजिनी का व्याख्यान सुना और उन्हें देखा था। उनकी कविताएँ पढ़ी थीं। उन दिनों मन स्वप्नों से भरा था और दुनिया का दर्शन मैं अपनी भावना के अञ्जन से आँजी हुई आँखों से ही करता था। कुछ ठीक पता भी न था कि दिल में जो उमड़ रहा है और जो जीवन के सम्पूर्ण भ्रम, सन्देह और प्रश्न-चिह्नों पर छा जाना चाहता है, वह क्या है और कहाँ ले जायगा। सम्पूर्ण राष्ट्र एक अपूर्व आन्तरिक कम्पन से हिल उठा था। यौवन नशे से उद्वेलित था। मन में रागिनी, कलेजे में एक दर्द, सीने में एक उत्साह था। स्वभावतः सरोजिनी की कविताएँ प्राणों में प्रतिध्वनित हो रही थीं। उनकी स्वप्न-मूर्ति, एक कल्पना-चित्र मन में था।

इसलिए यह व्याख्यान प्रभाती की तरह आया और प्राण की अधखिली कलियों को गुदगुदाता और उनकी पंखड़ियों पर से नींद की खुमारी को उठाता हुआ उड़ गया। व्याख्यान के बाद भी देर तक मैं सभा भवन में बैठा रहा—मुझे होश न था कि सभा कब खत्म हो गई और कब श्रोता एक-एक करके चले गये। एक सुषुप्ति-सी आ रही थी। जब मेरा ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया गया कि सभा खत्म हो गई है तो मैंने एकाएक जग जानेवाले आदमी की तरह आश्चर्य से अपनी चारों ओर देखा। मेरे दिमाग पर एक नशा-सा छाया हुआ था। मैं व्याख्यान का विश्लेषण न कर सकता था और न ठीक-ठीक मैं अपने को ही यह समझा पाता था कि व्याख्यान में कौन-से विषय और विचार थे। जैसे जो कुछ कहा गया वह सब मिलकर एक था और

उसके टुकड़े न हो सकते थे। उसमें आलोचना और विषय—प्वाइंट्स—की अपेक्षा स्वप्न और दृष्टि ('विज़न') अधिक थी। यह एक लहर थी, जिसके शस्त्रों से टुकड़े न किये जा सकते थे। सामञ्जस्य और एकत्व से पूर्ण हृदय से एक धारा निकल रही थी, जिसका प्रभाव अप्रत्यक्ष पर अस्थायी था और जो जीवन के अन्तःस्तर को छूती थी।

यही सरोजिनी के जीवन की कुञ्जी है। तबसे अनेक बार उन्हें देखा है, सुना है, बातें भी की हैं पर वह प्रभाव और चित्र आज तक ज्यों का त्यों है। वह देवी सरोजिनी का अन्तःस्वरूप है। वह एक 'स्पिरिट,' एक धारा, एक अक्षय सौन्दर्य-राशि और आनन्द की अन्तःसलिला की प्रतिनिधि थीं। इसलिए राजनीति के कर्कश कोलाहल में भी उनके हृदय से कविता मन्दाकिनी की भाँति बही और वृद्धावस्था में भी उनका हृदय प्रेम के प्रथम अनुभव-सा सतत नवीन रहा।

ऊपर मैंने उनकी जो कविता दी है, उसमें मानों उनका समस्त जीवन बोल उठा है। उन्होंने कष्ट-दुःख तथा व्यथा की दुनिया में विचरते हुए भी भाग्य को चुनौती देकर कह दिया है कि 'तू किसी तरह मेरी आत्मा पर विजय न प्राप्त कर सकेगा।' जीवन किसी प्रकार पराजित और म्लान होने को तैयार नहीं है।

आनन्द का यह स्रोत क्या है? विश्वानन्द में अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों को डुबा देना। आत्मार्पण प्रेम और आनन्द का मूल है। नारी ने युग-युग से इसका रहस्य जाना है। सरोजिनी में हम पग-पग पर उस विश्वनारी के दर्शन करते हैं। उनका सारा जीवन देने और देने का, आत्मार्पण का एक व्यापक क्रम है। इस विषय में वह पहली भारतीय नेत्री हैं जिनमें मातृत्व, व्यथित और पीड़ित मातृत्व, अपनी सन्तति को पुकार रहा है।

———

[२]

जीवन-कथा

सरोजिनी देवी का जन्म १३ फरवरी, १८७९ ई० को हैदराबाद (दक्षिण) में हुआ था। इनके पूर्वज ब्रह्मनगर (बङ्गाल) से यहाँ आये थे और ब्राह्मणों में इनके कुल का सम्मान था।

जन्म, बचपन और शिक्षण

सरोजिनी के पिता डा० अघोरनाथ चट्टोपाध्याय विज्ञान के अच्छे विद्वान थे और १८७७ ई० में उन्होंने एडिनबरा विश्वविद्यालयसे विज्ञान में आचार्यत्व (डी०यस-सी०) की उपाधि प्राप्त की थी। उनका अध्ययन विस्तृत था और उनकी प्रतिभा विशाल थी। स्वभाव बड़ा मृदु और सरल था। सरोजिनी ने अपने पिता के सम्बन्ध में स्वयं ही लिखा है—

"I suppose in the whole of India there are few men, whose learning is greater than his and I don't think many men more beloved."

अर्थात् "मेरा ख्याल है कि समस्त भारत में ऐसे थोड़े ही आदमी होंगे, जो विद्वत्ता में उनसे बढ़े-चढ़े हों और मैं नहीं समझती कि लोगों में उनसे अधिक प्रेमास्पद व्यक्ति होंगे।"

अघोरनाथ जी विज्ञान के पुजारी थे, और उनमें एक वैज्ञानिक की तन्मयता भी थी। इस तन्मयता से ही, बाद में, सरोजिनी का जीवन प्रभावित हुआ। सरोजिनी ने स्वयं स्वीकार किया है कि 'मेरे पिता में वैज्ञानिक रहस्यों को जानने की जो प्रबल उत्कण्ठा थी, वही मेरे हृदय में सौंदर्योपासना की प्रवृत्ति के रूप में विकसित हुई।'

युरोप से लौटने पर अघोरनाथ जी ने हैदराबाद में निजाम कालेज की स्थापना की और अपना जीवन शिक्षा के प्रसार में लगा दिया। सरोजिनी पिता की सबसे बड़ी सन्तान थीं। अघोरनाथ जी पुत्री को बड़ा

प्यार करते थे और उनकी बड़ी इच्छा थी कि वह भी उसकी भाँति विज्ञान की पण्डिता बने। पिता की देख-रेख में सरोज़िनी की शिक्षा आरम्भ हुई। पिता अँग्रेजी के परम भक्त थे। और उन्होंने आरम्भ से अँग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त करने पर जोर दिया। अंग्रेजी भाषा के अध्ययन की जरा भी उपेक्षा होती और वह देखते तो लड़की को दण्ड भी देते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि बचपन से अंग्रेजी सरोजिनी की मातृ-भाषा के समान हो गई और भारतीय भाषाओं का ज्ञान सदा अधूरा रहा।

सरोजिनी बड़ी प्रतिभाशालिनी कन्या थी। १२ वर्ष की अवस्था में उसने मद्रास की मैट्रिक परीक्षा पास कर ली। इस परीक्षा के कुछ पूर्व ही उनके हृदय में कविता लिखने की भावना पैदा हो चुकी थी। जब वह ११ वर्ष की थीं, तब एक दिन गणित का एक प्रश्न हल कर रही थीं। वह हल नहीं होता था; दिमाग परेशान हो उठा था। बस उसी समय एकाएक उन्होंने कविता लिखना आरम्भ कर दिया। उनके कवित्व का यों आरम्भ होता है। १३ वर्ष की अवस्था में उन्होंने एक लम्बी कविता लिखी, इस कविता का नाम 'झील की रानी' (Lady of the Lake) है। इसमें १३०० पद हैं। यही नहीं, उन्होंने एक छोटा नाटक भी लिखा।

पिता ने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए सरोजिनी को १८९५ ई० में विलायत भेज दिया। तीन वर्ष तक सरोजिनी किंग्स कालेज (लंदन) और बाद में गिर्टन (कैम्ब्रिज) में अध्ययन करती रहीं। फिर स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण उन्हें इटली की यात्रा करनी पड़ी। प्राकृतिक सौन्दर्य और प्रकाश से पूर्ण दान्ते, वर्जिल, राफेल, माइकेल एञ्जलो इत्यादि कवियों और कलाकारों की उस जन्मभूमि ने सरोजिनी को खूब प्रभावित किया और हृदय में जो रस भर रहा था, वह काव्य के रूप में निकलने लगा।

सन् १८९८ ई० के सितम्बर में सरोजिनी हैदराबाद लौट आईं और तीन महीने बाद दिसम्बर में उन्होंने जाति-पाँति का बन्धन तोड़कर हैदराबाद के डाक्टर मेजर एम० जी० नायडू से विवाह कर लिया। यह वह जमाना था जब आज की भाँति समाज-सुधार का पथ सरल और प्रशस्त नहीं हुआ था। पर उन्होंने साहस से काम लिया और तब से बराबर भारतीय नारियों तक जागरण का सन्देश पहुँचाती रही हैं। वह भारतीय नारी आन्दोलन की जन्मदात्री हैं और यह उन्हीं के निरन्तर उत्साह और कार्य का परिणाम है कि वह आज इतना सघटित हो गया है। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि यद्यपि उनकी शिक्षा-दीक्षा पाश्चात्य ढङ्ग से हुई थी, परन्तु उनके हृदय पर पाश्चात्य सभ्यता के दंशन का विष न था। इसलिए उन्होंने सदा भारतीय संस्कृति और भारतीय आदर्श का सन्देश ही भारतीय नारी तक पहुँचाया। वह सीता-सावित्री के आदर्श की पुजारिन थीं और इस आदर्श की प्रेरणा से ही वह युरोप के प्रभाव के ऊपर उठ सकी थीं। भारतीय स्त्रियों के सम्बन्ध में उन्होंने समय-समय पर जो व्याख्यान दिये, उनमें भारतीय मातृत्व के आदर्श का बड़ा ही सुन्दर विवेचन है। वह भारतीय नारी के मूल तक पहुँच सकी थीं, इसलिए उसका अपमान कभी सहन नहीं कर सकती थीं। बङ्गाल के एक गवर्नर ने जब भारतीय स्त्रियों के प्रति कुछ अपमानजनक वाक्य कहे थे तो इन्होंने इतना जबर्दस्त आन्दोलन किया कि लाट साहब को क्षमा माँगनी पड़ी। १९१९ ई० में भारतीय होमरूल लीग डेपुटेशन की सदस्य होकर वह विलायत गईं और वहाँ भारतीय स्त्रियों के मताधिकार के पक्ष में जोरों से आन्दोलन किया। उन्होंने सेलबोर्न कमेटी के सामने स्त्रियों के मताधिकार के पक्ष में जो गवाही दी थी, वह इतनी अच्छी थी कि लार्ड सेलबोर्न ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—

सामाजिक जीवन में प्रवेश

"If I may be allowed to say so, it illuminates our prosoic literature with a poetic touch."

अर्थात् "यदि मुझे कहने दिया जाय तो मैं कहूँगा कि इस (गवाही) ने हमारे शुष्क गद्यात्मक साहित्य को कवित्वमय स्पर्श से आलोकित कर दिया है।"

सरोजिनी के जीवन में साम्प्रदायिकता का आभास भी कहीं नहीं दिखलाई पड़ता। उन्होंने मुस्लिम संस्कृति की निर्भीकता को ग्रहण किया और हैदराबाद में मुसलमान और हिन्दू दोनों समाजों में उनकी सदा एक-सी प्रतिष्ठा रही।

सरोजिनी देवी में पीड़ितों के प्रति सहानुभूति लड़कपन से थी। यही सहानुभूति बढ़कर देश की उस पुकार में परिणत हो गई, जो हम पिछले २७-२८ वर्षों से राष्ट्र के कोने-कोने में ध्वनित एवं प्रतिध्वनित होती सुनते रहे हैं।

राजनीतिक जीवन

सन् १९१३ ई० में मुस्लिम लीग के लखनऊ अधिवेशन में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर उन्होंने एक बड़ा ही प्रभावशाली भाषण दिया था। उसका लोगों पर बड़ा असर पड़ा। १९१५ ई० से आप कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेने लगीं। उनका मानस-क्षितिज बराबर विस्तृत होता गया और उसमें सब जातियों और धर्मों को एक-सा सम्मान प्राप्त हुआ। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए तो उनके हृदय में सदा एक तडप रही। १९१७ ई० के अक्टूबर में पटना में उन्होंने कहा था—"इस विशाल देश में मुसलमान अपना घर बनने को आये थे। वे इसलिए नहीं आये थे कि यहाँ से लूट-मार करके अपने घर चले जाँय। वे इस इस देश में अपना स्थायी घर बनाने आये थे और मातृभूमि को सम्पन्न बनाने के लिए एक नई सन्तति पैदा करना ही उनका उद्देश्य था। तब वे इस भूमि के बच्चों से अलग कैसे रह सकते हैं? क्या इतिहास यही बताता है कि भूतकाल में वे हिन्दुओं

से पृथक रहते थे ? अथवा वह यह बताता है कि एक बार इस देश को अपनी मातृभूमि बना लेने के बाद वे इस भूमि के बच्चे बन गये। हमारे मांस के मांस और खून के खून (बिल्कुल अपने) हो गये।"

इस प्रकार यद्यपि वे देश के सार्वजनिक जीवन में अधिकाधिक भाग लेती जा रही थीं, पर सन् १९२१ ई० तक इस सेवा का ढङ्ग पुराना था। जीवन वैभव और विलासिता के सपने देखना भूला न था और आराम की जिन्दगी थी। १९२१ ई० में जब वह भारतीय स्त्रियों के मताधिकार आन्दोलन के सम्बन्ध में इङ्गलैंड गई थीं तब उनका जीवन आज के जीवन से बिल्कुल भिन्न था। वह इङ्गलैंड में अपने वस्त्रपरिधान और कलापूर्णता के लिए प्रसिद्ध थीं। उनकी कविताओं ने उन्हें ब्रिटेन के विद्वत्समाज में सम्मानित किया। वह जहाँ जातीं, उनका स्वागत होता। पश्चिमी निर्भीकता, पूर्वी रहस्यमयता और शालीनता से उनका जीवन परिपूर्ण था। काव्य ने रङ्गों के मिश्रण की स्वाभाविक प्रवृत्ति प्रदान की थी, अतः किस समय कौन सी साड़ी पहनने से वातावरण और स्थिति के साथ सामञ्जस्य स्थापित होगा, इसे वह खूब समझती थीं। ब्रिटिश राजनीति के शक्तिमान नेताओं पर उनका प्रभाव था और राज-कुटुम्ब तक उनकी ख्याति पहुँच चुकी थी। जब वह इङ्गलैंड से भारत के लिए रवाना हुईं तो उनके पास लन्दन और पेरिस की सर्वोत्तम सिल्क की साड़ियों का संग्रह था।

पर भारत के आकाश पर घटाएँ छा रही थीं। अमृतसर के हत्या-कांड ने राष्ट्र की आत्मा को ठेस मारकर जगा दिया था और गांधीजी के नेतृत्व में वह आत्म-विश्वास के प्रकाश से जगमग-जगमग हो उठी थी। असहयोग आन्दोलन का सन्देश सर्वत्र गूँज रहा था। ज्यों-ज्यों जहाज बम्बई बन्दर की ओर अग्रसर हो रहा था, सरोजिनी के हृदय में सङ्घर्ष बढ़ता जा रहा था। वह यह निश्चय न कर पाती थीं कि लिबरलों के साथ काम करना चाहिए या गांधीजी के साथ। गांधीजी

के प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी। बम्बई में उतरते-उतरते उन्होंने गांधी जी को आत्मार्पण करने का निश्चय कर लिया। एक दिन पहले तक उनका हृदय-पटल किसी दल-विशेष की रेखा से बिल्कुल शून्य था। पर उनके-जैसा गहरी भावनाओं की रानी लिबरलों के शुष्क तर्क-युद्ध से आकर्षित न हो सकती थी। गांधीजी के आन्दोलन में वे सब तत्व वर्तमान थे जो कवि की आत्मा को छूते हैं। उनकी भाव-प्रवणता के लिए उसमें पर्याप्त रस था। उसमें उस साहसिकता के लिए गुञ्जाइश थी जिसने सदा नारी-हृदय का सम्मान प्राप्त किया है। जिस नारी ने बम्बई की सड़कों पर जब्त पुस्तकें बेचकर कानून तोड़ा था और १९२० ई० में पंजाब की दुर्घटनाओं के सिलसिले में भाषण करते हुए कहा था—"My sisters were stripped naked, they were flogged; they were outraged." (मेरी बहनें नङ्गी की गईं; उन्हें कोड़े लगाये गये और उनकी आबरू उतार ली गई)—और जिसपर भारत-सचिव का आसन डोल उठा था और उन्होंने इन शब्दों को वापस लेने पर जोर डाला था, पर तेजस्विनी सरोजिनी ने निर्भीकतापूर्वक दोहराकर उनकी पुष्टि की थी, वह शुष्क बहस-मुबाहसे से कैसे तृप्त हो सकती थीं?

१९२२ ई० में कालीकट में भाषण करते हुए उन्होंने तीव्र शब्दों में मोपलों पर सरकार-द्वारा किये गये अत्याचार का विरोध किया।

एकता के लिए प्रयत्न

इस भाषण पर मद्रास-सरकार चिढ़ गई। उसने धमकी और चेतावनी दी पर सरोजिनी पर ऐसी धमकियों का क्या प्रभाव पड़ सकता था? ११ मार्च १९२२ को महात्मा गांधी को राजद्रोह के अभियोग में ६ वर्ष की सजा हुई। महात्मा जी ने जेल जाते समय सरोजिनी से कहा था—"I entrust the Unity of India into your hands." अर्थात् "भारत की एकता मैं तुम्हारे हाथों सौंपता हूँ।" सरोजिनी ने

सिर झुकाकर इस थाती को स्वीकार किया। १९२१ ई० के बम्बई के दङ्गों में अपने प्राणों को खतरे में डालकर उन्होंने जो साहसिक कार्य किया था, उसे कौन भूल सकता है। पर अब तो उन्होंने मानों एकता की धूनी रमा ली और सर्वत्र घूम कर इस एकता के सन्देश का प्रचार करने लगीं। १८ मार्च को अहमदाबाद में भाषण करते हुए, गांधीजी का स्मरण कर उन्होंने विह्वल स्वर में कहा था—'वे उन्हें पृथ्वी के अन्तिम छोर तक ले जा सकते हैं, पर उनकी मंजिल उनके देश-बन्धुओं के हृदय में ज्यों की त्यों अटल है—उन देश-बन्धुओं के जो उनके अद्वितीय स्वप्नों और कर्मों के उत्तराधिकारी तथा पोषक हैं।"

रात-दिन दौरा करते-करते उनका स्वास्थ्य खराब हो गया। पर आत्मा में जो ज्वाला जल रही थी वह शान्त न हुई। इसलिए जब विवश होकर स्वास्थ्य-सुधार के लिए लङ्का जाना पड़ा, तब भी वहाँ उन्होंने भारतीय जागरण का सन्देश पहुँचाने में जी-तोड़ परिश्रम किया। 'भारतीय पुनरुत्थान' पर उनका एक व्याख्यान सुनकर वहाँ की राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष श्री एच० जे० सी० पेरीरा ने कहा था—"जिस प्रकार श्री रवीन्द्रनाथ भारतीय पुनरुत्थान के पुरुष-कवि हैं, उसी प्रकार सरोजिनी उसकी नारी कवि हैं।"

कौंसिल-प्रवेश का विरोध

महात्मा गांधी के जेल जाने के बाद असहयोग आंदोलन शिथिल पड़ गया। युद्ध की यह एक बिल्कुल नई 'स्ट्रेटेजी' (कौशल) थी। हमारे नेताओं के हृदय में वह उतर न सकी थी। सिर्फ गांधीजी के आश्चर्यजनक आत्मविश्वास ने उनको मुग्ध कर लिया था। उनके जाते ही नशा उतर गया। लोगों की समझ में न आता था कि क्या किया जाय। अन्त में सविनय अवज्ञा के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए कांग्रेस की ओर से एक उपसमिति की नियुक्ति हुई। श्रीमती सरोजिनी भी उसकी सदस्या थीं, पर बीमारी के कारण इसमें शामिल

न हो सकीं। नवम्बर १९२१ ई० में कमेटी ने अपनी रिपोर्ट पेश की। कमेटी का असली काम तो सविनय अवज्ञा की जाँच करना था, पर उसने अपना प्रमुख विषय बना लिया कौंसिल-प्रवेश को। सरोजिनी इस कौंसिल-प्रवेश की तीव्र विरोधिनी थीं। उस समय, जब अविश्वास की आँधी मोतीलालजी और देशबन्धु को उड़ा ले गई, तब भी नारी के नित्य विश्वास को लिये हुए देवी नायडू उस पर अचल रहीं। पर उन्होंने महासमिति के निर्णय का क्रियात्मक विरोध नहीं किया। वह नहीं चाहती थीं कि इसके कारण फूट हो—यद्यपि जो होना था हुआ ही। अन्त तक बराबर कौंसिलों के सम्बन्ध में उनकी वही नीति रही यद्यपि कभी उन्होंने इसको लेकर कोई तीव्र विरोध नहीं खड़ा किया।

प्रवासी भारतीयों के कष्टों को दूर करने के लिए देवी सरोजिनी सदैव प्रयत्न करती रहीं। नेताओं में गांधीजी, श्रीनिवास शास्त्री, श्री एण्डरूज और श्रीमती सरोजिनी नायडू इन चार ने प्रवासी भारतीयों को कभी नहीं भुलाया। शर्त-बन्दी कुली प्रथा के विरुद्ध १९१७ ई० में सरोजिनी ने जबर्दस्त आंदोलन किया था। इसी वर्ष जनवरी में एक बड़ी सभा में प्रवासी बहिनों के साथ किये गये पाशविक व्यवहारों को लक्ष्य करके उन्होंने कहा था—

प्रवासी भारतीयों की सेवा

"Let the beloved of your hearts blot out the shame that your women have suffered abroad. The words that you have heard tonight must have kindled within you a raging fire. Men of India, let that be the funeral pyre of the indenture system. Words from me tonight! No, tears from me tonight, because I am a woman and though you may feel dishonour that is offered to

your mothers and sisters, I feel, the dishonour that is offered to me is the dishonour to my sex."

अर्थात् "तुम अपने हृदय-रक्त से उस अपमान को धो डालो, जो तुम्हारी स्त्रियों को विदेशों में सहना पड़ा है। आज तुमने जो शब्द सुने हैं, उन्होंने अवश्य तुम्हारे हृदयों में एक भयङ्कर रोषाग्नि प्रज्वलित कर दी होगी। भारत के मर्दों! इस आग को शर्तबन्दी कुली-प्रथा की चिता बना दो। आज मुझसे शब्दों की आशा रखते हैं! नहीं, आज मेरी आँखों से आँसू निकलने—मेरे रोने—का समय है; क्योंकि मैं नारी हूँ, और यद्यपि तुम अपनी माँ-बहनों का अपमान अनुभव कर रहे होगे, पर मैं तो अपने अपमान को अपनी जाति के अपमान के रूप में अनुभव कर रही हूँ।"

सासून अस्पताल पूना से, बीमारी की हालत में ही, महात्मा गांधी ने उपनिवेशों के प्रवासी भारतीयों की दर्दनाक हालत के सम्बन्ध में एक वक्तव्य प्रकाशित कराया था। इस वक्तव्य में बताये अत्याचारों का वर्णन पढ़कर सरोजिनी का मातृ-हृदय तड़प उठा। केनिया-प्रवासी भारतीयों के निमंत्रण पर वह वहाँ गईं। उन्होंने वहाँ की अवस्था देखी और भिन्न-भिन्न प्रांतों का दौरा करके भारतीयों को अपने कर्तव्य के प्रति सजग किया। उनके दौरे का यहाँ तक प्रभाव पड़ा कि प्रवासी भारतीयों ने असहयोग आरंभ कर दिया और पोल टैक्स देने से इन्कार कर दिया। उनकी वाणी ने हजारों भारतीयों में आत्म-विश्वास की आग पैदा कर दी। प्रवासी भारतीयों ने अपनी श्रद्धांजलि भेंट करने के लिए 'दक्षिण अफ्रीका की भारतीय कांग्रेस' के मोम्बासा अधिवेशन के अध्यक्ष पद पर उन्हें बैठाया। इसी स्थान से उन्होंने प्रवासी भारतीयों को यह उत्साहप्रद संदेश दिया था—"तुम एक स्वर से सरकार को यह उत्तर दो कि यद्यपि प्राकृतिक जगत् में नदियाँ पीछे नहीं बहती हैं, पर हम तुम्हारे निर्णय की नदी को पीछे लौटाकर छोड़ेंगे।" केनिया

के बाद दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों का निमन्त्रण भी उन्होंने स्वीकार किया। उस समय वहाँ नेटाल आर्डिनेंस बिल के विरुद्ध आंदोलन हो रहा था। सरोजिनी ने जगह-जगह दौरा करके लोगों को दृढ़ रहने और बराबर आंदोलन करते रहने का उपदेश किया। जहाँ-जहाँ यह गईं, उन्होंने इस समस्या पर ऐसा प्रामाणिक और ओजस्वी भाषण किया कि गोरों को भी भारतीयों के पक्ष के औचित्य को स्वीकार करना पड़ा। वह जहाँ जाती थीं, वहीं लोगो में एक बिजली पैदा कर देती थीं। उन्होंने जेनरल स्मट्स, कर्नल क्रासवेल इत्यादि गोरे अधिकारियों से भी भेंट की और बड़े जोरों के साथ भारतीय पक्ष को उनके सामने उपस्थित किया। सर्वत्र उनका बड़े उत्साह से स्वागत हुआ। उस समय उन्होंने भारत की ओर से दक्षिण अफरीका को यह संदेश दिया था—"संभव हुआ तो भारत ब्रिटिश साम्राज्य में रहेगा और आवश्यकता हुई तो वह उससे बाहर होजायगा औरइसका निर्णय दक्षिण अफ्रीका के अधीनहै।"

दक्षिण अफ्रीका से वह रोडेशिया गईं। वहाँ भी उन्होंने प्रवासी भारतीयों की अधिकार-रक्षा के लिए पूर्ण प्रयत्न किया। जब १९२४ ई० की जुलाई में वह भारत लौटीं तो बम्बई बन्दर पर उनका अपूर्व स्वागत हुआ। १९२९ में उन्होंने पूर्व अफ्रीका की भी यात्रा की।

देश के जागरण के लिए देवी सरोजिनी जो काम कर रही थीं, उसने राष्ट्र की लक्ष-लक्ष जनता में उनके लिए अपूर्व सम्मान का भाव उत्पन्न कर दिया था। यहाँ तक कि महात्मा गांधी की प्रबल इच्छा थी कि १९२४ ई० की बेलगाँव-कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर उन्हें सुशोभित किया जाय। पर गांधी जी इन्हीं दिनों जेल से छूटे थे और राष्ट्र उनके नेतृत्व का लाभ उठाने को व्यकुल था। देवी सरोजिनी भी गांधीजी को ही राष्ट्रपति बनाने के पक्ष में थीं, इसलिए उस साल उनको यह सम्मान प्राप्त न हो सका। परन्तु १९२५ ई० की कानपुर कांग्रेस ने उनको वह

कांग्रेस की अध्यक्षता

सम्मान दिया जो भारतीय राष्ट्र का सर्वोच्च गौरव है।

कांग्रेस के अध्यक्ष-स्थान से उन्होंने जो भाषण किया, वह भी उनके जीवन की सर्वग्राही प्रवृत्ति और साधना के अनुकूल था। सीधा-सादा और संक्षिप्त भाषण था। इनमें उसी सन्देश की व्याख्या थी, जो अध्यक्षा निर्वाचित हो जाने के पश्चात् अक्तूबर में उन्होंने देश के नाम दिया था। वह सन्देश यह है—

"मैं एक स्त्री ठहरी, इसलिए मेरा कार्यक्रम सीधा-सादा, गृहस्थी से सम्बन्ध रखनेवाला है। मैं तो केवल यह चाहती हूँ कि भारत माता अपने घर की एक बार फिर सच्ची स्वामिनी बन जाय, उसके अपार साधनों पर उसी का एकमात्र प्रभुत्व हो और आतिथ्य-सरकार की सारी क्षमता भी उसी के हाथ में रहे। भारतमाता की आज्ञाकारिणी पुत्री की हैसियत से मेरा काम यह होगा कि अपनी माता का घर ठीक करूँ और उन शोचनीय झगड़ों का निबटारा कराऊँ जिनके कारण उसका पुराना संयुक्त पारिवारिक जीवन, जिसमें अनेक जातियाँ और धर्म सम्मिलित हैं, भङ्ग न हो जाय। मेरा यह भी काम होगा कि उसकी निम्न से निम्न और बलवान सन्तान को, उसकी पोष्य सन्तान को और उन सब अतिथियों और अपरिचितों को, जो उसके द्वार के भीतर मौजूद हैं, एक समान अधिकार प्राप्त हों!"

कैसा अच्छा आदर्श था। इसमें राष्ट्र का मातृत्व बोल रहा है। इसमें नारी का व्यापक, पर विशिष्ट, दृष्टिकोण हम देखते हैं।

और राष्ट्र के अध्यक्षासन पर बैठकर अपनी मृदुवाणी में उन्होंने जो कुछ कहा, वह शिथिल हो रही राष्ट्र की आत्मा को आशा और उत्साह का एक सन्देश था। उसे उन्हीं के शब्दों में यों संक्षिप्त किया जा सकता है—

"In the battle for liberty fear is the one unforgivable treachery and despair the one unf-

orgivable sin."

[अर्थात् "स्वतन्त्रता के युद्ध में भय ही एक मात्र अक्षम्य अपराध है, और निराशा एक मात्र अक्षम्य पाप।"

तब से अन्त तक बराबर सरोजिनी देवी ने इस आदर्श-वाक्य का अनुसरण किया। १९२९ ई० में उन्होंने अमेरिका की यात्रा की और वहाँ जो भाषण उन्होंने किये, उनका अमेरिकन जनता पर अपूर्व प्रभाव पड़ा। 'भारत का संदेश' पर उन्होंने जो भाषण किया था वह संसार की सर्वश्रेष्ठ वक्तृताओं में स्थान पायेगा।

१९२९ के अन्त में लाहौर में कांग्रेस हुई। लम्बी प्रतीक्षाओं के बाद राष्ट्र ने पूर्ण स्वतन्त्रता के ध्येय को ग्रहण किया। १९३० के साथ सत्याग्रह का वह भूचाल आया, जिससे भारत में ब्रिटिश सरकार की शक्तियों की अच्छी टक्कर हुई। २६ जनवरी को 'स्वतन्त्रता की प्रतिज्ञा देश के कोने-कोने में दोहराई गई। ३ मार्च को महात्मा गांधी ने वायसराय को 'अल्टिमेटम'—चुनौती—भेजा और १० मार्च को उनकी वह दाँडी-यात्रा शुरू हुई, जो इतिहास में अमर रहेगी। ६ अप्रैल को उन्होंने नमक कानून भङ्ग किया। फिर तो सम्पूर्ण राष्ट्र में सविनय अवज्ञा की लहर आ गई। गिरफ्तारियों और पुलिस की डण्डेबाजी से देश में एक तूफान छा गया। सरकार असली रूप में प्रकट हुई। १४ अप्रैल को राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल गिरफ्तार हुए और ५ मई को महात्माजी कराडी (गुजरात) में आधी रात के समय गिरफ्तार करके यरवदा जेल भेज दिये गये।

उस तूफानी जमाने में सरोजिनी कैसे चुप बैठ सकती थीं। अब्बास तय्यबजी की गिरफ्तारी के बाद धरासणा नमक डिपो पर धावा मारने का नेतृत्व उन्होंने किया। २७ घंटे तक सड़क पर, उस चिलकती धूप में भी वह बैठी रहीं। डिवीजनल कमिश्नर ने भोजन तो क्या पानी भी उन्हें न पीने दिया। १६ मई को वह गिरफ्तार करली गईं। उनकी गिरफ्तारी

मानो भारतीय नारी के लिए एक चैलेञ्ज थी, जिसे उसने हँसते हुए स्वीकार किया और देश ने देखा कि युग-युग से उपेक्षित कही जाने वाली नारी आज मातृभूमि की रक्षा के लिए सब प्रकार के त्याग करने का निश्चय करके मैदान में खड़ी है।

मतलब यह कि भारतीय पुनर्जागरण की प्रत्येक प्रवृत्ति से उनका घनिष्ट सम्बन्ध रहा है और वह सदा उसमें आगे बढ़ती एवं दूसरों को बढ़ाती हुई चलती रहीं। इन वर्षों में प्रायः वह कांग्रेस कार्यकारिणी की सदस्या रहीं। इधर अपने स्वास्थ्य की खराबी के कारण वह अधिक काम नहीं कर पाती थीं। अगस्त, १६४२ में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के अन्य सदस्यों के साथ वह भी गिरफ्तार कर ली गई थीं। और लगभग दो वर्ष बाद स्वास्थ्य खराब होने के कारण जेल से बिना शर्त्त मुक्त करदी गईं। मुक्त होने के बाद जो वक्तव्य उन्होंने दिया उसने राष्ट्र के शिथिल मानस में उत्साह की तरंगें बहा दीं और कांग्रेस के प्रति फैला भ्रम दूर हो गया।

निरन्तर कार्य करते रहने और खान-पान में संयम न रख सकने के कारण उनका स्वास्थ्य इधर अर्से से खराब हो गया था। १६४५ ई० में एक पुत्र के देहान्त से भी उन्हें चोट पहुंची। पर कर्तव्यवश उन्होंने यू० पी० की गवर्नरी स्वीकार की। वह विश्वभारती की उपाध्यक्षा भी थीं और समस्त एशियाई राष्ट्रों का जो सम्मेलन १६४८ ई० में नई दिल्ली में हुआ था उसके संगठन में उन्होंने प्रमुख भाग लिया था। गांधीजी की मृत्यु से उनके भावुक हृदय को सबसे ज्यादा धक्का लगा। शरीर घुलता गया। इसी बीच सिर में चोट लगने के कारण उन्हें अनिद्रा रोग हो गया। १३-१४ दिन बड़े कष्ट से बीते। कभी-कभी तो सिर दर्द असह्य हो जाता था। २ मार्च १६४६ को अनेक दिन जागने के बाद, वे सदा के लिए सो गईं।

[३]

काव्य की अर्चना

जब हम भारतीय अंग्रेजी काव्य की दुनिया में प्रवेश करते हैं तो दो ऐसी नारी मूर्तियाँ मिलती हैं जो जीवन की मधुरता में स्वयं ही डूबी हुई हैं। और जो कुछ इङ्गित करती हैं उसमें एक अपूर्व सौन्दर्य खेलता हुआ दिखाई पड़ता है। एक हैं तरुदत्त; दूसरी हैं सरोजिनी नायडू। दोनों स्वर्ग की वीणावादिनी हो चुकी हैं।

ऐसा नहीं कि इसके बाद नारी-काव्य का स्रोत सूख गया हो। श्रीमती नीलिमा देवी और श्रीमती शाहनवाज ने आज भी वह क्रम जारी रखा है, पर न केवल स्त्रियों वरं समस्त स्त्री-पुरुष भारतीय कवियों में कोई ऐसा नहीं जिसकी कविता ने भारत की आत्मा को दुनिया के सामने इतने मधुर, इतने सुन्दर रूप में रक्खा हो, जितने सुन्दर रूप में सरोजिनी ने रक्खा। उनकी अनेक कविताएँ 'पोस्ट ग्रेजुएट' श्रेणियों में पढ़ाई जाती रही हैं। अंग्रेजी भाषा-भाषी साहित्य-रसिकों को उनकी कविता ने मुग्ध कर लिया है। बहुतों की सम्मति में तो वह आधुनिक संसार की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री हैं।

विशुद्ध भाषा, निर्दोष पद-मैत्री, अनिन्द्य सौन्दर्य और मधुरतम रागिनी सरोजिनी देवी की कविता की विशेषताएँ हैं। जब वह लिखतीं थीं तो वेदना-विह्वल हो लिखती थीं। स्वप्रसूता भावनाओं और अन्तरतम के उच्छ्वासों की निर्झरिणी उनकी कविता में दिखाई पड़ती है। उनकी रचनाओं में उनके हृदय की सर्वग्राही सहानुभूति और वेदना फूटकर बह निकली है। अपनी पुस्तक 'भारतीय स्त्रियों की चुनी रचनाएँ' (Select Poems by Indian Women) की भूमिका में मार्गरेट मैकनिकोल ने लिखा है कि "सरोजिनी की कविताओं में सम्पूर्ण विषमताओं को मिटाकर स्वर-सामञ्जस्य लानेवाला प्रवाह है।" डबल्यू० टी० स्टेड ने सरोजिनी की 'दि गोल्डेनथ्रेस-

होल्ड' (सुनहरी देहरी) नामक काव्य पुस्तक पढ़कर कहा था—"यह छोटी-सी पुस्तक उन निन्दकों को सदैव के लिए चुप कर देगी, जो कहा करते हैं कि स्त्रियाँ कविता नहीं कर सकतीं।"

सरोजिनी की कविताएँ श्रमपूर्वक, जबर्दस्ती, लिखी गई रचनाएँ नहीं; वे हृदय के अत्यन्त गूढ़ प्रदेश से निर्गत हुई हैं। वे न तो धन के लिए लिखती थीं, न यश के लिए। जब भावोद्रेक होता उनमें नारी की पावन कोमलता और वेदना जाग उठती, तभी कुछ लिख जाता था। आरंभ में जब उन्होंने कविता लिखनी शुरू की, वह अपने ही तक उसे रखना चाहती थीं। कई मित्रों ने अनुरोध किया कि 'प्राइवेट सर्कुलेशन' के लिए कविताएँ छपाई जायँ। इसी समय उनकी कुछ कविताएँ भारत के एक भूतपूर्व वायसराय के देखने में आईं। वह उन पर मुग्ध हो गये और उन्होंने भी उनके प्रकाशन की आवश्यकता का समर्थन किया। इस प्रकार मित्रों के अनुरोध के कारण सरोजिनी को ये कविताएँ प्रकाशित करनी पड़ीं।

सरोजिनी की कविता का सबसे बड़ा गुण उनकी सङ्गीतमयता है। अपने शब्द-चित्रों के चारों ओर संगीत का ऐसा आकर्षण-जाल वह बुन देती हैं कि मन मुग्ध हो जाता है। उनकी मोती, वसन्त का आवाहन, घनश्याम और डोलीवाले शीर्षक कविताएँ पढ़ते-पढ़ते आँखें मधुर भार से मुँदने लगती हैं। उनकी 'भाग्य को चुनौती' तथा 'जागो' शीर्षक कविताएँ मन में यौवन का साहस उत्पन्न करती हैं।

सरोजिनी की कविता में हम एक बात और देखते हैं—वह यह कि उनका मानवीय आनन्द प्रकृति की पार्श्वभूमि पर खिलता है। उनके लिए प्रकृति मानव-सापेक्ष और मानव तथा उसके व्यक्तित्व के प्रति भावों से भरी हुई है। इस विषय में वह हिन्दी के श्रेष्ठ कवि स्व० प्रसाद जी की याद दिलाती हैं।

उन्होंने समय-समय पर जो कविताएँ लिखीं, उनके तीन संग्रह प्रकाशित हुए हैं। १ The Golden Threshold (सोनहरी-देहरी) २ The Bird of Time (काल-विहङ्गम) ३ Broken Wings (टूटे हुए डैने)। इनमें भारतीय आशाओं, अभिलाषाओं और आकांक्षाओं का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। इन कविताओं में अपूर्व माधुर्य और रस है। भारतीय संस्कृति की दृष्टि से इन रचनाओं का बड़ा मूल्य है। इनके द्वारा कितने ही विदेशी हृदयों तक भारतीय आत्मा की संवेदनशीलता का संदेश पहुँचा है।

यद्यपि उनकी कविताओं में प्रेम का आध्यात्मिक रङ्ग, प्रकृति का वैभव और दिव्यानन्द का सन्देश मौजूद है परन्तु उनके प्रेम-काव्य में ही उनका सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधित्व हुआ है। तीव्र भावावेश और कल्पना तथा संगीत ने इन कविताओं को एक अपूर्व सौन्दर्य प्रदान किया है। थोड़ी ही कविताएँ उनके इस प्रेम-गीत के भावावेश के सामने ठहर सकेंगी—

Cover mine eyes, O my Love!
Mine eyes that are weary of bliss
As of light that is poignant and strong;
O, silence my lips with a kiss
My lips that are weary of song!
Shelter my soul, O my Love!

["हे मेरे प्रियतम ! मेरी इन आँखों को, जो तीखे प्रकाश की भाँति, आनन्द में थकी हुई हैं, तुम ढक लो—मेरे अधरों को, चुम्बन से चुप कर दो—मेरे अधरों को, जो संगीत से थक गये हैं। हे मेरे प्रिय ! मेरी आत्मा को आश्रय प्रदान करो।"]

अंग्रेजी कविता के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ ने बड़ी प्रसिद्धि पाई, पर उनके काव्य में भारत की आध्यात्मिकता बोलती है। वह गूढ़ और

कहीं-कहीं जटिल हैं। सरोजिनी में भारत का भावात्मक हृदय बोलता है। दोनों में वही अन्तर है जो पुरुष और नारी में है। सरोजिनी ने विषय भी वे लिये हैं, जो भारत के लक्ष-लक्ष प्राणों में युग से बसे चले जाते हैं। उनकी कविता की भाव-धारा बिल्कुल भारतीय है। देखिए 'चम्पक-कलिका' (Champak Blossoms) नामक कविता में वह कहती हैं—

Only to girdle a girl's drak tresses,
You fragrant hearts are un-curled
Only to guard the vernal breezes
Your fragile stars, are unfurled.
You make no boast in your purposeless beauty
To serve or profit the world,
Yet, 'tis of you into the moonlit ages
That maidens and minstrels sing.

"कुमारियों की कृष्ण वेणी को बाँधने के लिए ही तुम्हारे सुगन्ध-पूर्ण हृदय खुलते हैं। वासन्तिक पवन की रक्षा के लिए ही तुम्हारे मृदु पटल अनावृत होते हैं। तुम अपने निरुद्देश्य सौंदर्य से विश्व की सेवा या कल्याण करने की कोई आत्म-श्लाघा नहीं करतीं। फिर भी यह तुम हो, जिसका गान चन्द्रज्योतित युगों में कुमारियाँ और बन्दीजन करते हैं।"

इसी प्रकार जेबुन्निसा के सौन्दर्य-वर्णन में भी कवि ने भारतीय अलङ्कारिक काव्य-प्रणाली का अनुसरण किया है—

When from my cheeks I lift my veil
The roses turn with envy pale,
And from their pierced hearts rent with pain
Send forth their fragrance like a wail.

[‘जब मैं अपने गालों पर से घूँघट उठाती हूँ तो गुलाब ईर्ष्या-वश पीले पड़ जाते हैं, और उनके क्षत-विक्षत एवं वेदना-व्यथित हृदयों से, रुदन की भाँति, उनका सौरभ निकलता है।”]

सरोजिनी का एक गीत बड़ा लोकप्रिय है। वह विश्व-साहित्य में स्थान पाने योग्य है। अंग्रेजी साहित्य के विशाल काव्य-भण्डार में भी इसकी जैसी गति, लय, सङ्गति और मृदुता से परिपूर्ण कविताएँ थोड़ी ही होंगी। इस कविता का नाम ‘पालकी-वाहक’ या ‘डोलीवाले’(the palanquin bearers) है। नववधू विदा होकर ससुराल जा रही है। कहारों का हृदय इस सौन्दर्यराशि को ढोते हुए आनन्द से थिरक रहा है। वे चलते हुए गाते जा रहे हैं। उनके गान में प्रति पग पर ताल-सुर की असाधारण मृदुता और कोमलता है। देखिए—

Lightly, O lightly we bear her along,
She sways like a flower in the wind of our song,
She skims like a bird on the foam of a stream,
She floats like a laugh from the lips of a dream,
Gaily, O gaily, we glide and we sing,
We bear her along like a pearl on a string.

[“हम उसे हलकेपन के साथ ले जा रहे हैं। वह हमारे सङ्गीत-समीर में फूल की भाँति हिल रही है। वह सोते के फेन पर पक्षी की भाँति बहती चली जा रही है। वह स्वप्न के अधरों से निकलनेवाली हँसी के समान तैर रही है। आनन्द में, आनन्द में हम फिसलते और गाते जा रहे हैं। हम उसे तार पर झूलते हुए मोती की भाँति लिये जा रहे हैं।”]

ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं, गीत की गति और लय में भी अधिक प्रवाह आता जा रहा है—

Softly, O softly we bear her along,
She hangs like a star on the dew of our song,

She springs like a beam on the brow of the tide,
She falls like a tear from the eyes of a bride,
Lightly, O lightly we glide and we sing,
We bear her along like a pearl on a string.

["हम उसे मुलायमियत से—मृदु मन्दगति से—ले जा रहे हैं। हमारे संगीत के ओस-बिन्दु पर वह एक तारिका की भाँति झूल रही है। वह ज्वार की भ्रू-भंगिमा पर एक किरण की भाँति नाच उठती है। वह नववधू की आँख से ढुलकते आँसू के समान गिर पड़ती है। और हम लोग हलके-हलके गाते और फिसलते-से चले जा रहे हैं—हम उसे तार पर झूलते हुए मोती की भाँति लिए जा रहे हैं।"]

प्रेम-तत्व में गम्भीरता और तीक्ष्ण दृष्टि की भी कमी नहीं है। उनकी आत्मा उनकी खोज में है जिसे पाकर ही वह सन्तुष्ट होगी। इस खोज और पुकार में स्वभावतः अध्यात्मिक स्पर्श है—

But in the desolate hour of night when
An ecstasy of starry silence sleeps
O'er the still mountains and the soundless deeps
And my soul hungers for thy voice, O then,
Love, like the magic of melodies,
Let thy soul answer mine across the seas.

["किन्तु आधी रात की सूनी घड़ियों में, जब तारों की शांति का आनन्द शांत पर्वतों और नीरव समुद्रों पर सोने लगता है और मेरी आत्मा तुम्हारा कण्ठ-स्वर सुनने के लिए व्याकुल हो उठती है तब हे मेरे प्रियतम! संगीत-प्रवाह के जादू की भाँति, समुद्र के उस पार से तुम मेरी आत्मा की पुकार का उत्तर देना।"]

इसी प्रकार उनकी निम्नलिखित कविता में प्रेम का रूप कितना मार्मिक है—

You haunt my waking like a dream
My slumber like a moon,
Pervade me like a musky scent,
Possess me like a tune,
What war is this of thee and me?
Give o'er the wanton strife,
You are the heart within my heart,
The life within my life.

["तुम जागरण में स्वप्न और नींद में चाँद की भाँति मेरे पीछे लगे हुए हो। मृग-सौरभ की भाँति मुझमें व्याप्त हो जाते हो और एक रागिनी की भाँति मुझे अवश कर देते हो। यह 'मैं' और 'तुम' का— यह मेरा तुम्हारा—संघर्ष कैसा है? इस निरर्थक झगड़े को छोड़ दो; तुम मेरे हृदय के हृदय और जीवन के जीवन हो।"]

ऐसा नहीं कि केवल प्रेम-काव्य में ही उन्होंने सफलता प्राप्त की हो; उनकी सहानुभूति व्यापक और विस्तृत थी। उन्होंने अपने में माता का विकास किया है और अपने अञ्चल के नीचे शत-शत बच्चों को शान्ति दी है। उनके काव्य की यह भी एक बड़ी विशेषता है कि जसमें छन्दों का चुनाव विषय के अनुसार हुआ है। उनकी कविता 'नींद का एक गीत' (The Song of Sleep) में संगीत और माधुर्य का कैसा मिश्रण है—

From groves of spice,
O'er fields of rice,
Athwart the lotus stream,
I bring for you
Aglint with dew
A little lovely dream.

[“सुवासित कुञ्जों से, धान के खेतों के ऊपर कमल-श्रोत के उस पार से मैं तुम्हारे लिए ओस-बिंदुओं से गुँथा हुआ एक छोटा सुन्दर स्वप्न लाई हूँ।”]

× × +

करुण रस की कविताओं में सरोजिनी का ‘अनाथ बालक’ (The Lonely Child) सबसे अच्छी कविता है। इसमें रस का श्रेष्ठ अवतरण हुआ है। इसकी कुछ लाइनें देखिये—

Silver star! will you be my mother,
Will you stay with me and kiss me,
in the black night when I cry?
Laughing wind! I want you for a brother
Will you play with me and tell me
story of the sea and sky?
Sometimes O wind, you know I am so lonely;
O star, I am afraid of sounds and creeping
shadows on the wall;
God kisses and loves little children
Only I wish that he had made someone
to love me and to hear me call.

[“हे रजत तारिका, क्या तुम मेरी माँ बनोगी? क्या तुम मेरे साथ ठहरोगी, और अँधेरी रात में जब मैं रोऊँ तो मेरा चुम्बन लोगी? हँसते हुए समीरण! मैं तुम्हें भाई के रूप में चाहता हूँ। क्या तुम मेरे साथ खेलोगे और मुझे सागर और आकाश की कहानी सुनाओगे? हे समीर तुम जानते हो, कभी-कभी मैं कितना अकेला होता हूँ। ऐ तारिका! मैं दीवार पर चलती हुई छाया तथा शब्दों से डर जाता हूँ। सुना है, ईश्वर छोटे बच्चों को प्यार करता और उनका चुम्बन लेता है। मैं

इतना ही चाहता हूँ कि उसने मुझे प्यार करने और मेरी पुकार सुनने के लिए भी किसी को बनाया होता।"]

इसके बाद भी कुछ लाइनें हैं, वे मुझे याद नहीं हैं पर इतना पर्याप्त है। इसे गाते-गाते आँखें भर आती हैं और रस से हृदय पूर्ण हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सरोजिनी की कविता में संगीत, कल्पना, सहानुभूति और प्रवाह का सुन्दर मिश्रण है।

---

[४]

जीवन का तत्व

इतनी बात कर लेने के बाद हमें अब सरोजिनी के जीवन को सामने रख कर बारीकी से देखना है और उसे मथ कर मक्खन निकाल लेना है। इन फुटकर बातों के बीच हमें उनके जीवन की केन्द्रीय धारा वा केन्द्रीय सत्य को पा लेना है। यह अभी तक हमने जो कुछ लिखा है, वह स्थूल सरोजिनी की रूप-रेखा भर है। इन रेखाओं के भीतर उसका प्राण कहाँ है, और उसकी आत्मा क्या है, यह जान लिये बिना मानो हमने सरोजिनी को नहीं देखा और नहीं पाया।

इस अध्ययन के ऊपर जो शीर्षक है ('सरोजिनी नायडू : आधुनिक भारतीय स्त्रीत्व की प्रतिनिधि') वह कुछ यों ही—'ऐट रएडम'—नहीं है। एक शब्द में वह देवी नायडू के जीवन का तत्वार्थ है, और इस 'मैग्नीफाइंग ग्लास' से देखें तो बहुत सी बारीक रेखाएँ स्पष्ट दिखाई पड़ेंगी।

सरोजिनी के जीवन में हम नारी की त्रिमूर्ति—कन्या, रमणी और माता के दर्शन करते हैं। उनका जीवन इसी क्रम से उठा भी है।

आरम्भ में उसमें कन्या की चञ्चलता, शरारत, सरलता और उठान है; मध्य में उसमें रमणी का यौवन-प्रवाह, रस और प्रेमलता है और उत्तर जीवन में, माता को प्रकट और विकसित होते हुए देखा जा सकता है। रमणीत्व के काल में भी मातृत्व की अन्तःसलिला का अस्तित्व रहा है—जैसा कि नारी में प्रायः होता है। वस्तुतः नारी के जीवन की सफलता उसके मातृत्व में है, और सरोजिनी ने अपने जीवन के इस केन्द्रीय सत्य को कभी आँखों से ओझल नहीं होने दिया।

उनका आरम्भिक जीवन आराम, खेल-कूद, क्रीड़ा में बीता; उनका मध्य जीवन कविता एवं जीवन की अनेक प्रवृत्तियों-द्वारा, संसार को प्रेम का सन्देश देने में बीता और उनका उत्तर जीवन मातृत्व की विशालता और व्यापक पुकार से परिपूर्ण था। उन्होंने जीवन को अत्यन्त स्वाभाविक रूप में ग्रहण किया और उसे विकसित होने दिया।

उनके जीवन-विकास के मूल में, एक सजीव नारी की स्वाभाविक उत्सुकता है। इसी के कारण वह प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक वस्तु के विषय में उत्सुकता और जानकारी रखती थीं और हर चीज के ब्योरे में जाती थीं। इस विषय में उनकी सम्पन्नता अद्भुत थी। मानों वह व्यक्ति नहीं, संस्था हों। किसी लेखक ने एक बार ठीक ही लिखा था-"She is eyes and ears of India. Nothing escapes her" अर्थात् वह भारत की आँख—कान हैं। कुछ भी उनके दर्शन-श्रवण से नहीं छूटता।" उनकी स्मरण शक्ति असाधारण थी। वह शायद ही किसी परिचित को भूलती रही हों। पुराने प्रसङ्ग उन्हें याद थे। वह नारी एवं माता की मानवता के कारण प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर में प्रवेश करती थीं। इसीलिए व्यक्तियों के विषय में उनकी सम्मति और निर्णय प्रायः अचूक होते थे। हाँ, सार्वजनिक प्रश्नों पर

वह निश्चयात्मक रूप से कुछ कहने में हिचकिचाती थीं। यह भी मूलतः उनके नारीत्व का ही प्रसाद था। अपने नारीत्व एवं मातृत्व के ही कारण वह धनी निर्धन, उदार अनुदार, सभी के साथ सहज व्यवहार कर सकती और सभी में मिल जाती थीं। उनके लिए सभी मानव थे। उनके निकट उनकी विभिन्न कक्षाएँ तथा उपावरण ('लेवेल') प्रासंगिक और क्षणिक थे। सनातन नारीत्व एवं मातृत्व ने ही उन्हें वह अधीरता दी जिसके कारण वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में, यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ चलती दिखाई देती थीं। वर्षों पूर्व उन्होंने एक व्याख्यान में कहा था—"Patience? How I hate that word!" (धीरज? मैं इस शब्द को कितनी घृणा करती हूँ!) इनमें भी वही नारी बोल रही है।

\+ \+ \+

सरोजिनी के जीवन का सिंहावलोकन करते हुए अक्सर पाठक एवं दर्शक के ओठों पर एक प्रश्न उठता रहता है कि कैसे यह काव्य के आनन्द का गान करनेवाली चिड़िया राजनीति के कण्टक-जग में आ गई? जो साहित्य को ज़ीवन से अलग देखते हैं या उसे केवल व्यक्ति के जीवन तक ही बाँधकर रखना चाहते हैं, उनको इसका दर्द भी हुआ है कि सरोजिनी ने कविता का क्षेत्र छोड़कर अपने साथ अन्याय किया है। उनका यह भी कहना है कि यदि उन्होंने काव्य का त्याग न किया होता तो संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों में से एक होतीं। जो उनको जानते थे, वे यह भी जानते थे कि अंग्रेजी साहित्य के विधाताओं में उनकी जैसी प्रतिष्ठा थी, वैसी रवीन्द्रनाथ के अतिरिक्त किसी भारतीय को प्राप्त न हुई। सभी श्रेष्ठ आलोचकों ने उनमें महाकवि की प्रतिभा देखी थी। तब उनके कवि से राजनीतिज्ञ बन जाने पर यदि लोगों को दर्द होता है तो आश्चर्य क्यों हो?

पर बात यह है कि उनके जीवन में ये जो परिवर्तन हुए हैं, वे

स्वतः तो कोई परिवर्तन नहीं है। जीवन की मुख्य धारा तो वही है; ऊपर की अवस्थाएँ बदलती गईं। कवि बढ़कर जनता में समा गया। आत्म-समर्पण व्यक्ति से समाज तक फैल गया। नारी माता बन गई। मातृत्व की भावना ने भोग का शिथिल कर दिया। जीवन अगणित बच्चों में बँटकर विस्तृत हो गया।

यह कहना कि सरोजिनी का कवि नष्ट हो गया, गलत है। यह कहना कि कवि की समाधि पर राजनीतिज्ञ का अवतार हुआ है, और भी गलत है। असल में हुआ यह है कि कवि नष्ट न होकर विकसित हो गया और निजी बन्धनों और सीमाओं को तोड़कर बाहर निकल गया। काव्य लेखनी में व्यक्त न होकर कोटि-कोटि नङ्गी, भूखी और पीड़ित जनता की सेवा में बोलने लगा। जान पड़ता है, मित्रों ने सरोजिनी से भी इसकी शिकायत की थी कि तुमने कविता का क्षेत्र क्यों छोड़ दिया। वह स्वयं इसका उत्तर देती हैं:—

"Often and often have they said to me--'why have you come out of ivory tower of dreams to the market place? why have you deserted the pipes and flutes of the poet to be the most strident trumpet of those who stand and call the nation to battle ?" Because the function of a poet is not merely to be isolated in ivorytowers of dreams set in a garden of roses, but his place is with the people, in the dust of the high-ways, in the difficulties of the battle is the poet's destiny. The one reason why he is a poet is that in the hour of danger, in the hour of defeat and despair, the poet should say to the dreamer—if you dream true, all difficulties, all illusions, all despair are but 'Maya', the one thing that matters is hope. Here I stand before you with your higher dreams, your invincible courage, your indomitable victories. Therefore today in the hour of struggle, when in your hands lies to win victory for India, I a weak woman, have come out of my home. I, a dreamer of dreams, have come into the market place, and I say--"Go forth, comrades to Victory."

अर्थात् "बार-बार लोगों ने मुझसे पूछा है—"तुम स्वप्न के हाथीदाँत-शिखर को त्यागकर इस कोलाहलमय दुनिया में क्यों आ गई हो ? तुम कवि की वीणा और वंशी को त्याग कर उन लोगों की वज्र-घोषी तुरही क्यों बन गई हो, जो राष्ट्र का युद्ध के लिए आवाहन करते हैं ?" यह मैंने इसलिए किया है कि गुलाब के उद्यान में स्थित स्वप्न के हाथीदाँत-शिखर पर बैठे रहना कवि का कार्य नहीं है। उसका स्थान जनता में, राजपथ की धूल में, है। संग्राम की कठिनाइयों में ही कवि का भाग्य निहित है। कवि होने के लिए एक आवश्यक बात यह है कि वह भय के समय, पराजय और निराशा की घड़ियों में स्वप्न-दर्शी से कह सके कि 'अगर तुम सच्चा स्वप्न देख रहे हो तो समझ लो कि सारी कठिनाइयाँ, सारे भ्रम, सारी निराशाएँ 'माया' (मिथ्या) हैं, केवल आशा ही सत्य है। आज यहाँ मैं तुम्हारे सामने तुम्हारे उच्च स्वप्न, तुम्हारे दुर्भेद्य साहस, और तुम्हारी अजेय विजयों के साथ खड़ी हूं। इसलिए आज, इस संग्राम की घड़ी में, जब भारत के लिए विजय प्राप्त करना तुम्हारे अधीन है, मैं, एक निर्बल नारी, अपने गृह के बाहर निकल आई हूँ;—मैं स्वप्नों की स्वप्नदर्शिनी आज इस कोलाहल के बाजार में खड़ी होकर तुमसे कहती हूँ—'बन्धुओ, जाओ और विजय प्राप्त करो'।"

तब यह प्रश्न उठता है कि क्या सरोजिनी ने कवि का तिरस्कार करके राजनीतिज्ञ को अपनाया है ?

नहीं, सरोजिनी राजनीति में रह कर भी राजनीतिज्ञ ('पालिटीशियन') नहीं हैं। वह राजनीति में आईं इसलिए कि उसे काव्य का, मानवता का संदेश दें और जब राजनीति को ऊँचे स्तर पर उठाने का प्रयत्न हो रहा हो तब उसमें योग दें। वह राष्ट्रीयतावादिनी उतनी नहीं जितनी देशभक्त हैं। इस गहरी देशभक्ति का आधार राजनीति नहीं, वरं मातृत्व की वह प्यास है जो अपने अगणित बच्चों को दुःख

और कष्ट में नहीं देख सकती। यह मातृत्व के सम्पूर्ण आत्मार्पण की भूख है। इसीलिए जब वह बोलती थीं तो उनकी वाणी काव्य की धारा सी उनके मुख से निकलती थी। अवस्था ने, राजनीति ने, हृदय की मृदुल लहरों और आवेगों को जरा भी शिथिल नहीं किया था। उनकी वाणी में यौवन का उन्मेष और प्रभाती वायु का जीवनदायी सन्देश है। १६२६ ई० में, अमेरिका में, उन्होंने जो भाषण किया था वह मातृत्व के ओज से भरा है, जैसे भारत माता स्वयं अमेरिका से बोल रही हो। यह सब इसीलिए कि उनका मातृत्व राजनीति की उथल-पुथल और उसके विष को कुचलकर चल सका है। यह इसलिए कि वह जान सकी थीं कि नारी का अमृत कहाँ है और उसकी अमरता का स्रोत कैसे अक्षुण्ण रखा जा सकता है। वह गौरव के शिखर से, सन्तति को सन्देश देती हुई बोलती थीं और मातृत्व के इस चरम बोध के कारण ही नारी-जागरण आन्दोलन की पथ-प्रदर्शिका होकर भी वह आधुनिक रमणी की उच्छृङ्खलता की घोर विरोधिनी थीं; वैभव के वातावरण में पलकर, सौन्दर्य के स्वप्नों से अभिभूत रहकर और कवि के कल्पना-राज्य की रानी होकर भी उनमें अन्य भारतीय स्त्री-नेताओं का कर्कश स्वर, इसीलिए, नहीं है। कांग्रेस के सर्वभारतीय नेताओं में वही एक ऐसी हैं जो किसी दल या संकुचितता के सर्वथा ऊपर थीं। उनका जीवन प्रति पग पर सामञ्जस्यपूर्ण है और प्रत्येक स्थिति में उनका सन्देश ज्यों का त्यों है। उन्होंने एक बार कहा था—"I am of a tribe af Beauty" (मैं सौन्दर्य की जाति की हूँ) उन्होंने राजनीति की कठोरता में अपना वह ध्येय कायम रखा। और इसीलिए अवस्था उनके हृदय के चिर यौवन को शिथिल करने में असमर्थ रही। आज से वर्षों पूर्व उन्होंने जो कविता लिखी थी, उसमें स्वयं अपने जीवन की केन्द्रीय धारा को प्रकट किया है—

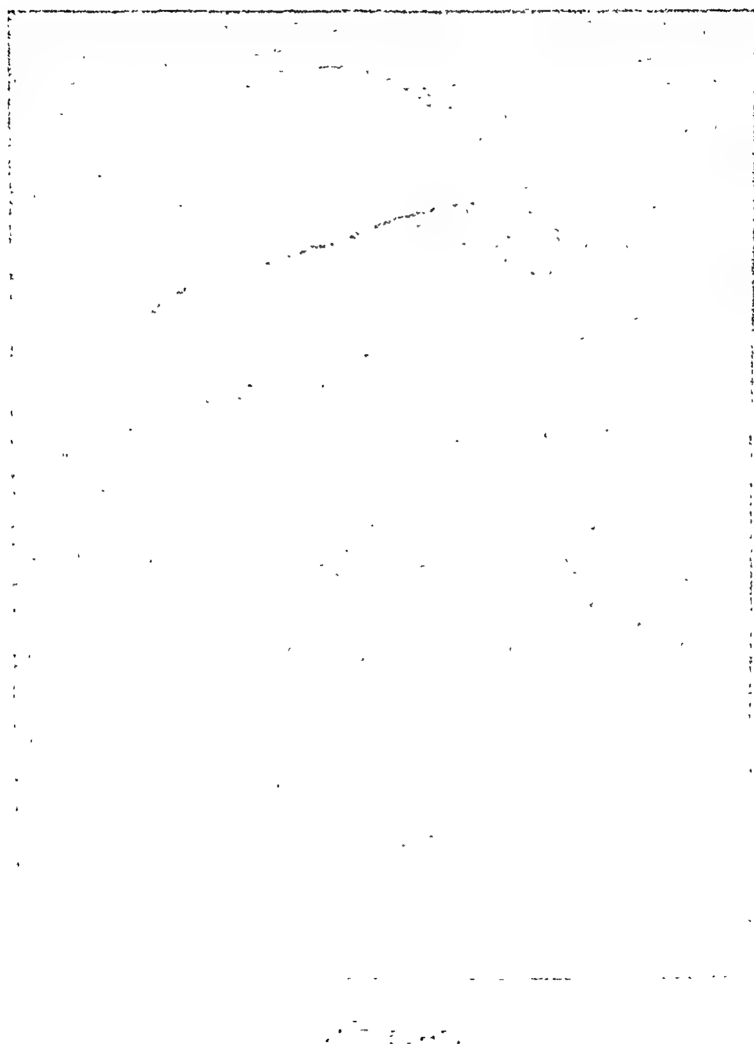
Into the strife of the throng and tumult

The war of sweet love against folly and wrong
Where brave hearts carry the sword of battle
'Tis mine to carry the banner of song.
The solace of faith to the lips that falter,
The succour of hope to the hands that fail
The tidings of joy when peace shall triumph
When truth shall conquer and love prevail.

अर्थात्--"जहां विश्व की भीड़ और कोलाहल के संघर्ष में अज्ञान और अनौचित्य के विरुद्ध मधुर प्रेम का युद्ध चल रहा है और जहाँ वीर हृदय युद्ध का खड्ग लेकर जाते हैं, वहाँ संगीत का झंडा ले जाना मेरा काम है। मेरा काम प्रकम्पित और विचलित ओष्ठों तक विश्वास की शांति पहुँचाना और असफल तथा दुर्बल हाथों को आशा की सहायता प्रदान करता है। जब शांति विजयिनी होगी, जब सत्य विजयी होगा और प्रेम का राज्य फैल जायगा तब सब तक आनन्द की लहर पहुँचाना मेरा काम है।"

सच पूछिये तो उनको गवर्नरी के पद पर देखकर आश्चर्य होता था। यह उनकी प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं फिर भी कर्तव्यवश उन्होंने इसे स्वीकार किया और अन्त तक गवर्नरी के कठोर उत्तरदायित्व को निबाहते हुए वह अनुभव करती और कहती रहीं कि 'जंगलों के स्वच्छ वातावरण में स्वतंत्र विचरनेवाली चिड़िया आज स्वर्ण-पिंजर में है।'





राजेन्द्र प्रसाद

—'जीवित श्रद्धा और मूर्त्त सेवा'—

जन्म : दिसम्बर १८८४ ई०; अगहन पूर्णिमा १९४१ वै०

"राजेन्द्रबाबू ही एक ऐसे नेता हैं जो साधुता में गांधी जी के सबसे निकट हैं।"

—आचार्य कृपलानी

[१]

एक झलक

साँवला रङ्ग, गांधी टोपी, घनी मूँछें, वस्त्र-विन्यास की ओर जिनका ध्यान जाता ही नहीं, दमा के शिकार पर कभी न टूटने वाले उत्साह से पूर्ण, भीतर से महान् पर ऊपर से अटपटे—राजेन्द्र बाबू को देखकर दिल कुछ अबोला सा भक्ति से यों उमड़ता है जैसे भरे हुए बादल जमीन पर झुक जाते हैं। इस व्यक्ति का रहन-सहन देखकर विरोधी दाँतों तले अँगुली दबा लेगा। इसकी कार्य-शक्ति देखकर युवक शर्मिन्दा हो जायगा, इसकी तपस्या के आगे संन्यासी का मस्तक झुक गया है और इसकी तीव्र बुद्धि के सामने विचक्षण पण्डितों की वाणी मौन है।

इस व्यक्ति की 'गँवारूपन' तक बढ़ी हुई सरलता देख अच्छे-अच्छे सेवकों का अहंकर टूट गया है। कुछ ऐसा कि जब तक आप पहले से इन्हें जानते न हों, एक साधारण ग्रामीण का धोका होता है। दरिद्र-नारायण की सेवा में इस व्यक्ति ने अपने को ऐसा ओत-प्रोत कर दिया है! इसे देखकर कौन कहेगा कि एक जमाने में यह प्रथम श्रेणी का वकील रह चुका है और हजारों की 'प्रैक्टिस' छोड़कर सेवा के इस दुर्गम कँटीले मार्ग में आया है! और यह कौन कहेगा कि सारी युनि-वर्सिटी परीक्षाओं में यह प्रथम आता रहा होगा? सिवाय आचार्य सर पी० सी० राय के दूसरे किसी प्रसिद्ध जन-सेवक को मैं नहीं जानता जिसकी वेश-भूषा दरिद्र भारत के कोटि-कोटि दरिद्रनारायणों के इतने

नजदीक पड़ती हो ! राजेन्द्र बाबू, शुद्ध अर्थ में, भारतीय किसान के प्रतिनिधि है।

राजेन्द्र बाबू को मैंने पहले-पहल १६२१ के तूफानी दिनों में देखा था। तब से अनेक बार देखा है। बहुत निकट से भी देखा है; बहुत दूर से भी देखा है। निकट की दृष्टि शायद ज्यादा देख ले और दूर से शायद बिल्कुल कम दिखाई दे। इसलिए दोनों दूरियों और ऊँचाइयों से देखा है। पर मुझे स्वयं आश्चर्य है कि सिवाय कुशल-मंगल या कोई जरूरी बात को छोड़कर कुछ और उनसे पूछने की दिल में न हुई। जैसे इस अपने कर्म और चरित्र में ही जो पूरा का पूरा उतर आया है, शंका और संदेह उसके सामने उपस्थित करने में जिह्वा कुंठित होती हो। उसका छिपा क्या है जो उससे पूछा जाय और उसने अपने तक क्या कुछ रख छोड़ा है, जिसे छीनने की चेष्टा हम करें। इस सशरीर सेवा के सामने जाकर जैसे सम्पूर्ण प्रश्नों का अन्त हो जाता है। यहाँ श्रद्धा हैं; यहाँ विवेक है; यहाँ सेवा है। उनमें एक जागरूक भक्त है और उनमें एक कभी न बुझने वाली श्रद्धा की दीपशिखा लिये अपने मार्ग पर, शांति एवं अनुद्वेग के साथ बढ़ने वाला सेवक है। एक व्यक्ति जिसमें काई नहीं, खोट नहीं, इसीलिए फिसलन का भय भी नहीं। जो अपने प्रति, और इसीलिए दूसरों के प्रति भी, पूर्ण ईमानदारी का दावा कर सकता है; जिसका अहंकार एक व्यापक जन्मजात नम्रता में डूब गया और जिसमें देवता के प्रति केवल समर्पण की भावना प्रधान होकर रह गई है। विवेक से धुली श्रद्धा का एक जीवित स्मारक, यह राजेन्द्र बाबू हैं।

[२]

जीवन-कथा

राजेन्द्र बाबू का जन्म ३ दिसम्बर १८८४ ई० को, उत्तर बिहार के सारन जिले के एक प्रतिष्ठित कायस्थ परिवार में हुआ। इस परिवार के पूर्वज किसी जमाने में फतहपुर सीकरी (आगरा) के निकट के एक गाँव में रहते थे। बाद में वहाँ से चलकर वंश की एक शाखा बलिया में जा बसी। कुछ समय बाद वंश की बलिया शाखा से निकलकर कुछ लोग सारन जिले के जीरादेई गाँव गये और वहाँ बस गये। इस जीरादेई वाले परिवार में ही राजेन्द्र बाबू का जन्म हुआ था। इनके दादा मुन्शी मिश्रीलाल के बड़े भाई मुन्शी चौधुरलाल २५-३० वर्षों तक हथुआराज के दीवान थे। महाराज उन्हें पिता के तुल्य मानते थे। राजेन्द्र बाबू के पिता मुन्शी महादेव सहाय जमींदार थे। राजेन्द्र बाबू अपने पिता के सबसे छोटे पुत्र हैं। बाबू महादेव सहाय साधु प्रकृति के व्यक्ति थे; उन्हें गरीबों की सेवा की रुचि थी, स्वयं आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा का कुछ ज्ञान रखते थे और गरीब-दुखियों को दवा-दारू बाँटा करते थे। राजेन्द्र बाबू में पिता के संस्कार स्पष्ट हैं। पर सब से ज्यादा असर उन पर बड़े भाई का है। लगभग बारह वर्ष पूर्व राजेन्द्र बाबू के बड़े भाई श्री महेन्द्र प्रसाद का देहान्त हो गया। सच पूछिये तो राजेन्द्र बाबू के नैतिक गुरु महेन्द्र प्रसाद ही थे जिनका इनके जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव है।

१८९३ ई० में राजेन्द्र प्रसाद छपरा स्कूल में भरती हुए। वह आरम्भ से ही एक मेधावी विद्यार्थी थे। १९०२ में इण्ट्रेन्स की परीक्षा में वह सम्पूर्ण यूनिवर्सिटी में प्रथम आये। यहाँ यह याद रखने की बात है कि उस समय इस यूनिवर्सिटी का क्षेत्र बंगाल, बिहार उड़ीसा,

आसाम और बर्मा तक फैला हुआ था। स्कूल की पढ़ाई के बाद वह कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कालेज में भरती हुए। इण्टरमीजिएट परीक्षा में भी वह युनिवर्सिटी में सर्वप्रथम आये और १९०६ में बी० ए० की परीक्षा में भी उनको यही सम्मान मिला।

इसके पश्चात् उन्होंने एम० ए० में अंग्रेजी ली और साथ ही कानून के अध्ययन में भी प्रवृत्त हुए। १९०७ में उन्होंने एम० ए० कर लिया। और मुजफ्फरपुर के ग्रीयर कालेज में अध्यापक नियुक्त हुए, जहाँ एक वर्ष तक काम करने के बाद कानून के क्षेत्र में प्रवेश करने के विचार से कलकत्ता चले गये।

अपनी छात्रावस्था में राजेन्द्रप्रसाद कभी किताबी कीड़े नहीं रहे। वह सदा वाद-विवाद तथा सार्वजनिक सेवा के कार्यों में भाग लेते रहते थे। कालेज के अन्तिम दिनों में तो राजनीतिक कार्यों की ओर इनकी रुचि बहुत बढ़ गई थी। वह तूफानी जमाना था। बङ्गाल के टुकड़े हो रहे थे। एक सोई हुई जाति की मूर्च्छना टूट रही थी और लोगों के हृदय में मातृभूमि की उपासना का एक सजग ज्वार आया था। देखते ही देखते क्षितिज पर प्रकाश की किरणें फूट पड़ीं। भाई ने भाई को पहचाना और स्वदेशी धर्म यों फैलने लगा जैसे वर्षा ऋतु में एकाएक बादल का एक छोटा टुकड़ा दिखाई देता है और देखते-देखते सारे आसमान पर छा जाता है।

जो जागृति बङ्गाल के युवकों में आई, राजेन्द्र बाबू उसे बिहार के छात्रों में भी ले आये। यह उनके ही प्रयत्नों का फल था कि सितम्बर १९०६ में पटना कालेज हाल में बिहारी छात्र सम्मेलन का प्रथम सफल अधिवेशन, स्व० सैयद शर्फुद्दीन (बाद में कलकत्ता एवं पटना हाईकोर्ट के जज) की अध्यक्षता में हुआ। बिहार के युवकों में जागृति का अधिकांश श्रेय इसी संस्था को है। १९०९ के आन्दोलन में बिहार का नेतृत्व करने वाले अधिकांश लोग इसी सम्मेलन की उपज थे और

आज भी जो लोग बिहार के पथदर्शक और अग्रज नेता हैं उनमें से अधिकांश उन्हीं में से हैं।

१६१० में स्व० श्री गोखले ने अपने भारत-सेवक-संघ में आकर काम सीखने के लिए राजेन्द्र बाबू को आमन्त्रित किया। इनकी गोखले के प्रति बड़ी भक्ति थी अतः यह तुरन्त तैयार हो गये किन्तु अपने बड़े भाई की आज्ञा के कारण इनको वह विचार छोड़ना पड़ा। उस समय इन्होंने जो पत्र स्व० महेन्द्र बाबू को लिखा था, उससे सार्वजनिक सेवा के प्रति उनके मानसिक झुकाव का पता चलता है। उनका जीवन किस ओर बढ़ रहा था, इसे जानने के लिए इस पत्र का अध्ययन अनिवार्य है। इसके कुछ अंश यहाँ दिये जाते हैं :—

"माई ब्रदर, ए सेंटीमेंटल मैन दैट आई ऐम, आई कुड नाट स्पीक टु यू फेस टु फेस। आई फ़ील दि काल आफ़ ए हायर ऐंड मोर इम्पार्टेंट कैरेक्टर। इट मे बी अनग्रेटफुल आन माई पार्ट टु लीव यू इन डिफीकल्टी ऐंड इम्बैरेसमेंट। बट आई प्रोपोज़ टु यू टु मेक ए सैक्रीफाइस इन दि काज़ आफ़ थ्री हैंडरेड मिलियंस। टु ज्वाइन मि० गोखलेज़ सोसायटी डज़ नाट मीन एनी सैक्रीफाइस टु मी परसनली। फ़ार गुड आर फ़ार ईविल, आई हैव हैड दी बेनिफ़िट आफ़ सच ए ट्रेनिंग दैट आई कैन अडाप्ट माईसेल्फ टु एनी सर्कम्सटैंसेज़ इन ह्विच आई मे बी प्लेस्ड। माई ।ल वग, टू, हैज़ बीन आफ़ सच ए सिम्पुल नेचर दैट आई डू नाट रिक्वायर एनी स्पेशल इक्विपमेंट आफ़ कम्फ़र्ट। ह्वाट आई शैल गेट फ्राम दि सोसायटी विल बी एनफ़ फार मी। बट आई कैन नाट फ़्लैटर माईसेल्फ़ दैट इट मींस नो सैक्रीफाइस आन योर पार्ट। यू, हू हैव बीन फार्मिंग हाई होप्स, विल सी योर होप्स डैश्ड डाउन इन ए मोमेंट। बट इन दिस ट्रांज़िटरी वर्ल्ड आल पासेस अवे—वेल्थ, रैंक, हानर। दि वेल्दियर यू बिकम, दि मोर यू रिक्वायर, ऐंड आलद्दो पीपुल मे थिंक दैट दे आर सैटिसफाइड विथ गोल्ड, दोज़ हू नो एनी थिंग नो

वेरी वेल दैट हैपीनेस कम्स नाट फ्राम विदाउट, वट फ्राम विदिन। ए पुवर मैन विद हिज़ फ्यू रूपीज़ इज़ मोर कंटेंटेड, दैन दि रिच मैन विद हिज़ मिलियन्स। लेट अस नाट डिस्पाइज़ पावरटी। दि ग्रेटेस्ट मेन आव दि वर्ल्ड हैव बीन दि पुअरेस्ट, ऐट फर्स्ट मोस्ट पर्सिक्यूटेड एंड दि मोस्ट डिस्पाइ.ज्ड। वट दि स्कोफ़र्स एंड पर्सिक्यूटर्स आर गान इंटु डस्ट नो मोर टु राइज़, नो मोर टु बी हर्ड आफ़, ह्वाइल दि पर्सिक्यूटेड एंड दि डिस्पाइज्ड लिव इन दि मेमरी एंड दि हार्ट आफ़ मिलियंस। इफ़ आई हैव हैड एनी ऐम्बिशन इन माई लाईफ इट हैज़ बीन टु वि आफ सम सर्विस टु दि कंट्री। ऐम्बिशन आई हैव नन एक्सेप्ट टु बी आफ सर्विस टु दि मदर। ह्वाट प्रिंस आर कामनर इज़ देयर हू हैज़ दि इनल्फुयेंस, दि पोज़ीशन आर आनर आफ़ ए गोखले? एंड इज़ ही नाट, आफ्टर आल, ए पुवर मैन?"

अर्थात् "भैया, एक भाव-प्रवण व्यक्ति होने के कारण, मैं आपके आमने सामने बैठकर बात नहीं कर सकता। मुझे एक महत्वपूर्ण एवं उच्च आवाहन की अनुभूति होरही है। कठिनाई और परेशानी के वक्त आपको यों छोड़ देने में मेरी अकृतज्ञता हो सकती है किन्तु मेरा प्रस्ताव है कि आप ३० करोड़ भारतीयों के लिए यह उत्सर्ग करें। श्रीयुत गोखले के संघ में सम्मिलित होने में मेरा अपना तो कोई त्याग नहीं है। बुरा या भला, मुझे ऐसी शिक्षा का लाभ मिला है कि जब जो परिस्थिति आ पड़े उसके अनुकूल अपने को बना सकता हूँ। मेरी रहन-सहन इतनी सादी रही है कि मुझे आराम के किसी विशेष साधन की आवश्यकता नहीं है। मुझे जो कुछ संघ से मिलेगा, मेरे लिए पर्याप्त होगा। अतः मेरे लिए इसमें त्याग की कोई बात नहीं है परन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि इसमें आपको त्याग न करना पड़ेगा। आपने मुझपर बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाई हैं; उन आशाओं का एक क्षण में अन्त हो जायगा। किन्तु इस अनित्य संसार

में धन, मर्यादा, यश सबका अन्त हो जाता है। ज्यों-ज्यों हम धनी होते हैं धन की तृष्णा बढ़ती जाती है। दूसरे लोग समझते हैं कि धनवान अपने सुवर्ण को लेकर सुखी है परन्तु जानने वाले जानते हैं कि **आनन्द बाहर से नहीं हृदय के अन्दर से उत्पन्न होता है।** अपने चन्द रुपये के साथ एक दरिद्र लाखों लेकर जीने वाले धनिक से अधिक तृप्त है। अतः हमें गरीबी से घृणा न करनी चाहिए। संसार के महत्तम व्यक्ति अत्यन्त दरिद्र रहे हैं और आरम्भ में उन पर सदा अत्याचार हुए हैं और उनकी उपेक्षा की जाती रही है। आज ये उपहास और अत्याचार करने वाले धूल में मिल गये हैं और अब कोई उनका नाम भी नहीं लेता। किन्तु उन उपेक्षित एवं पीड़ित महापुरुषों की स्मृति लक्ष-लक्ष मनुष्यों के हृदय में प्रकाशित हैं। **यदि मेरे जीवन में कोई महत्वाकांक्षा रही है तो यही कि मैं अपने देश की किंचित् सेवा कर सकूं। मुझमें माता की सेवा के अतिरिक्त कोई महत्वाकांक्षा नहीं है।** आज कौन राजा या रंक ऐसा है जिसका गोखले-जैसा प्रभाव, मर्यादा या यश हो? और क्या वह गरीब नहीं हैं?"

आज से ४० वर्ष पूर्व लिखे गये इस पत्र में राजेन्द्र बाबू का सम्पूर्ण जीवन बोलता है, जैसे पूर्ण भक्ति या ज्ञान में आत्मा बोलती है। उनका सारा जीवन इसी त्याग एवं सेवा के मेरुदंड पर खड़ा है।

× × ×

१९११ में राजेन्द्रबाबू ने कलकत्ता हाईकोर्ट में प्रेक्टिस आरम्भ की और मार्च १९१६ तक वहाँ वकालत करते रहे। १९१६ में जब पटना हाईकोर्ट की स्थापना हुई तो बिहार चले आये। कलकत्ता में उनकी वकालत खूब बढ़ रही थी। १९१५ में वह एम० एल० (मास्टर ऑव-ला) की परीक्षा में बैठे और प्रथम श्रेणी में सर्वप्रथम आये। पटना

में वकालत शुरू करने पर तो उनका भाग्य खूब चमका और वह न केवल असामियों में वरन् जजों में भी लोकप्रिय हो गये। उनकी आय बहुत बढ़ गई और यह निश्चय था कि यदि वह वकालत जारी रखते तो अवश्य हाईकोर्ट के जज नियुक्त किये जाते। पर ईश्वर को राजेन्द्र-बाबू से अधिक महत्वपूर्ण कार्य कराना था।

सितम्बर १९१६ में इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में, भारत सरकार के तात्कालिक शिक्षा-सदस्य सर शंकरन नायर ने पटना युनिवर्सिटी बिल पेश किया। यह बिल अत्यन्त असम्बद्ध, संकुचित और प्रतिक्रियात्मक था। राजेन्द्र बाबू उस समय बिहार प्रान्तीय सम्मेलन के संयुक्त मंत्री थे। उन्होंने बिल के विरुद्ध समाचार पत्रों और सभाओं द्वारा, तीव्र प्रचार-कार्य किया। इसका परिणाम यह हुआ कि बिल में सरकार को अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन करने पड़े। १९१७ में पटना विश्व-विद्यालय की स्थापना होने पर राजेन्द्रबाबू सिनेट में रखे गये और बाद में सिण्डिकेट में चुने गये। सिनेट में बराबर वह हिन्दी माध्यम-द्वारा शिक्षा देने, शिक्षण-क्रम को सस्ता एवं सरल बनाने के लिए प्रयत्न करते रहे और इनमें उनको आंशिक सफलता भी मिली। सरकारी अधिकारी और सर्व-साधारण दोनों में उनका सम्मान था और यदि असहयोग का शंखनाद न होता तो वह समय दूर न था कि वह वाइस-चान्सलर चुन लिये जाते।

वस्तुतः चम्पारन सत्याग्रह ने राजेन्द्रबाबू की काया पलट दी। बिहार की सच्ची जागृति तो यहीं से आरम्भ होती है। चम्पारन में नील की खेती करनेवाले किसानों और 'निलहे' गोरों की कोठियों पर काम करनेवाले कुलियों की बड़ी दुर्दशा थी। अप्रैल १९१७ में गांधी जी इनकी दशा का निरीक्षण करने के लिए बिहार आये। अपने कार्यों के कारण वह शीघ्र ही अधिकारियों के कोप-भाजन हो गये और उन्हें २४ घंटे के भीतर प्रान्त छोड़कर चले जाने की आज्ञा दी गई। गांधीजी

ने आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया। इसी सम्बन्ध में वह गिरफ्तार हुए परन्तु बाद में छोड़ दिये गये। राजेन्द्र बाबू ने अन्त तक गांधीजी का साथ दिया। जनता उठने लगी और प्रांत भर में सरकार के प्रति तीव्र असंतोष फैल गया। अंत में बिहार-सरकार ने परिस्थिति की गुरुता का अनुभव किया और एक जाँच-समिति नियुक्त की जिसमें गांधीजी को भी रखा गया। इस कमेटी ने जनता के पक्ष में मत दिया। फलतः बिहार कौंसिल-द्वारा १९१८ का चम्पारन एग्रेरियन ऐक्ट पास हुआ जिसके द्वारा प्रजा की अधिकांश शिकायतें दूर हो गईं। इस आंदोलन ने वर्ण-द्वेष के आधार पर आश्रित गोरों के अहकार-मूढ़ प्रभाव को सदा के लिए मिटा दिया। इस दृष्टि से भारत के इतिहास में छोटे से चम्पारन सत्याग्रह का बड़ा महत्व है।

१९१९ में रौलट ऐक्ट भारत के लिए मानो प्रभात रूप ही आया। इसके विरुद्ध जो व्यापक आंदोलन हुआ और जिनके फलस्वरूप पंजाब का निर्मम हत्याकांड हुआ उसने सदियों की सोई हुई जनता को जगा दिया। राष्ट्र यों उठा जैसे भयंकर स्वप्न देखकर सोया हुआ आदमी जाग उठता है। भाई से भाई मिले। तब से राजेन्द्र बाबू ने वकालत छोड़ दी और गांधीजी के सच्चे अनुयायी बन गये। सरकारी स्कूलों-कालेजों का त्याग करने वाले छात्रों के लिए उन्होंने बिहार विद्यापीठ की स्थापना की। इस विद्यापीठ से ६५ संस्थाएँ सम्बद्ध थीं जिनके कुल शिक्षार्थियों की संख्या ६२ हजार थी। राष्ट्रीय आन्दोलन को कार्यकर्ता देने की यह विद्यापीठ एक नर्सरी बन गया। बिहार में अनेक प्रकार के रचनात्मक कार्यों को उन्होंने जन्म दिया। इन वर्षों में राजेन्द्रबाबू असहयोग, सत्याग्रह के प्रबल समर्थकों में रहे हैं और आज भी गांधीवाद में उनका विश्वास अचल है। उन्होंने देश के लिए अपने स्वास्थ्य को नष्ट कर दिया और छः बार जेल की यातनाएँ सही हैं। वह जेल में ही थे जब १५ जनवरी १९३४ को बिहार का

प्रलयंकर भूकम्प आया। उस समय उनका शरीर गल गया था और दमे से उन्हें इतना कष्ट था कि वह जेल से पटना के सरकारी अस्पताल में रखे गये थे। अन्त में मर्ज बढ़ता देखकर सरकार ने १२ जनवरी को उन्हें छोड़ दिया। अपना इलाज करने एवं विश्राम करने की जगह वह गाँव-गाँव का चक्कर काटने लगे और महीनों तक अथक परिश्रम करके निराशा एवं अंधकार में पड़े हुए बिहार को उन्होंने बचा लिया। उस समन उन्होंने बिहार की जो सेवा की उसका दूसरा उदाहरण आधुनिक समय में नहीं मिलता। १६३५ में पुरी कांग्रेस के लिए वह अध्यक्ष चुने गये थे पर उनके जेल में होने तथा सत्याग्रह आंदोलन के कारण वह कांग्रेस न हो सकी। १६३५ की बम्बई कांग्रेस के अध्यक्ष हुए। बाद में त्रिपुरी कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। अभी कल तक कांग्रेस कार्य समिति के अत्यंत क्रियाशील और सजग सदस्यों में रहे। १६४२ के अगस्त से वह बराबर जेल में रहे और अन्य नेताओं के साथ १६४५ में रिहा हुए। जेल में उनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया था। किन्तु उस अवस्था में भी १६४२ के आंदोलन के पीड़ितों की सहायता तथा बाद में कौंसिलों के चुनाव के लिए बिहार में दौरा किया। १६४६ में वह भारत-सरकार के खाद्य सचिव हुए और सभी दलों का उन पर समान विश्वास रहा। विधान परिषद् ने सर्वसम्मति से उन्हें स्थायी अध्यक्ष चुना मानों राष्ट्र ने अपने भाग्यनिर्माण की जिम्मेदारी पूर्ण विश्वास के साथ उनके हाथ सौंप दी। विधान की स्वीकृति के बाद वह सर्वसम्मति से स्वतत्र भारतीय प्रजातन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति चुने गये और आज भी हैं।

---

[३]

चरित्र के कुछ पहलू

सादगी

सबसे बड़ी बात जो हमें उनकी ओर खींचती है उनकी सादगी है। गांधी युग ने हमारे जीवन और वेशभूषा को बहुत बदला। आज सादगी कांग्रेस कर्मियों के जीवन का एक सामान्य विशेषता है पर राजेन्द्रबाबू की सादगी बिल्कुल जन्मजात और असाधारण है। इन्हें देखकर एक सामान्य देहाती का भ्रम होता है। जवाहरलाल के साथ लिये गये इनके एक फोटो को देखकर डा० सच्चिदानन्द सिनहा को भ्रम हो गया कि पण्डितजी के साथ कोई मोटर ड्राइवर खड़ा है। फिर इनकी सादगी के साथ सबसे बड़ी बात यह है कि उसमें जरा भी बनावट नहीं है। वह किसी कौशल का द्योतक नहीं; वह अत्यन्त स्वाभाविक हो गई है। उस भक्त की भाँति जो सर्वस्व अर्पण करके निःस्व हो गया हो, राजेन्द्रबाबू सर्वथा अहंकारशून्य हैं। इसी अहंकार शून्यता के कारण वह अन्तःस्थ हैं; बाह्य आवरणों (अपीयरेन्सेज) के प्रति उदासीन।

इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख करते हुए उनके एक मित्र छपरा के श्री साँवलियाविहारी लाल वर्मा लिखते हैं—"हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के नागपुर के अधिवेशन के, राजेन्द्र बाबू, सभापति बनाये गये। स्थायी समिति के किसी आवश्यक अधिवेशन में चलने के लिए उन्होंने मुझसे भी कहा। पटने से राजेन्द्रबाबू, मथुरा बाबू, मैं तथा दो एक और सदस्य, जिनके नाम मुझे स्मरण नहीं हैं, रात की गाड़ी से चलने को तैयार हुए। मैं प्रायः इन्टर क्लास में सफर करता था किन्तु राजेन्द्र बाबू की इच्छानुसार हम सब ने तीसरे दर्जे का टिकट लिया...हमारी धारणा थी कि प्रयाग पहुँचने पर राजेन्द्रबाबू या तो आनंदभवन में पं० जवाहर लाल के साथ ठहरेंगे अथवा टंडन जी के साथ। किन्तु

जब गाड़ी भोर में प्रयाग पहुँची तब इनमें से कुछ लोगों के अनुरोध करने पर भी उन्होंने आनंद भवन अथवा कहीं और जाने अथवा फोन द्वारा सूचना देने की अनुमति नहीं दी। हम लोग स्टेशन के बाहर इंटर क्लास के मुसाफिरखाने में ठहरे और स्नानादि से निवृत्त होकर कैलास होटल में भोजन किया और एक्के से सीधे सम्मेलन आफिस में पहुँचे। टंडनजी अथवा सम्मेलन के किसी अधिकारी को राजेन्द्रबाबू के उस अधिवेशन में सम्मिलित होने की सूचना न थी। राजेन्द्रबाबू को एक्के से उतरते देख कर उन्हें कौतूहल हुआ। कुछ ने मुझे खुले शब्दों में कहा—हमारे यहाँ के सेकंड क्लास (द्वितीय श्रेणी) के नेता भी एक्के पर सफर नहीं करेंगे, राजेन्द्रबाबू सदृश भारतीय नेता की तो बात ही अलग है। स्टेशन से चलते समय हमने उनसे ताँगे पर चलने का अनुरोध किया किन्तु यह कहते हुए कि 'यह ठीक है' एक एक्के पर बैठ गये। हमें विवश हो उन्हें एक्के पर ही सम्मेलन ले जाना पड़ा। इस घटना के समय राजेन्द्रबाबू केवल सम्मेलन के ही नहीं किन्तु कांग्रेस के भी दो बार सभापति हो चुके थे और उनके आगमन की सूचना पाकर प्रयाग की भावुक जनता समुचित स्वागत करती, स्वयं जवाहरलालजी और टंडनजी स्वागत कर साथ ले जाते। किन्तु राजेन्द्रबाबू को तो सादगी में ही आनन्द आता है। हममें से कितने ऐसे हैं जिनमें इस प्रकार के तुच्छ लोभ का संवरण करने की भी क्षमता हो ?"

संकोच और दूसरों का ख्याल

श्री छविनाथ पाण्डेय के शब्दों में "सादगी के तो वे मूर्तिमान रूप हैं। केवल रहन-सहन की सादगी नहीं बल्कि जीवन के प्रत्येक पहलू में सादगी का ही राज्य है। वर्तमान नेताओं में तो शायद ये ही एक व्यक्ति हैं जिनके यहाँ प्रवेश पाने के लिए पंडों की रहनुमाई की

जरूरत नहीं पड़ती। अमीर-गरीब सब के लिए समान रूप से इनका दरवाजा सदा खुला रहता है। कोई रोक-टोक नहीं, नहीं, कुछ पूछ-ताछ नहीं। आप बेधड़क चले जाइए और चौकी पर बगल में बैठ जाइए, बल्कि यदि कोई रोकने का प्रयत्न करे तो उलटे डाँट खा जाय। मैं तो इसका भुक्तभोगी हूँ। घटना १६३५ की है। कांग्रेस स्वर्ण जयन्ती का साल था। राजेन्द्र बाबू बम्बई में थे। मलाबार हिल्स पर राजा गोविन्दलाल पित्ती के मेहमान थे। मैं भी उनके साथ था। एक दिन खाँसी का दौरा हो आया। कृपालानी जी भी वहीं थे। उन्होंने मुझसे कहा—'देखो, राजेन्द्र प्रसाद को खाँसी हो आई है। शाम को दो सभाओं में भाषण करना है। दोपहर में इसे पूरा आराम मिलना चाहिए। तू फाटक पर बैठकर चौकसी कर। किसी को भीतर मत जाने देना।'

भोजन के बाद राजेन्द्रबाबू आराम करने के लिए लेट गये और मैं दरवाजा भिड़काकर बाहर बैठ गया। कोई आध घंटे बाद तीन-चार सेठ आये। वे भीतर जाने के लिए आग्रह करने लगे, पर मैं कब मानने वाला था! लगी बहस होने। राजेन्द्रबाबू जगे ही थे, उन्होंने मुझे बुलाया। सारी बातें सुनकर कहने लगे—'इतनी दूर से वे लोग आये हैं। जरूरी काम न होता तो क्यों आते। वापस चले जायँगे तो इन्हें बड़ी निराशा होगी। आने दो।' मेरे पास क्या उत्तर था। वे लोग अन्दर बुलाये गये। आधे घंटे तक उनसे बातें कर उन्हें विदा किया।

उसी रात माटुंगा में सभा थी। राजेन्द्रबाबू का भाषण हो चुका था। सभापति धन्यवाद दे रहे थे। इसी समय वहीं के एक सज्जन ग्लास में जीरे का छौंका जल लेकर आये। मुझसे कहने लगे—"बाबूजी के पीने के लिए जल है।" मैंने कहा—'जाड़े की रात है, इन्हें खाँसी का दौरा है, जल की जरूरत नहीं है।' वे ग्लास उनकी तरफ बढ़ाने के

लिए आग्रह कर रहे थे और मैं उन्हें रोकता था। इतने में राजेन्द्र-बाबू की निगाह उन पर पड़ गई। पूछा—'क्या है?' वे सज्जन गिड़गिड़ाकर कहने लगे—'बाबूजी, बड़े परिश्रम से ज़ीरे का छौंका जल आपके लिए तैयार करवाया है, एक घूँट पी लीजिए।' राजेन्द्रबाबू ने चट ग्लास हाथ में लिया और दो घूँट पी गये। इतना ही नहीं, मुझे भी पीने के लिए बाध्य किया। रास्ते में उन्होंने मोटर पर मुझसे कहा—"दो घूँट पानी पी लेने से मेरा क्या बिगड़ा, अगर न पीता तो उन्हें कितना दुःख होता।" स्वयं कष्ट उठाकर यदि वे दूसरों को प्रसन्न या सन्तुष्ट कर सकते हैं तो संकोच नहीं करते; यह उनका साधारण स्वभाव है।"

स्नेही स्वभाव

राजेन्द्रबाबू का हृदय प्रेम से भरा है। इसी प्रेम ने उन्हें अटूट सेवा का बल दिया है। घनिष्ट मित्रों या परिवार के लोगों के विछोह के समय जब उनका हृदय उमड़ता है तो उमड़ता ही है। कभी-कभी तो वह फूटकर रोने लगते हैं। दुखी जनों को देखकर भी रो पड़ते हैं। राजेन्द्रबाबू में सबसे बड़ी विशेषता अपने साथियों एवं कार्यकर्ताओं के प्रति उनका निजत्व तथा साम्यभाव है। सारा बिहार उन्हें अपना समझता है और कार्यकर्ता उन्हें अपने परिवार का मुखिया समझते हैं। उनमें पूर्ण निरभिमानता है। अपने अनुशासन में काम करनेवालों के पास काम होने पर वह स्वयं चले जाते हैं। श्री छविनाथ पाण्डेय 'आज' में लिखते हैं—"१६३१ की बात है। कलकत्ता में हिंदी-साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन था। हम लोग भी शामिल थे। राजेन्द्रबाबू आये। लोग उन्हें मञ्च पर ले गये। मञ्च के ठीक नीचे बिहार के प्रतिनिधियों के लिए स्थान था। राजेन्द्रबाबू की निगाह हम लोगों पर पड़ी। धीरे से मञ्च से उतरकर वे हम लोगों के पास आ गये। बोले- "तनिक खसकऽ। हम हूं के बैठे के जगह द..." लोग मञ्च पर

जाने के लिए आग्रह करते ही रह गये, लेकिन वे अन्त तक वहीं बैठे रहे।"

कर्त्तव्यनिष्ठा

उनको दमे ने चर लिया है, फिर भी उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा असाधारण है। सार्वजनिक सेवा में कभी वह अपने स्वास्थ्य का विचार नहीं करते। अकाल, महामारी, बाढ़ इत्यादि प्राकृतिक आपदाओं के समय तो वह अपने को बिल्कुल भूल जाते हैं। कार्य-भार से लदे रहने पर भी अपनी व्रतों का निर्वाह करने का ध्यान रखते हैं। अपनी धोतियों के बारे में उन्होंने निश्चय किया है कि जितनी धोतियों के लायक वह खुद सूत कातेंगे उतनी ही धोतियाँ पहनेंगे। अगर कोई प्रेमपूर्वक सूत कात कर उपहार दे तो उससे बुनी धोती पहिन लेंगे, पर उतनी ही धोतियाँ अपने सूत की किसी जरूरतमन्द को दे देंगे।

---

[४]

विश्लेषण और अध्ययन

"काँग्रेस त्रिगुट में पटेल उसकी कठोर मुष्टिका हैं, मौलाना आज़ाद उसका मस्तिष्क हैं तो राजेन्द्रप्रसाद उसका हृदय हैं।"

—जान गुंथर ('इनसाइड एशिया' में)

जब हम राजेन्द्रबाबू के जीवन पर दृष्टिपात करते हैं तो हमारे सामने तैंतीस वर्ष पहले का एक दृश्य आ जाता है जिसका उल्लेख स्व० श्री व्रजमोहन वर्मा ने अपने लेख में किया था और जो उन्हीं के शब्दों में यों है—

"सन् १९१७ की एक रात। नौ बजे के बाद का समय। बिहार प्रांत के मोतीहारी नामक देहाती कस्बे की धुंधली सड़क पर दो लदे-फदे देहाती पैदल जा रहे थे।

एक का कद साधारण, शरीर दुबला, ललाट चौड़ा, बाल छोटे, आँखें चमकदार, कान बड़े-बड़े और बाहर की ओर उभड़े हुए, मूँछें छोटी-छोटी और कटी हुई, ठोढ़ी छोटी और भुजाएँ लम्बी थीं; बदन पर गाढ़े की मोटी धोती और गाढ़े की देहाती चौबन्दी मिर्जई थी।

दूसरे का कद लम्बा, माथा प्रशस्त, भौंहें घनी, आँखें गढ़े में धुसी हुई, नाक लम्बी, गाल चपटे और मूँछें बड़ी-बड़ी किन्तु बिखरी हुई और अस्त-व्यस्त थीं। पोशाक में, उसकी कमर में भी पहले देहाती के समान ही मोटी धोती थी; परन्तु बदन पर मिर्जई की जगह गाढ़े का कुर्ता था। दोनों के सिर पर गठरी-मुठरी और बिस्तर-बर्तन लदे थे।

मोतीहारी की उस धुँधुली रात में लदे-फदे चलनेवाले इन व्यक्तियों में एक नाम है मोहनदास कर्मचन्द गांधी और दूसरे का राजेन्द्रप्रसाद।"

इस पर विचार करते हुए पहली बात जो हमारे दिल में आती है, यह है कि आरम्भ से अन्त तक राजेन्द्रबाबू एक सेवक हैं। इस सेवा को गांधीजी के प्रभाव ने उज्ज्वल कर दिया है। आज, इसलिए, सेवक के साथ वह किञ्चित् साधक भी हो गये हैं। और उन्होंने एक सीधा भक्ति एवं श्रद्धा का मार्ग पकड़ा है। इस मार्ग में सन्देह नहीं है, शंका नहीं है, संशय नहीं है। यह विश्वास का पथ है; यह आत्मदान का राजमार्ग है। गङ्गा के समान मानवता के विशाल क्षेत्र में यह नदी बह रही है। इसमें सोन की उग्रता नहीं और नर्मदा की वक्रता भी नहीं। इसकी अपनी एक ही धुन है और एक ही आकांक्षा है—दरिद्र नारायण की सेवा। इस सेवा में सत्य उसका लक्ष्य है, अहिंसा उसका साधन है और निष्कपट हृदय उसका प्रबल अस्त्र है।

यह निष्कपटता राजेन्द्रबाबू की एक विशेषता है। राजनीति? इसने किसे प्रभावित नहीं किया और किस सत्यवादी का अहंकार इसने नहीं तोड़ा है? इसे बहुत कम सधवा रख सके; वेश्या के समान अधिकांश का जीवन-सत्व इसने हर लिया है। इसने निर्मल हृदयों में प्रमाद की सृष्टि की; इसने निःस्वार्थ सेवकों में अधिकार की प्यास जगाई; इसने मनुष्य को संकुचित, निद्रालु, उन्मत्त और स्वार्थी बनाया। इस क्षेत्र में आकर कितने अपने बचपन का हृदय रख सके? गांधीजी के अनुयायियों में राजाजी! विलक्षण राजनीतिज्ञ एवं अत्यन्त त्यागी पर चाणक्य के समान विरोधी की जड़ उखाड़ फेंकनेवाले! वल्लभभाई? जिसका बाना और जिसकी रहन-सहन किसान की थी पर जो हृदय में राजा था; सरदार से तो किसी तरह कम नहीं। पट्टाभि? गांधीवाद के सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्ष का सर्वोत्तम भाष्यकार—'इण्टरप्रेटर' पर अपनी बुद्धि पर और उससे भी अधिक अपने 'विट' पर जरूरत से ज्यादा आसक्त! पर राजेंद्रबाबू! उनकी सरलता को कौन स्पर्श करेगा? और अहङ्कार? मानों इस व्यक्ति ने जीवन के इस

पक्ष को कभी जाना ही नहीं! अन्तःकरण के तेज और तप में अहंकार गल गया है। उदारता की एक मूर्ति—अधिकार की तृषा ने जिसके दामन को कभी हाथ नहीं लगाया! जैसे इस व्यक्ति में जो कुछ है, त्याग ही त्याग, सेवा ही सेवा है; श्रद्धा ही श्रद्धा है। जैसे उसने अपने लिए कुछ रखा ही नहीं है और राष्ट्र में कुछ यों एकाकार हो गया है जैसे नदी सिन्धु में खो जाती है! यहाँ सन्देह का धुँआ नहीं है; यह निर्धूम अंगार है। राजेन्द्रबाबू का जीवन मानों अश्रद्धालु से, सन्देही से गेटी के शब्दों में चिल्लाकर कह रहा है—

"If you have only faith, give me,for Heaven's sake, a share of it, but your doubts you may keep to yourself......"

(अर्थात् यदि तुममें निष्ठा हो तो ईश्वर के लिए मुझे भी उसका एक टुकड़ा दे दो किन्तु अपने सन्देह अपने पास ही रखो।)

\+ \+ \+

राजेन्द्रबाबू गांधी जी के उन दो-चार निकट के सहयोगियों में हैं जिन्होंने उनकी आत्म-भावना को ग्रहण कर लिया है। छूछे राजनीतिक शास्त्रार्थों से वह बहुत बचते हैं। उनका क्षेत्र ठोस सेवा का क्षेत्र है। इसलिए वह बहस-मुबाहसों में बहुत कम पड़ते हैं और जब पड़ते हैं तो बड़ी वेदना और अनिच्छा के साथ। विवशता की रेखाएँ उनके चेहरे पर होती हैं मानों कह रही हों कि यह हमारा क्षेत्र नहीं है; इसमें हमें मत घसीटो। जब से वह सेवा की राजनीति के क्षेत्र में आये हैं, बिना किसी आशा, पुरस्कार या प्रतीक्षा के चुपचाप काम कर रहे हैं। जैसे इस काम में, इस सेवा में ही वह अपने को खोकर जो कुछ पाना था, पा गये हों। जैसे अपने ही अपने में वह तृप्त हो रहे हों और इस सेवा में संपूर्ण आत्मदान करने का मूल्य भी उनको मिल ही गया है। अन्य

प्रान्तों में जहाँ किसी नेता के नेतृत्व के विषय में उसके नाम के आगे प्रश्न-चिह्न लगाया जाता है, तहाँ बिहार में हर प्रकार के देश-सेवक राजेन्द्रबाबू को अपना नेता मानते हैं। उसका एक कारण यह भी है कि दिल दुखनेवाले व्यंग-बाण उनकी जिह्वा से नहीं निकलते; उनमें अधिकार के लिए प्रमाद और आत्म-वञ्चना नहीं है और न ईर्ष्या द्वेष है। उनकी सेवा का क्षेत्र इतना महान् है कि उसमें हर प्रकार के जन-सेवक का स्वागत है।

और राजेन्द्रबाबू जब कार्य कर रहे हों या देश का दौरा करते हों तो उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। यह पतला-दुबला, दमे का रोगी अटपटा और बेढब सा जो दीखता है, राष्ट्रीय महासभा के शरीर में निरंतर जाग्रत रहा है—निरंतर चल रहा है, जैसे हृदय हो जिसे एक मिनट ठहरने की फुर्सत नहीं और जिसका ठहरना ही शरीर की मृत्यु है। बम्बई कांग्रेस जब होने जा रही थी तब कुछ राजेन्द्रबाबू को ठीक न जानने वाले लोगों ने उन्हें देखा और कहा—'यह गँवार-सा, यह 'सिम्पुलटन' ऐसे कठिन समय में कांग्रेस का पथ-प्रदर्शन क्या करेगा? चुपचाप सेवा भले कर ले!' पर बम्बई कांग्रेस समाप्त होते होते वह आशंका का प्रश्न-चिह्न, प्रशंसा के आश्चर्यजनक उद्‌गारों में बदल गया और सारा देश इस शरीर से सतत रोगी, पर हृदय से सदा जवान राष्ट्रपति की असाधारण कार्य-क्षमता देखकर चकित हो गया। १९२० ई० के बाद कोई राष्ट्रपति ऐसा नहीं हुआ था जिसे कांग्रेस इतनी विशृंखल और बुरी दशा में प्राप्त हुई हो पर उन्होंने अपने अथक परिश्रम से उसे नियमित एवं जीवित बना दिया। उनकी तरह पूरे वर्ष देश के भिन्न-भिन्न भागों का दौरा, सिवाय पं० जवाहरलाल के, दूसरे किसी नेता ने नहीं किया और उन्हें जिस रूप में कांग्रेस मिली थी उससे कहीं अच्छे और व्यवस्थित रूप में उसे उन्होंने उत्तराधिकारी जवाहरलाल को सौंपा।

फिर कर्त्तृत्व के साथ राजेन्द्रबाबू को भगवान् ने वाणी भी दी है। उनके भाषण सरल, सम्बद्ध, विवेकयुक्त और दिल को छूनेवाले होते हैं। इस विषय में उनका ढंग एक अध्यापक का ढंग है। उनमें राजनीतिज्ञ की, घुमा फिराकर बात करने, की पटुता आपको न मिलेगी। वह प्रश्नों और समस्याओं को आपके सामने सुलझे हुए रूप में रख देते हैं। हिन्दी और अंग्रेजी पर उनका असाधारण अधिकार है। उनकी मीठी, मोतियों की लड़ी-सी, हिन्दी का श्रोता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। हिन्दी और हिन्दी साहित्य के यह न केवल प्रेमी हैं बल्कि सेवक भी हैं। उनकी 'आत्मकथा' इसका प्रमाण है।

राजेन्द्र बाबू में बुद्धि और भावना का बड़ा सुन्दर समन्वय हम देखते हैं। जहाँ उनका विवेक जाग्रत है तहाँ भावना का भी उनमें सुन्दर विकास हुआ है। कभी-कभी विनय पत्रिका के पद गाते-गाते वह विह्वल हो जाते हैं।

—और राजेन्द्रबाबू का विश्लेषण क्या किया जाय? उनके टुकड़े नहीं किये जा सकते। यहाँ तो सब दूध ही दूध है। इसमें मिलावट नहीं, पानी नहीं। उनके रंग-रूप और उनकी आन्तरिक महत्ता दोनों को देखकर तो ऐसा मलूम होता है मानो एक अटपटी और बेडोल हाँडी में भगवान् ने आकण्ठ अमृत भर दिया हो। जीवनी-लेखक ऐसे व्यक्ति का क्या चित्रण करे? उनका तो जो भी चित्र बनेगा उसे ही अर्घ्य देने में दिल को ललचेगा और मन बेकल होगा।

गांधी युग की भारतीय राजनीति को जिसने सेवा, आडम्बरहीन निष्ठा और श्रद्धा का दान किया है; जो स्वभाव से ही किसी का अकल्याण चाहने में असमर्थ है, जो दूसरों के प्रति पूर्ण ईमानदार है—इसलिए कि वह अपने प्रति ईमानदार है—यह राजेन्द्र प्रसाद हैं।

गांधीजी भारत की आत्मा के प्रतीक थे। वह भारतीय चरित्र के 'समटोटल'—प्रतिनिधिचित्र की भाँति हैं। पं० जवाहरलाल पश्चिम के संसर्ग से प्रदीप्त भारत की अभिव्यक्ति हैं। उनमें भारतीय जागरण का राजसिक प्रकाश है। वल्लभभाई जाग्रत एवं अपने अधिकारों की प्रगति के लिए सन्नद्ध राष्ट्रीय भारत की भुजा थे। सेनापति की भाँति मौन पर समय अपने पर वज्र-प्रहार में आगे। राजेन्द्रबाबू परिष्कृत श्रद्धा, प्रबुद्ध आत्मार्पण और सजग कर्तव्य निष्ठा के प्रतीक हैं। वह भारत के हृदय—अकृत्रिम पर जीवन की धड़कन के सूचक—के प्रतिनिधि हैं।

यह सशरीर सेवा! यह जीवित श्रद्धा! यह मूर्त्त-त्याग! इसे हम क्या कहें? इसे तो हम ले ही ले सकते हैं और वह देने में कब कुण्ठित हुआ है; उसने आत्मदान में कब प्रवञ्चना की है?



अबुल कलाम आज़ाद

•••

जन्म : १८८८ ई०

[१]

एक चित्र

१६२० के तूफानी दिनों में सबसे पहले मौलाना आजाद को मुस्लिम देशों की राजनीति पर बोलते हुए सुना था। लम्बा कद, तेज से जगमगाता चेहरा, ठुड्डी की बनावट ऐसी जिससे दृढ़ता का बोध होता था, चश्मे के अन्दर से चमकती आँखें, सिर पर रेशमी साफा— भाषा पर ऐसा अधिकार, मानों कोई उसे नचा रहा हो, जिधर चाहा मोड़ दिया ! वसंत की सुरभित प्रभाती वायु जैसे कलियों के पटल खोल देती है तैसे ही उनके शब्दों के स्पर्श से एक अदृश्य भाव-जगत् अनावृत होता जा रहा था। एक-एक शब्द शक्ति के दूत से, पर मोती की लड़ियों की भाँति, परस्पर गुँथे हुए, जैसे कोई कलाविद भाषा की प्रच्छन्न कला को मूर्त्तिमान कर रहा हो। कांग्रेस के गांधीयुग के नेताओं में वाणी का ऐसा चमत्कार केवल भूलाभाई में और रहा है। जैसे उनकी अंग्रेजी सुनने के लिए बहुत से लोग उनकी सभाओं में जाते थे तैसे मौलाना आजाद की चुस्त, मुहाविरेदार, शक्ति और सभ्यता से भरी उर्दू सुनना एक सौभाग्य की बात है।

उन्हीं दिनों एक दिन मौलाना को गीता पढ़ने का प्रयत्न करते हुए देखा। तबसे बहुत बार उन्हें दूर और नजदीक से देखा है। चेहरे और रङ्ग-ढङ्ग में अनेक परिवर्तन हो गये हैं। साफा अब शायद ही कभी दिखाई देता है; २५-३० वर्षों के संघर्ष ने चेहरे के उस तारुण्य पर प्रौढ़ता का रङ्ग चढ़ा दिया है, पर आन्तरिक रूप से मौलाना वही हैं; विद्रोह की भावना से उबलते हुए—विद्रोह की भावना, जो इस्लाम धर्म के गहरे अध्ययन से एक धार्मिक विश्वास की भाँति उनमें

विकसित हुई हैं और जिसके आगे सब भावनाएँ अशक्त हैं। जो दिलों में स्वप्न और आकांक्षाएँ ही नहीं पैदा करती जलजले की तरह जो कुछ अन्दर बाहर है उन सबको हिला देती है।

\+ × ×

इस समय भारतीय सार्वजनिक जीवन में मौलाना शायद सब रंगीन और दर्शनीय ('पिक्चरस्क') व्यक्तित्व हैं। एक धर्माचार्य का रक्त जिनकी नसों में दौड़ रहा है; इस्लाम धर्म, संस्कृति और दर्शन के गहरे जानकार जिनके इस विषय के ज्ञान की सीमा लाँघनेवाला आज कोई दिखाई नहीं देता और चंद ही ऐसे व्यक्ति होंगे जो उसके पास तक पहुँचने का दावा कर सकते हैं। परंतु यह सब ज्ञान उन्होंने माता के चरणों में चढ़ाकर उसे बन्धनमुक्त करने का बीड़ा उठाया। कोई आदमी अपने उपनाम के प्रति इतना वफादार न होगा, कोई नाम अपने ग्राहक के अनुपात में इतना सार्थक न होगा, जितना मौलना अपने 'आज़ाद' उपनाम के प्रति हैं, या जितना 'आजाद' उपनाम सार्थक है। मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए शायद ही किसी और मुसलमान भारतीय ने इतनी लगन और इतनी निर्भीकता से काम किया होगा?

[२]

जीवन-कथा

मौलाना आज़ाद सोलहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध मुसलमान सन्त हजरत शेख जमालुद्दीन के वंशधर हैं। शेख जमालुद्दीन अपने समय में मुस्लिम धर्मशास्त्रों के आचार्य माने जाते थे। उनके हजारों शिष्य थे और उनका हदीस का भाष्य आजतक प्रमाण-रूप माना जाता है। अकबर के विद्या-प्रेम के कारण अनेक देशों से आकर अनेक ज्ञानी और पण्डित उसके दरबार में एकत्र हुए थे। शेख जमालुद्दीन भी दिल्ली आये। अकबर पर उनकी विद्वत्ता का बड़ा प्रभाव पड़ा और अकबर के काकलभाई या धात्रीपुत्र मिर्जा अजीज कोकलताश उनमें बड़ी श्रद्धा रखते थे। अकबर ने उनको धर्मशिक्षा कालेज की अध्यक्षता और जागीर आदि देकर सम्मानित करने की इच्छा प्रकट की परन्तु शेख जमालुद्दीन ने उसे ठुकरा दिया और कहा—'दारिद्र्य हमारा भूषण है। राजा का दान ग्रहण करके मैं अपनी आत्मा को कुण्ठित न करूँगा।" जब 'दीनेइलाही' नामक एक नये धर्म का सङ्गठन आरम्भ हुआ और अबुलफजल तथा अन्य अनेक प्रतिष्ठित मुल्लाओं ने बादशाह को धार्मिक और आध्यात्मिक नेता भी घोषित किया तब जमालुद्दीन से भी उस घोषणा का समर्थन करने को कहा गया परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। फलतः वह सम्राट् के कोपभाजन हुए और मक्का चले गये।

इनके एक और पूर्व पुरुष शेख मुहम्मद जहाँगीर के समकालिक थे। उन दिनों उल्मा भी बादशाह को कोर्निस करते थे परंतु शेख मुहम्मद ने जहांगीर को झुककर सलाम करना स्वीकार न किया; कहा— "अभिवादन केवल खुदाताला को प्राप्य है।" जहांगीर की आज्ञा

से चार वर्ष तक ग्वालियर के किले में नजरबन्द रखे गये। सत्ता के दम्भ के सामने सिर न झुकाने की यह विद्रोहवृत्ति मौलाना आजाद के पूर्वजों में बराबर रही है। इनके प्रपितामह शेख सिराजुद्दीन के सिवा किसी ने कभी कोई सरकारी नौकरी स्वीकार नहीं की। दादा और दादी दोनों पक्षों से मौलाना अपने पूर्वजों में अनेक प्रतिष्ठित पंडितों और धर्मचार्यों के नाम गिना सकते हैं।

मौलाना के पिता मौलाना खैरुद्दीन भी सूफी पंडित थे। अरबी फारसी में उन्होंने कई मूल्यवान ग्रंथ लिखे। वह एक बड़े आध्यात्मिक साधक थे। दिल्ली, गुजरात, काठियावाड़, बम्बई और कलकत्ते में उनके अनेक शिष्य थे। १८५७ के गदर के दिनों में उनको भारत छोड़कर मक्का जाना पड़ा। इस्लाम जगत् के तात्कालिक खलीफा अब्दुल हमीद ने उन्हें टर्की बुला लिया जहाँ वह तीन साल तक रहे। वहाँ उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं और वे प्रकाशित भी हुईं। फिर मक्का लौट आये। १८७२ ई० में उन्होंने मक्का की 'जुबैदा नहर' के संस्कार और सफाई की आवश्यकता का अनुभव करके उसके लिए आंदोलन किया और ११ लाख रुपये जमा करके उसकी काया पलट दी। वहीं, मक्का के प्रसिद्ध विद्वान शेख मुहम्मद जहीर की विदुषी कन्या के साथ आपका विवाह हो गया। दिसम्बर १८८८ ई० में मक्का में मौलाना आजाद का जन्म हुआ। इनका असल नाम अहमद था और पिता इन्हें फ़ीरोजबख्त के नाम से पुकारते थे।

अहमद या मौलाना आजाद का लड़कपन मक्का और मदीना में बीता। इनकी मातृभाषा अरबी है। अहमद ने आरम्भ में माता से अरबी सीखी; फिर पिता से फारसी और उर्दू पढ़ी। इनके पिता का घर एक विद्या-केन्द्र बन गया था। इसलिए आरम्भ से विद्याध्ययन के उत्तम संस्कार इनके मन पर प्रभाव डाल रहे थे। कुछ दिनों तक इन्होंने

मिश्र की 'अल-अजहर' युनिवर्सिटी में (जो विद्यार्थियों की संख्या की दृष्टि से संसार की सबसे बड़ी युनिवर्सिटी है) भी शिक्षा प्राप्त की। १४ साल की उम्र में इन्होंने सम्पूर्ण शिक्षा समाप्त करली—यहाँ तक कि कई कक्षाओं में पढ़ाने का कार्य भी इनसे लिया जाने लगा। उस समय भी इन्हें एक 'बौद्धिक चमत्कार' ही समझा जाता था।

जब यह हिन्दुस्तान आये तो सिर्फ १५ वर्ष की उम्र में (१९०३ ई०) में) एक साहित्यिक मासिक पत्रिका ('लिसानुल सिद्दीक'=सच्ची जुबान) का सम्पादन और प्रकाशन शुरू किया। स्व० मौलाना अल्ताफ़-हुसेन 'हाली' उससे बड़े प्रभावित थे। १९०४ ई० में जब मौलाना हाली से इनकी भेंट हुई तो उनको विश्वास नहीं हुआ कि यह १६ वर्ष का लड़का ऐसी उच्चकोटि की पत्रिका का सम्पादक 'आजाद' है। जब उनको असलियत मालूम हुई तो वह आश्चर्यमुग्ध हो गये और जीवन भर 'आजाद' के प्रशंसक रहे। १४ वर्ष की उम्र में ही 'आजाद' ने अरबी भाषा और साहित्य के गम्भीर विद्वान् मौलाना शिबली से पत्राचार आरम्भ किया और लाहौर के 'मखजन' में भी कुछ महत्वपूर्ण लेख लिखे। १९०४ ई० में जब यह मौलाना शिबली से बम्बई में मिले तो वह अबुलकलाम आजाद की रचनाओं की देर तक प्रशंसा करते रहे। उन्होंने इनको 'आजाद' न समझ कर उनका लड़का समझा। जब उन्हें मालूम हुआ कि यह लड़का ही अबुलकलाम है तो वह आश्चर्य से अभिभूत हो गये। नवाब मोहसिनुलमुल्क सदा इनको 'उम्र में बच्चे इल्म में बूढ़े' लिखा करते थे। मुस्तफा कमाल, जगलूल पाशा तथा विदेशों के कितने ही मुसलमान विद्वान इनकी कृतियों के बड़े प्रशंसक थे और इनकी रचनाओं के अनुवाद फारसी, तुर्की आदि कई भाषाओं में हो चुके हैं।

१९०७ ई० में इनके पिता कलकत्ता के अपने अनेक शिष्यों के अनुरोध पर स्थायी रूप से कलकत्ता में बस गये। १९०९ में जब उनकी

मृत्यु हो गई तो आजाद से उनका स्थान ग्रहण करने का अनुरोध किया गया पर इन्होंने स्वीकार न किया और शिष्य भी नहीं बनाये।

इन दिनों मौलाना आजाद के मन पर मुस्लिम देशों में चलने वाले कूटनीतिक षड्यन्त्रों का बड़ा प्रभाव पड़ रहा था। इन देशों में रह चुकने के कारण वहाँ की स्थिति का इनको बहुत अच्छा ज्ञान था और जिस प्रकार उनकी स्वतन्त्रता अपहरण की जा रही थी उससे इनके मन में बड़ी खीझ थी। मुसलमानों को स्वतन्त्रता का संदेश देने को यह व्याकुल थे। १९१२ ई० में इन्होंने अपने विचारों के प्रचार के लिए कलकत्ते से 'अल-हिलाल' नाम का पत्र निकाला जो अपने ढङ्ग का भारत में एक ही पत्र था, और सामग्री तथा गेट-अप दोनों दृष्टियों से यूरोप के उच्च कोटि के पत्रों की टक्कर का था। विचार और अभिव्यक्ति दोनों में इन्होंने एक सर्वथा नूतन शैली का आविष्कार किया जिसने उर्दू गद्य की काया पलट दी और पिछले ३० वर्षों में सैकड़ों लेखकों को अनुप्राणित किया। मौलाना आजाद इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि गुलाम मुसलमान संसार के लिए खतरा है और मुस्लिम विचार-धारा में क्रान्ति होने की बड़ी आवश्यकता है। 'अल-हिलाल' इसी मानसिक क्रांति का एक साधन था। अपने राजनीतिक निबन्धों के साथ धार्मिक विषयों पर भी इन्होंने नया प्रकाश डालना शुरू किया जिससे जीर्ण और जड़ परम्पराओं से ऊबे हुए अनेक मुसलमान युवकों ने नूतन स्फूर्ति ग्रहण की। मौलाना आजाद ने धार्मिक क्षेत्र में बौद्धिक और विवेकपूर्ण समीक्षा का एक नया अध्याय आरम्भ किया। उस समय के कवि 'इकबाल' की भाँति इन्होंने भी भारत के मुसलमानों को जीवन के मौलिक और महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करने की प्रेरणा दी।

'अल-हिलाल' ने उर्दू पत्रकारकला में क्रान्ति कर दी। निकलने के दो तीन महीनों के अन्दर ही वह अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। एक

तरफ वह प्रगतिशील राजनीतिक विचारधारा तथा धर्म-विवेक की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन बन गया, दूसरी ओर साहित्य-रचना का श्रेष्ठ उदाहरण। आजतक उसकी पुरानी प्रतियों की माँग है।

अब तक शिक्षित मुसलमान, राजनीति और धर्म दोनों के विषय में अलीगढ़ स्कूल की विचारधारा का पालन करते थे। अलीगढ़ ही उनकी स्फूर्ति का केन्द्र था। भारत की मुस्लिम राजनीति के प्रत्येक विद्यार्थी को मालूम है कि सर सैयद अहमद खाँ कांग्रेस के एक अधिवेशन में शामिल होने के बाद उससे मुसलमानों को अलग कर लेने के प्रयत्न में थे। अलीगढ़ में इस उद्देश्य से उन्होंने मुसलमानों की शिक्षा का काम अपने हाथ में लिया। उनका उद्देश्य राजनीति से मुसलमानों को हटाकर उनको राजभक्त बनाना था। १६०६ में, सरकारी प्रेरणा और पथप्रदर्शन में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई और उसे मुस्लिम राजनीति की अभिव्यक्ति का साधन बनाया गया। उस समय मुस्लिम लीग का घोषित ध्येय ब्रिटिश ताज के प्रति वफादारी का प्रसार करना था। ब्रिटिश अफसर लीग को अपने राजनीतिक हथकण्डों का साधनमात्र समझते थे। इस विचारधारा का नाम अलीगढ़ स्कूल था। और इसका उस समय शिक्षित मुसलमानों पर इतना असर था कि जब स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद अली ने १६११ ई० में कलकत्ता से अपना पत्र 'कामरेड' निकाला तब शुरू-शुरू में उन्होंने भी अलीगढ़ स्कूल का ही अनुगमन किया। मौलाना अबुलकलाम ने, अपने पत्र में, इस स्कूल (विचार-धारा) के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन चलाया और मुसलमानों से अपील की कि वे स्वदेश को गुलामी के बन्धनों से मुक्त करने में कांग्रेस का साथ दें। पुराने ख्याल के राजनीतिज्ञ इससे चकित और भीत हुए। मौलाना मुहम्मद अली तक ने मुसलमानों पर पड़ रहे 'अल हिलाल' के प्रभाव को दूर करने में पुराने ख्याल के लोगों का साथ दिया। 'अल-हिलाल' अपने लक्ष्य में दृढ़ रहा। धीरे-धीरे उसका

प्रभाव बढ़ता गया और प्रगतिशील मुसलमानों की अभिव्यक्ति का मुख्य साधन और प्रकाश-केन्द्र बन गया। इससे लोगों के विचारों में बड़ी खलबली मच गई।

अन्त में सरकार ने दमन का अस्त्र सँभाला। पत्र के ऊपर प्रेस ऐक्ट के प्रहार होने लगे। कई बार ज़मानतें माँगी गईं पर मौलाना आज़ाद इन कठिनाइयों के बीच भी उसे निकालते रहे। पार्लमेंट तक में उसकी चर्चा हुई। उसके मज़मूनों की निगरानी के लिए ब्यूरो बनाया गया। और आखिर में १० हज़ार की जमानत माँग ली गई। सरकार और उसके पीछे की पश्चाद्गामी शक्तियाँ उसे खत्म करने पर तुली हुई थीं। उसे कहाँ तक बचाया जा सकता था। महा-युद्ध शुरू हो चुका था। और एशिया के मुस्लिम देशों में ब्रिटिश सरकार द्वारा अनेक कूट-नीतिक चालें चली जा रही थीं। ऐसी अवस्था में इस प्रकार के पत्र का प्रकाशन सरकार कभी सहन न कर सकती थी। अन्त में, १९१५ में भारतरक्षा-विधान (डिफेंस आव इण्डिया ऐक्ट) के प्रहार से वह बन्द हो गया। तब से उसकी नक़ल करने के अनेक प्रयत्न किये जा चुके हैं पर न तो अन्तरङ्ग सामग्री में, न गेट-अप में ही, कोई उसकी समता, आज तक, कर सका है।

अबुलकलाम यों हार माननेवाले व्यक्ति न थे। 'अल-हिलाल' के बन्द होते ही इन्होंने १९१६ ई० में 'अल-बलाग़' का प्रकाशन शुरूकर दिया। इस समय सरकार इनके पीछे पड़ी हुई थी। पंजाब, युक्तप्रांत, बम्बई तथा अन्य कई प्रांतों की सरकारों ने अपनी शासन-सीमा में इनके आने का निषेध पहले ही कर दिया था। 'अल-बलाग' के निक-लने के चन्द महीने बाद ही बंगाल सरकार ने भी इनको निर्वासित कर दिया। अब बिहार बच रहा था। वह कलकत्ता से राँची चले गये परन्तु सरकार से यह भी सहन नहीं हुआ। राँची में रहते इन्हें पाँच ही महीने हुए थे कि नज़रबन्द कर दिये गये और फिर महायुद्ध की

समाप्ति के बहुत दिनों बाद, १९२० ई० में, मुक्त हुए। मुक्ति के बाद भारत के उलमा की ओर से उनका स्वागत और अभिनन्दन किया गया। अबुलकलाम की रचनाओं और वक्तृताओं से भारतीय मुसलमानों के दृष्टिकोण में जो परिवर्तन हो रहा था वह १९१३ से उस समय की मुस्लिम लीग तक में व्यक्त हुआ। १९१३ ई० में सर सैयद वजीरहसन (तब सैयद वजीरहसन) लीग के मन्त्री की हैसियत से मौलाना से मिले और लीग का लक्ष्य बदलकर 'स्वायत्त शासन का एक वाञ्छनीय रूप प्राप्त करना' हो गया—यद्यपि मौलाना आज़ाद इतने से भी संतुष्ट न थे।

१९२० से इन्होंने पूर्णतः गांधी जी के साथ कांग्रेस कार्यक्रम को अपना लिया। और तबसे बराबर गांधीजी प्रवर्तित अहिंसात्मक आंदोलनों का समर्थन किया। यह मुस्लिम लीग, कांग्रेस और आल-इंडिया खिलाफ़त कमेटी तीनों के अध्यक्ष रह चुके हैं और १९४६ ई० तक राष्ट्रपति थे। १९२३ ई० में देशबंधुदास और पं० मोतीलाल का साथ देकर इन्होंने पुराने स्वराज्य दल में जान डाल दी। १९२३ के अन्तिम चतुर्थांश में परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियों का झगड़ा पराकाष्ठा पर पहुँच गया और निश्चय हुआ कि कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन करके इस प्रश्न का निर्णय किया जाय। हिंदू और मुसलमान दोनों प्रकार के कांग्रेसी दो दलों में विभाजित थे। मुसलमानों में स्व० हकीम अजमल खाँ, मौ० आजाद वगैरा परिवर्तन-वादी या स्वराजी दल में थे और स्व० मौलाना मुहम्मदअली और स्व० डा० अंसारी वगैरा अपरिवर्तनवादी दल में थे। दिल्ली के इस ऐतिहासिक विशेषाधिवेशन के अध्यक्ष मौ० आज़ाद ही चुने गये और इस अधिवेशन में कौंसिल प्रवेश की अनुमति दे दी गई। तब से मौलाना आज़ाद बराबर 'दो मोर्चों की (यानी कौंसिलों के भीतर और बाहर) नीति' के समर्थक रहे हैं। १९२४ ई० में इन्होंने वर्ष में कुछ महीने

दिल्ली में रहने का निश्चय किया। विचार यह था कि साहित्यिक प्रवृत्तियों में भी भाग लें और राजनीति के कारण रचनाओं का जो क्रम भङ्ग हो गया था उसे फिर से जारी करें। उनके कुरान के अनुवाद और भाष्य को प्रकाशित करने के लिए दिल्ली में एक प्रेस खोला गया लेकिन कामों की भीड़ के कारण वहाँ अधिक समय तक रहने का निश्चय चल न सका और 'आज़ाद' कलकत्ता लौट गये। इनका कुरान का अनुवाद और उसका भाष्य इनकी एक लोकप्रिय रचना है।

कांग्रेस से आपका सम्बन्ध कभी भंग नहीं हुआ। १९२० से आज तक बराबर उसके प्रभावशाली नेताओं में रहे हैं। मुस्लिम लीग ने जब पश्चाद्‌गामी प्रवृत्तियों को अपनाया तब यह उससे अलग हो गये पर 'जमैयतुल उलमाए हिन्द' से, जो लाखों अनुयायी रखने वाले मुस्लिम धर्माचार्यों और विद्वानों की भारत में सबसे शक्तिमान संस्था है, बराबर उनका सम्पर्क रहा है। खिलाफत आन्दोलन के समय यह संस्था मुसलमानों को आज्ञा देती थी और उसका पालन अक्षरशः होता था। आश्चर्य की बात है कि उस समय के सब प्रगति-विरोधी, जो जमैयत से दबे हुए थे, मौक़ा पाकर बाद में उठ खड़े हुए और इस्लामधर्म की रक्षा के नाम पर उन्होंने मुसलमानों को राष्ट्रीयता के मार्ग से विरत किया। कांग्रेस के कट्टर समर्थक बहुत से मुसलमान नेता और कार्यकर्त्ता उससे अलग हो गये पर मौलाना आज़ाद उसी प्रकार राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की पताका ऊँची किये अपने स्थान पर डटे रहे हैं। हमारे देश के अत्यन्त संकटग्रस्त काल में वह राष्ट्रपति रहे और राष्ट्र की पताका को सदा उन्होंने ऊँचा रखा। १९४२ से १९४५ तक अन्य नेताओं के साथ अहमदनगर के किले में कैद रहे। इसके बाद समझौते की वार्ताओं में बराबर भाग लिया। भारत के विभा[illegible] के फलस्वरूप हुई अमानुषिक घटनावलियों में भी वह अविचल रहे इस समय स्वतंत्र भारत-सरकार के शिक्षा-सचिव हैं।

[३]

अध्ययन

बादल घिरे हैं। धुँआधार वर्षा होने लगी। विजलियाँ कड़क रही हैं और तूफानी हवाओं के कारण वृक्ष टूट-टूटकर गिर रहे हैं। मैं पहाड़ी पर बँगले के एक कमरे में सब कुछ बन्द कर एक छोटी खिड़की खोले प्रकृति का भयानक ताण्डव देख रहा हूँ। दिल काँप रहा है। ऐसा जान पड़ता है कि आज कुछ न बचेगा। कड़कड़ाते हुए, टकराते हुए बादलों के कारण सारा शरीर कण्टकित हो उठता है। भय, शङ्का, आशा, निराशा के झकोरों में उलझा और डगमग कर रहे विश्वास के ज्वारभाटे के बीच बैठा मैं संकुचित होकर सब देख रहा हूँ। आज क्या होगा ? पास का दीपक बुझ गया है। क्या अन्दर जो आशा का दीपक है वह भी बुझ जायगा ? सहसा दृष्टि सामने जाती है। तूफानों के बीच एक चोटी अचल सी है। जो कुछ हो रहा है वह मानों उसके लिए नहीं है। विजलियाँ उसका उपहास करती हैं, हवाएँ उससे टकराती हैं, बादल उसपर गहरी वर्षा करते हैं और उसे घेर लेते हैं पर वह है कि सिर उठाये, चिरन्तन दृढ़ता के प्रतीक-सी दायें-बायें आगे-पीछे के इन हास्यास्पद प्रयत्नों पर कुछ मुस्कराती-सी खड़ी है !

सतपुड़ा के अञ्चल में बैठकर एक दिन मैंने यह दृश्य देखा था। दिन पर दिन, महीने पर महीने बीतते गये हैं पर वह दृश्य अपने अदृश्य पद-चिह्न छोड़कर मानों आगे बढ़ गया है। भूल कर भी मैं उसे भूलता नहीं हूँ। और जब कभी मौलाना आजाद को देखता हूँ, तो मानों उसी दृश्य को देखता हूँ। प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच अचल, एक मार्ग जिसने चुन लिया है और उस पर जाना ही अब

जिसके लिए सत्य है; कोई प्रलोभन जिसे मार्ग-भ्रष्ट नहीं कर सकता; कोई उत्तेजन जिसे दिङ्-मूढ़ करने में असमर्थ है—यह हैं अबुल कलाम आज़ाद।

अलीगढ़ पार्टी द्वारा मिलने वाली कत्ल की धमकियाँ जिसे राष्ट्रीयता के मार्ग से हटा न सकीं; भारत, मिश्र, टर्की, इराक़ और अरब के हजारों मुसलमानों के लिए गुरु रूप होकर भी काबुल के मुरतिदों (इस्लाम धर्म छोड़कर अन्य धर्म स्वीकार करने वालों) पर होनेवाले अत्याचारों का विरोध करने में जो नहीं चूका और कराची के नाथूराम महाराज की हत्या करने वाले हत्यारे, अब्दुल कयूम को जब सम्प्रदायवादी मुसलमान गाजी कहकर आग भड़का रहे थे तब अत्यन्त निर्भीकता से जिसने उसकी निन्दा की; जो उस सैलाब में भी अचल रहा जिसमें मौलाना मुहम्मद अली, ला० लाजपतराय और मालवीय जी तक बह गये, उस दृढ़ता और निर्भीकता के प्रतीक, लम्बे, गौरवर्ण, प्रभावशाली व्यक्तित्ववाले व्यक्ति को भारतीय राष्ट्रीयता मौ० आज़ाद के नाम से जानती है।

मुझे याद है कि कांग्रेस के एक भूतपूर्व अध्यक्ष ने मौलाना आजाद का उपहास करते हुए उन्हें 'ग्रैण्ड मोगल' ('मुगल महान') कहकर पुकारा था। यदि इस शब्द से उसके तीव्र दंश को निकाल दें तो निश्चय ही वह 'ग्रैण्ड मोगल' कहे जा सकते हैं। उनका ऊँचा लम्बा कद, उनकी राजकीय शान, उनकी आकर्षक शालीनता सहज ही उन्हें एक महान् पुरुष के रूप में घोषित करती है। वह प्रति इञ्च 'ग्रैण्ड मुगल' दिखते हैं और इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि यदि वह मोगल साम्राज्य के वैभव के दिनों में पैदा हुए होते तो दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर गौरव और सफलता का परिचय देते जिसका परिचय बड़े से बड़े मुगल सम्राट ने दिया था। लायडजार्ज ने एक बार लोकमान्य तिलक के सम्बन्ध में कहा था—'Had Tylok live

in more stormy days he would have carved out an empire for himself. अर्थात् 'यदि तिलक ज्यादा तूफानी दिनों में पैदा हुए होते तो अपने लिए साम्राज्य खड़ा कर लेते'। यदि यह बात आज के किसी भी दूसरे भारतीय पर लागू होती है तो वह मौलाना आजाद हैं। परन्तु उनके भाग्य में ब्रिटिश शासित भारत में रहना लिखा था—जहाँ कोई आदमी कितना ही प्रतिभाशाली और शक्तिसम्पन्न हो एक पदवीधारी या फिर शहीद बनकर रह जाता था।

और इस आकर्षक व्यक्तित्व के अन्दर एक सरस हृदय छिपा है, जो मातृभूमि के बन्धनों की पीड़ा को प्रतिक्षण अनुभव करता है। वह हृदय जिसे राजनीतिक कुटिलताओं ने विकृत नहीं किया और यशैषणा जिसके आगे हेच है। कई बार मौलाना आजाद से कांग्रेस की अध्यक्षता की प्रार्थना की गई पर उन्होंने इन्कार कर दिया और तभी उसे स्वीकार किया जब स्वीकार करने के अतिरिक्त चारा न था। जुलूसों और प्रदर्शनों में उनका दम घुटने लगता है। इस सङ्कोची स्वभाव को लोग प्रायः गलत अर्थ में लेते हैं, उन्हें अहंकारी समझते हैं पर यह उनका अहंकार नहीं है।

मैं यह नहीं कहता कि उनमें अहंकार है नहीं। एक प्रकार से यह भी कह सकते हैं कि उनकी सारी दृढ़ता और अचलता के पीछे उनका सूक्ष्म, विकसित, संस्कृत अहंकार ही है। महात्मा जी की भाँति उनका जीवन सम्पूर्णतः निवेदित या समर्पित नहीं है जहाँ निजत्व का अभिमान शाश्वत सत्यों की अनुभूति में मिलकर असीम हो जाता है। मौलाना अपने निजत्व की पवित्रता के प्रति, अपने गौरव की रक्षा के प्रति बड़े सजग हैं। अपनी शान पर आँच वह न आने देंगे। अपने अहंकार को उन्होंने धार्मिक और राष्ट्रीय अहंकार के रूप में बदल दिया है। अपने ऊपर राख डाल दी है पर राख के नीचे चिनगारियाँ बुझी नहीं हैं। कोई कुरेद दे तो देखेगा कि नीचे की राख तप रही है और चिनगारियाँ

अब भी उसके अन्दर लाल-लाल आँखें किये चमक रही हैं।

इस सम्बन्ध में मुझे एक पुरानी घटना याद आती है जो मौलाना के एक घनिष्ट मित्र और मुसलमान नेता ने बताई थी और बाद में कलकत्ता के प्रसिद्ध हिन्दी साप्ताहिक 'जागृति' में छपी थी। मैं मौलाना की जीवन-कथा में लिख चुका हूँ कि वह प्रायः दिल्ली आते रहते थे। पहले दिल्ली आने पर वह होटल में ठहरा करते थे। पर बाद डा० अंसारी के प्रबल अनुरोध से उन्हीं के यहाँ ठहरने लगे।

एक बार की बात है, कुछ कारणों से मौलाना को डा० अंसारी की कोठी पर ज्यादा दिन ठहरना पड़ा। एक साहब मिलने आये थे और मिलने में देरी होती देखकर कह उठे कि ऐश हो रहे हैं—मुफ्त की मेहमांनवाजी। नवाबी है।

मौलाना के कान में भनक पड़ गई। गजब हो गया। वहीं दरिया-गञ्ज (दिल्ली) में एक कोठो तीन सौ रुपये मासिक पर ले ली गई। रुपया बहने लगा—कोठी में कालीन बिछे, बढ़िया फर्नीचर आया, एक लकबक मोटर भी आकर खड़ी हो गई और कोठी तैयार हुई कि मौलाना कलकत्ता चले गये। बरसों कोठी खाली पड़ी रही क्योंकि मौलाना को दिल्ली आने का मौका नहीं लगा। साल में एक दिन का औसत पड़ता था। धीरे धीरे खिदमतगार महोदय ने भी मकान की चीजों पर कृपा-दृष्टि की। मतलब यह कि मौलाना के दस-पंद्रह हजार रुपये एक बात के पीछे बिगड़ गये।"

बात उन्हें बहुत जल्द लगती है। और इसलिए कलकत्ता और बम्बई की अपनी जायदादें वह एक-एक कर बेचते गये हैं पर किसी के आगे हाथ फैलाने की कल्पना कभी उनके मन में न आई। यह ठीक है कि वह पहले में दर्जे सफर करते हैं और शान से रहते दिखाई देते हैं पर जब उनके पास पैसा नहीं होता तो किसी से कहते भी नहीं और भूखे भी रह सकते हैं। उनके एक मित्र लिखते हैं:—

"उनकी चादर पर चार-पाँच बड़े-बड़े पैवन्द लगे हुए थे। प्रात
काल से ही मुझे उन्होंने बुला भेजा था। कितनी ही चिट्ठियाँ लिखी
देखते-देखते खाने का वक्त निकल गया, लेकिन मौलाना नहीं उठे
मैंने देखा, घड़ी की सुई दो बजे के उस पार निकल गई थी। मैं
बड़ी हैरानी में था—भूख के मारे बुरा हाल था। मैंने तकल्लु
छोड़कर कहा—"मौलाना साहब, मुझे तो भूख लगी है।"

मौलाना कुछ नहीं बोले। अपने काम में लगे रहे।

आध घंटा यों ही गुजर गया। मौलाना साहब से बड़ी उलझ
के साथ मैंने कहा—"आप हाजमा खराब होने पर फाका कर सक
हैं लेकिन......।'

मौलाना ने कहा—"म्याँ सच कहते हो। लेकिन सच यह है
खाने को पैसे ही नहीं!"

जमीन मेरे पैरों के नीचे से निकल गई। मैंने उनकी चादर
पैवन्दों पर ध्यान नहीं दिया था। मैंने बात धीरे से डा०...से कानों
डाली।

और तब कहीं मौलाना के पेट में निवाले पड़े।

इस तरह वह घुटकर मरजाने वाले हैं लेकिन आह न करेंगे।"[1]

ऐसा नहीं कि वह सिर्फ अपने गौरव और सूक्ष्म अहंकार के प्र
ही सजग हों, दूसरों की इज्जत रखना भी वह जानते हैं और दूस
की कमजोरियाँ देखकर घृणा की जगह सहानुभूति का उदय उनके म
में होता है। उनके मित्र लिखते हैं:—

"एक बार की बात है कि मौलाना ने कहीं से दो सौ रुपये मँगा
थे। सौ-सौ रुपये के दो नोट थे। उनसे मिलने के लिए एक साह
आ गये। मौलाना ने नोट पेपरवेट से दबाकर रख छोड़े थे।

---

१ 'जागृति' (कांग्रेस अंक) १९४०।

मिलने वाले सज्जन अधीर थे। उन्होंने मौलाना की नज़र बचाकर नोटों की ओर हाथ बढ़ाया। मौलाना ने देख लिया पर मुँह फिरा लिया और तब तक फिराये रखा जब तक कि उन्हें भरोसा न हो गया कि हज़रत अपना काम कर चुके हैं। मौलाना यों बात करते रहे जैसे कुछ हुआ ही नहीं और पूछने पर इस मामले में अपनी तटस्थता का जवाब यों दिया—

"भाई, उसको मुझसे ज्यादा जरूरत होगी, नहीं तो बेचारा चोरी क्यों करता ?"[१]

मौलाना का विश्लेषण करें तो मालूम होगा कि पहले तो वह एक संस्कृत एरिस्टेक्रेट (रईस) हैं। रईसी आनबान, विलक्षण बुद्धि, दूर तक बातों को समझने वाले, शीनकाफ से दुरुस्त, सभ्यता और शालीनता की मूर्ति, दिल के नरम, जरूरत पड़ने पर गरम और सख्त हो जाने वाले हैं। दूसरी बात यह कि वह एक सच्चे मुसलमान हैं। उनमें यह धारणा धार्मिक विश्वास की भाँति विकसित हुई है कि सच्चा मुसलमान गुलाम नहीं रह सकता या जब तक मुसलमान गुलाम है—गुलामी को बर्दाश्त करता है तब तक उसके लिए अपनी धर्म-भावना के प्रति ईमानदार हो सकना सम्भव नहीं। इसलिए वह अनुभव करते हैं कि हम सच्चे मुसलमान तभी होंगे जब हम स्वाधीन होकर साँस लेंगे। स्वतन्त्रता उनके लिए इस्लाम धर्म का एक मौलिक सिद्धांत है। फिर जिसने इस्लाम की मूल भावना को ग्रहण कर लिया है वह प्रलोभनों के बीच भी अपनी निष्ठा नहीं छोड़ सकता; वह केवल ईश्वर को मान जानकर, उसके चरणों में सब कुछ भूलकर चलता है। अधिकार उसके लिए तुच्छ हैं; वैभव और विलास उसके लिए बेकार है, तालियों की गड़गड़ाहट में वह अपने को भूलता नहीं और निन्दा तथा उपहास की तीक्ष्णता उसे मार्ग से विचलित करने में असमर्थ है।

१'जागृति'।

"अगर तुम मेरे हाथों पर चाँद और सूरज को लाकर रख दो तो भी मैं सत्य के मार्ग से विचलित नहीं हूँगा।"

आज से सैकड़ों साल पूर्व ये शब्द इस्लाम धर्म के प्रवक्ता हजरत-मुहम्मद के मुँह से निकले थे, जब अरबों ने उनसे कहा कि आप अपना धर्मोपदेश छोड़ दें तो हम आपको अपना बादशाह बनाने को तैयार हैं।

मौलाना आजाद में पैगम्बर की वही भावना प्रस्फुटित हुई है। अगर उन्होंने शौकतअली, जिन्ना या सम्प्रदायवादी मुसलमानों का रास्ता पकड़ा होता तो १० करोड़ मुसलमानों के एकछत्र नेता होते। जिसकी मातृभाषा अरबी है, मुस्लिम सन्तों में प्रतिष्ठित वंश के एक प्रतिष्ठित वंशधर, इस्लामधर्म की भावना के ज्ञाता, मुस्लिम धर्मशास्त्रों के पण्डित, अरब, मिश्र, तुर्की, इराक आदि देशों में आदृत मौलाना का कोई प्रतिद्वन्द्वी उस क्षेत्र में न था। विद्वत्ता ऐसी, जिसकी पूजा विदेशों के हजारों मुसलमान करते हैं। एक बार इनकी विद्वत्ता पर मुग्ध एक आदमी ईरान से सैकड़ों मील पैदल चलकर इनके दर्शनों को आया और दर्शन से तृप्त होकर चन्द मिनटों में चला गया। नाम-धाम भी नहीं बताया, न कुछ भेंट स्वीकार की। इस गुमनाम व्यक्ति की गरीबी और श्रद्धा से द्रवित होकर, इन्होंने अपने कुरान का अनुवाद और भाष्य उसे समर्पित किया है। ऐसा व्यक्ति चाहता तो मुसलमानों पर जादू फेर सकता था। लेकिन ये प्रलोभन उन्हें लुभा न सके और इस्लाम धर्म की स्वतन्त्रता की भावना को एक क्षण के लिए भी भूलने को वह तैयार नहीं।

तीसरी बात यह कि स्वभावतः वह एक चिन्तनशील मानस के प्रतिनिधि हैं। वह गम्भीर विद्वान् हैं; भीड़-भाड़ और प्रदर्शन उनके दिल की चीज नहीं। वह पीछे रहना पसन्द करते हैं और प्रदर्शनात्मक परिस्थितियों से घबड़ाते हैं। वह उर्दू के सर्वोत्तम वक्ताओं में से एक

हैं और उनके भाषण सुनने के लिए लोग बहुत बड़ी तादाद में एकत्र होते हैं फिर भी वे भरसक ज्यादा भीड़वाली सभाओं से बचते हैं। आदमियों को पहचान लेने की गहरी क्षमता उनमें है पर अपनी भावनाओं को वह शीघ्र व्यक्त नहीं होने देते और यों एक राजनीतिज्ञ का गुण भी उनमें है।

मैं कह चुका हूँ कि भीड़भाड़ में वह अपने को संकुचित अनुभव करते हैं। इसके विरुद्ध यों भी कहा जा सकता है कि उनका सर्वोत्तम रूप चुने हुए लोगों या मित्रों की मण्डली में निखरता है। यहाँ वह 'अपनेपन' में होते हैं। यहाँ उनकी बातचीत की कला व्यक्त होती है। यहाँ उनका 'मजाक' फूटता है। किसी के पक्ष या विपक्ष में बोलते समय शक्ति के पुञ्ज मालूम पड़ते हैं। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है तथा तीव्र मेधा शक्ति के कारण उनकी तर्कना प्रबल रूप में सामने आती है। मित्रों के साथ सैर-सपाटा, 'टर्किश बाथ' और साहित्य का अध्ययन और रचना यही उनके व्यस्त जीवन के विश्राम हैं। अपने निजी जीवन के सम्बन्ध में मौन उनकीएक बड़ी विशेषता है। चीनी चाय के भक्त हैं और उसे दुनिया कीएक बहुत बड़ी नियामत समझते हैं। हमेशा सुबह चार बजे उठ जाते हैं। इस प्राणप्रद ब्राह्म मुहूर्त्त में वह चाय के साथ कल्पना के पंखों पर दूर-दूर उड़ते-फिरते हैं। वह वस्तुतः एक मनीषी और विचारक हैं। वही उनका असली रूप है। परिस्थित-वश वह राजनीति में आ गये हैं।

राजनीति के इस व्यस्त जीवनमें वह साहित्य-रचना के स्वप्नसदा देखा करते हैं। वह अपनी स्वाभाविक रुचि से वस्तुत साहित्य-निर्माता ही हैं, राष्ट्रनिर्माता तो वह परिस्थिति-वश बन गये हैं। पर इस परिस्थिति में भी उनका हृदय उधर ही दौड़ता है। अहमदनगर किले में लिखे उनके निजी पत्रों में (जो उर्दू में 'गुबारे खातिर' के नाम से पुस्तकाकार निकले हैं) उनका हृदय खूब व्यक्त हुआ है। उन्होंने उर्दू

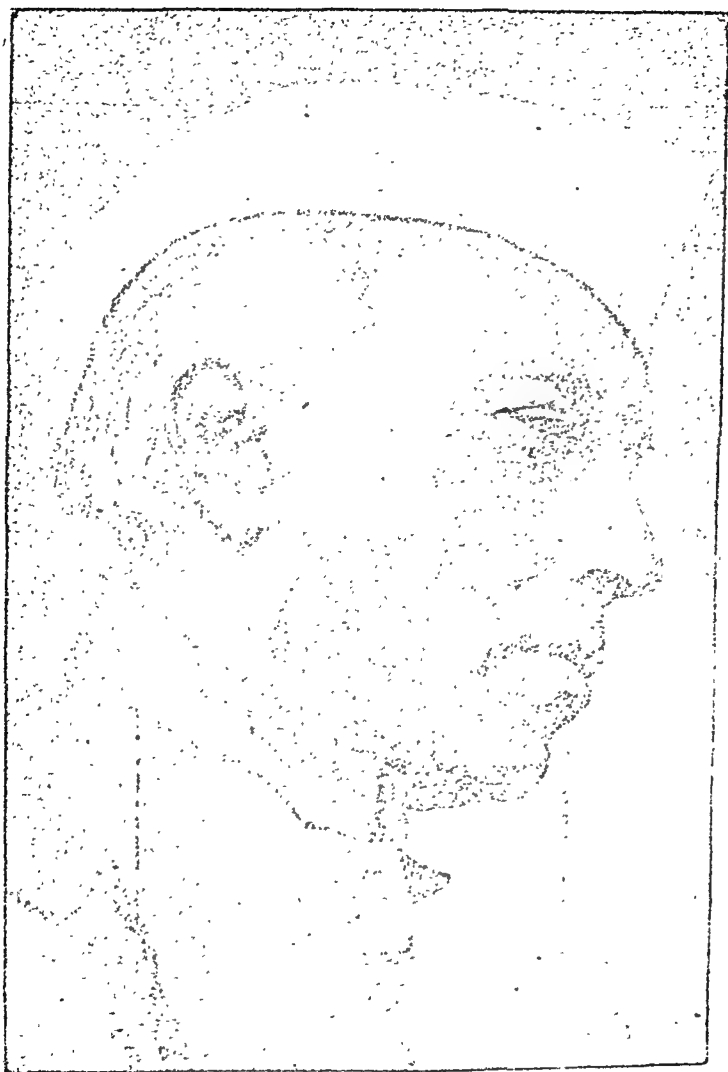
साहित्य की जो सेवा की है, उसे जो शक्ति प्रदान की है उसका महत्व सभी विद्वानों ने हृदयङ्गम किया है। उनकी बहुत सी रचनाएँ पुलिस की धाँधली से नष्ट हो गई और इसका उनको कड़ा आघात लगा है। वह खुद लिखते हैं—'एक लेखक के लिए इससे बढ़कर और कोई मुसीबत नहीं हो सकती कि एक बार उसने जो चीज लिख दी है, वही उसे फिर से लिखनी पड़े। वह हजारों नये पृष्ठ लिख सकता है लेकिन जो चीज वह एक बार लिख चुका है और वह खो गई है उसी को यदि फिर लिखने बैठता है तो उसकी लेखनी कुण्ठित हो जाती है।......"

फिर भी जब-जब समय मिलता है वह कुछ न कुछ लिखते ही रहते हैं।

× × ×

अवश्य ही मौलाना में कमियाँ भी हैं—दुर्बलताएँ हैं। जब वह चिढ़ जाते हैं तो जल्द ठण्डे नहीं होते। उनके दृष्टिकोण पर मध्य-युगीन विचार-धाराओं की छाप है। उनमें गांधी के हृदय का संत नहीं है; वह एक प्रबल योद्धा हैं, जिस चीज को लें उसे दिल से लेने-वाले और जिस चीज का तिरस्कार करें उसे फिर पैरों से कुचल देने-वाले। कूटनीतिज्ञ की सजग विस्मृति उनमें है पर महापुरुष की क्षमा उनमें नहीं। ऊपर से शान्त पर दिल में भी कभी न बुझने वाले शोले छिपाये; ऊपर से तार्किक पर अन्दर से भावुक, आधुनिकतम विचार-धाराओं से परिचित, अत्यन्त सजग और हर कदम पर प्रश्न करते चलने वाले, यह मौलाना आजाद हैं।

पर इसी कारण उनके गुण भी गुण हैं। ये बातें उनके गुणों को —विरोधी पृष्ठभूमि पर—यों सजाती हैं जैसे 'कण्ट्रास्ट आव् कलर' (रङ्गों की भिन्नता) से चित्र खिल उठता है। इस पृष्ठभूमि पर मौलाना भारतीय राष्ट्रीयता के एक शक्तिमान व्यक्तित्व के रूप में, अपनी प्रबल बौद्धिक सम्पदा और उत्कट त्याग को लेकर, हमारे सामने आते हैं।



जवाहरलाल नेहरू

जवाहरलाल

...

जन्म : १४ नवम्बर १८८९ ई०

बहादुरी में कोई उनसे बढ़ नहीं सकता और देश-सेवा में उनके आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि वह जल्दबाज और अधीर हैं। यह तो इस समय एक विशिष्ट गुण है। फिर जहाँ उनमें एक वीर योद्धा की तेजी और अधीरता है वहाँ एक राजनीतिज्ञ का विवेक भी है। निःसन्देह वह अपनी परिस्थिति से बहुत आगे की बात सोचनेवाले उग्रवादी हैं।...वह स्फटिक मणि की भांति पवित्र हैं। उनकी सत्यशीलता सन्देह के परे है। वह अहिंसक और अनिन्दनीय योद्धा हैं। राष्ट्र उनके हाथ में सुरक्षित है।"

—महात्मा गांधी (१६२६ में)

[१]

जवाहरलाल : एक 'सिल्यूट'

एक तीर-सा लक्ष्य-वेध के लिए आज भी व्याकुल; बात-वीर ही नहीं, कामशूर भी; दीर्घकालिक पराधीनता के कुपरिणामों का फोड़ा जिसको बेचैन सा किये है और गरीबी जिसको चुभती है, ऐसा, एक सारी जिन्दादिली के साथ जीवित व्यक्ति,—यह जवाहरलाल हैं! प्रतिक्षण चुभनेवाली सर्वसाधारण की गरीबी और उसके लिए संसार में हो रहे एक आर्थिक प्रयत्न—साम्यवाद—के अध्ययन से प्राप्त जिसके हृदय की गरमी के सामने, इस युग के प्रतिक्षण चल रहे भीषण शोषण ने बर्फ की एक दीवार खड़ी करनी चाही है, ऐसे जवाहरलाल हैं! जिसमें अपना देश दूसरे देशों की हलचलों की पृष्ठभूमि पर रखकर देखने की आदत है, और जिसने भारतीय राजनीति को अन्तर्राष्ट्रीयता का प्रकाश प्रदान किया है, ऐसे जवाहरलाल हैं!

आग का जलता हुआ पिण्ड आपने देखा है ? पिण्ड वह जिसकी कालिमा जलने में नष्ट हो गई है और जिसमें धुआँ नहीं है; जिसमें ज्वाला है पर प्रकाश भी है और जो न केवल हमारे सद होते हुए दिलों को गरमी देता है, वर इस निराशा के अन्धकार में ध्रुवतारा सा अपने प्रकाश से हमें अपनी ओर खींचता है ! एक आग, जो दिलों के दामन को छूती और उसे आग कर देती है; एक व्यक्तित्व जो खींचता है और उठाता है; एक दिल, जिसमें बचपन की लोच और यौवन की समाजशीलता है; एक यौवन जो क्षण भर में खीझ और क्रोध से भर जाता है और दूसरे क्षण पिघल उठता है; जो मरण को प्रतिक्षण के जीवन में बदल रहा है—ऐसा व्यक्ति यह जवाहरलाल है !

× × ×

जब राह अँधेरी हो, मेंह बरसा ही बरसा हो; सर्द हवाएँ चल रही हों और वातावरण दिल में कँपकँपी पैदा करता हो, जल-थल एक हो रहे हों और जब किवाड़ बन्द किये हर एक अपने अन्दर कुछ भय, कुछ प्रतीक्षा, कुछ आशा कुछ निराशा लिये संकुचित और विचलित सा हो रहा हो; जब स्वार्थों में ओत-प्रोत अपने-अपने दियों को न बुझने देने में ही, उनके प्रकाश पर घेरा डाले, उसे बन्दी किये, हम अपने को कर्मशील अनुभव कर रहे हों और जब अभागे पर साहसी, मुसाफिर को दूर ही से मिलनेवाला प्रकाश उसकी आँखों से ओझल हो; ऐसी भादों की विक्षिप्त और अचेत निशा तुमने देखी है ?

—और ? उन बादलों को फाड़कर, उनपर साहसी पथिक के दिल के विश्वास सा, एक प्रकाश-पिण्ड चमक उठता है; मार्ग पर प्रकाश की एक हलकी फुहार पड़ जाती है और लम्बा जिसका मार्ग है, काँटे जिसके पाँव में चुभने के लिए ही मानों पैदा किये गये हैं और जिसके साधन खतरों में डूबते-उतराते हैं, थककर भी सदा चलने को विवश और जिसके लिए मंजिल एक है, अरमान एक है, दिल एक है जह

एक है,—ऐसा मुसाफिर अपना बोझ जरा कम कर दे सकता है और लम्बे डग ले सकता है। ऐसे प्रकाश के उस पिण्ड को क्षितिज पर अन्धकार के बीच उसे फाड़कर चमकते तुमने देखा है ?

बस, जवाहरलाल और वर्तमान राजनीतिक अवस्था को हम इन दृश्यों में, जिनपर कोई कलाकार चित्र बनाये और अपने को अमर कर ले, संक्षिप्त करके घनीभूत करके, रख सकते हैं। निराशा की वर्तमान अँधियारी में, जब सूर्य गांधी हमसे दूर पड़ गया है और जब उसके संदेश को लेकर दौड़नेवाले प्रभात के आगमन में कुछ देर मालूम पड़ती है, तब कुछ जागते, कुछ सोते, कुछ थके और चलते हुए मुसाफिर प्राणी सा जो राष्ट्र हो रहा है; जिसके चारों ओर खतरे हैं, तूफान उमड़ रहे हैं, उसके लिए जवाहरलाल को सामने क्षितिज पर ज्वाला के एक पिण्ड सा आता हम देख रहे हैं। मेरा अपना तो कुछ ऐसा ख्याल है कि यह मार्ग-दर्शक हमें वहाँ तक पहुँचा देगा जहाँ सूर्य की तपन और प्रकाश हो और भारत फिर जीवन की प्रखर दोपहरी में खड़ा होकर गांधी का संदेश सुने और उसका तेजस्वी रूप देखे जो सच्चे अर्थ में कभी रिक्त होने का नहीं,क्योंकि उसने सब कुछ दे ही देकर और सम्पूर्णतः रिक्त होकर सदा के लिए अपने को परिपूर्ण कर लिया है।[1]



---

१ यह जीवन-चित्र कई साल हुए, जवाहरलाल के राष्ट्रपति होने पर लिखा गया था। पर लेखक की सम्मति में इस चित्र में कोई विशेष तात्विक अन्तर नहीं पड़ा है, बल्कि उसकी भविष्यवाणी सार्थक हुई है इसलिए इसे ज्यों का त्यों रहने दिया गया है।

—लेखक।

[२]

जीवन-कथा

१४ नवम्बर १८८९ को प्रयाग के मीरगञ्ज मुहल्ले में, श्रीमती स्वरूपरानी के गर्भ से, जवाहरलाल का जन्म हुआ। इसके पूर्व मोतीलालजी की प्रथम पत्नी का देहान्त हो चुका था तथा पहली सन्तान भी मर चुकी थी। इसलिए मोतीलालजी पुत्र को बहुत मानते थे। यह बच्चा माता-पिता का जीवन-सर्वस्व था। प्यार से सब उसे 'नन्हा' कहते थे। 'नन्हा' कभी-कभी बड़े मजे करता था। जब रोने की उमङ्ग आती तो बे-बात रोने लगता और जब कोई कारण पूछता तो फिर और जोर-जोर से पूछनेवाले का नाम लेकर रोता और कहता "इसने मारा है।" जब दूसरा कोई पूछता तो उसे ही मारनेवाला बताता। पूछनें वाले जैसे-जैसे बदलते, मारनेवाले का नाम भी बदलता जाता। उसकी इस लीला पर लोग खूब कहकहे लगाते थे।

इस प्रकार जवाहरलाल आनन्द भवन के वैभव, विलास और प्यार के बीच पल रहे थे। किंतु इसके साथ बचपन से ही गम्भीर और शान्त थे। जो बात उन्हें ठीक जँच जाती उसे करने से न चूकते थे। ६ से १२ वर्ष तक घर पर ही शिक्षा हुई। पढ़ने के साथ खेल-कूद का इनको बड़ा शौक था। अश्वारोहण, फुटबाल, टेनिस और तैरना इनके नित्य के विनोद थे। १२ वर्ष की अवस्था में प्रसिद्ध थियोसोफिस्ट श्री एफ० टी० ब्रुक्स एवं गवर्नमेंट हाई स्कूल प्रयाग के तात्कालिक प्रधानाध्यापक श्री गोर्डन इनके शिक्षक नियत हुए। श्री ब्रुक्स एक स्वतन्त्र एवं विद्वान् विचारक तथा भारतीय संस्कृति के प्रेमी थे। अंग्रेज होते हुए भी बड़े ही शान्ति-प्रेमी थे। हिन्दू वेष में सादी चाल से रहते थे। अधिकांश समय आध्यात्मिक चिन्तन में जाता था। ईश्वर

में उनका अगाध विश्वास था। मांस-मदिरा से उन्हें अरुचि थी। पाश्चात्य रङ्ग में रँगे मोतीलालजी के कुटुम्ब में उनका प्रवेश ही एक आश्चर्यजनक घटना-सी मालूम होती है। उन दिनों का आनन्द भवन पश्चिम के मोहक वातावरण में मुग्ध था। विलास जवानी पर पहुँच चुका था। कभी अठखेलियां करता, कभी गुदगुदाता—चारों तरफ विनोद करता फिरता था। चारों ओर वही वह था। उसके बीच अपनी सात्विक पूँजी का प्रकाश लिये यह हृदय का हिंदू और जाति का अंग्रेज जाति के हिन्दू और हृदय के अंग्रेज मोतीलाल के बच्चे जवाहरलाल पर अपने संस्कार डाल रहा था। केवल साहित्य-ज्ञान करना ही श्री ब्रुक्स का उद्देश्य न था बल्कि जीवन को सदाचरणशील बनाने की ओर ही उनकी अधिक रुचि थी और जवाहरलाल में उनकी शिक्षाओं का अनुकरण करने की दृढ़ता भी खूब थी। एक दिन अध्यापक ने बताया कि मांस खाना पाप है। बस, जवाहरलाल ने मांसाहार से इन्कार कर दिया। इसी प्रकार कुछ दिनों बाद ब्रुक्स साहब के आदेश पर उन्होंने थियेटर सिनेमा जाना भी छोड़ दिया। मोतीलालजी को ये बातें कब भातीं। कुछ दिनों बाद उन्होंने इस योग्य शिक्षक को अलग कर दिया। जवाहरलाल फिर पाश्चात्य जीवन और रहन-सहन के प्रवाह में बहने लगे। पर वह संस्कार बीज की तरह उनके भीतर रह गया था। असहयोग काल में, आँख खुलने पर, वह फिर राख के भीतर पड़ी आग की तरह स्वतन्त्रता की हवा लगते ही चमक उठा। उनके मानसिक विकास पर हम थियोसफी की उदार भावना तथा सौन्दर्यानुभूति की छाप देखते हैं।

१९०४ में मोतीलालजी सपरिवार इङ्गलैण्ड गये और वहाँ के प्रसिद्ध हैरो विद्यालय में जवाहरलाल का नाम लिखाया गया। इङ्गलैण्ड के अनेक राजनीति-विशारदों एवं विचारकोंने यहाँ शिक्षा पाई है। इङ्गलैण्ड के सार्वजनिक जीवन पर इस विद्यालय का बड़ा प्रभाव है। यहाँ का जीवन

अत्यन्त व्ययसाध्य है। मोतीलालजी ने पानी की तरह रुपये खर्च करके पुत्र को पढ़ाया। जवाहरलाल के सहपाठियों में कपूर्थला के युवराज, महाराज गायकवाड़ के पुत्र स्व० राजकुमार जयसिंह, स्व० शाह सुलेमान (इलाहाबाद हाईकोर्ट के भूतपूर्व चीफ जस्टिस तथा फेडरल कोर्ट के जज) इत्यादि प्रमुख थे। स्कूल की परीक्षा समाप्त कर जवाहरलाल केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध ट्रिनिटी कालेज में भरती हुए और जूलोज़ी (जन्तु विज्ञान), बाटनी (वनस्पति-विज्ञान) एवं केमिस्ट्री (रसायनशास्त्र) में सम्मान-सहित बी० ए० की परीक्षा पास की। इनकी असाधारण योग्यता से कालेज के अध्यापकों एवं सञ्चालकों ने सन्तुष्ट होकर, बिना परीक्षा लिये इन्हें एम० ए० आनर्स का सर्टिफिकेट दे दिया। कालेज में इनके सहपाठियों में सर्वश्री स्व० शेरवानी, एम० ए० ख्वाजा, डा० महमूद, डा० किचलू आदि थे और स्व० जे० एम० सेनगुप्त सीनियर थे। जवाहरलाल के लिए यह भी सौभाग्य की बात है कि आगे चलकर इन सहपाठियों में प्रायः सभी उनके साथ भारतीय स्वाधीनता के संग्राम में वीरतापूर्वक खड़े हुए। कालेज की शिक्षा समाप्त कर यह लन्दन के 'इनर टेम्पुल' में भरती हुए और १६१२ से बैरिस्टरी की उपाधि प्राप्त कर ली। इसके बाद १६२० तक पिता के साथ बैरिस्टरी करते रहे। फरवरी १६१६ में दिल्ली के पं० जवाहरलाल कौल की पुत्री कुमारी कमला (अब स्वर्गीय) से बड़ी धूम-धाम के साथ इनका विवाह हुआ। १६१७ में पुत्री इन्दिरा का जन्म हुआ। १६२४ में एक पुत्र भी हुआ था पर जन्म के तीसरे ही दिन जाता रहा। स्वदेश लौटते ही, १६१२ की पटना कांग्रेस में शामिल हुए और तबसे बराबर कांग्रेस अधिवेशनों में भाग लेते रहे। १६१४ में प्रवासी भारतीयों की सहायता के लिए, श्री गोखले की अपील पर, पचास हजार रुपये संग्रह कर अफ्रीका भेजे थे। डा० बेसेण्ट के होमरूल आंदोलन में भी इन्होंने काफी हिस्सा लिया। १६१६-२० में अवध के किसानों में

काम किया। फिर तो असहयोग का शंख बजने पर बैरिस्टरी छोड़ स्वाधीनता के आंदोलन में पड़ गये। १६२१ में, ६ महीने के लिए जेल की सजा हुई। दूसरी बार १६२२ में, प्रयाग में, विदेशी कपड़े की दुकानों पर धरना देते समय गिरफ्तार हुए और १८ माह की कड़ी कैद तथा १००) जुर्माना की सजा मिली।

१६२२ में प्रयाग म्युनिसिपलिटी के अध्यक्ष, सर्वसम्मति से, चुने गये। इनके प्रबन्धकाल में नगर की बड़ी उन्नति हुई और सरकारी अधिकारियों ने भी इनके काम की तारीफ की। १६२६ के आरम्भ में पत्नी कमला के बीमार पड़ने और क्षयरोग के चिह्न प्रकट होने पर उसे लेकर स्वीजरलैण्ड गये और पत्नी के कुछ स्वस्थ होने पर फरवरी १६२७ में भारतीय राष्ट्रसभा के प्रतिनिधि की हैसियत से साम्राज्य-विरोधी संघ के जेनेवा अधिवेशन में सम्मिलित हुए और उसके पाँच अध्यक्षों में से एक अध्यक्ष चुने गये। सोवियट-सरकार के निमन्त्रण पर १६२७ में रूस गये और रूसी प्रजातंत्र के दशम वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। वहाँ से साम्यवाद की प्रवृत्ति लेकर लौटे और समाज के नूतन निर्माण पर भी उन्होंने जोर देना शुरु किया। १६२६ में हिन्दुस्तानी सेवा दल एवं प्रथम प्रजातंत्र परिषद् के अध्यक्ष हुए। क्रमशः उग्र राजनीतिक विचारधारा को अपनाते जा रहे थे। इसी समय मजूरों के आंदोलन में भी भाग लेना शुरू किया। १६२६ में मजूर कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के अध्यक्ष हुए। सितम्बर १६२८ में इन्होंने भारतीय स्वाधीनता संघ कायम किया। १६२३ से १६२६ तक, बीच के प्रवास-काल को छोड़ कर, यह बराबर कांग्रेस के प्रधान मन्त्री रहे। १६२६ में लाहौर कांग्रेस के अध्यक्ष हुए और तब से बराबर देश में कांग्रेस पक्ष के सर्वश्रेष्ठ नेता हैं। १६३० में सत्याग्रह छिड़ते ही गिरफ्तार हो गये। एक साल बाद सरकार से संधि होने पर, छोड़े गये पर सरकार के रवैये में कोई परिवर्तन न देख स्पष्टतापूर्वक बातें करते रहे। फलतः १६३१ में

फिर गिरफ्तार करके जेल में डाल दिये गये। १९३६ में लखनऊ कांग्रेस के अध्यक्ष हुए—अगले साल फैजपुर में भी वही अध्यक्ष रहे और उन्होंने सारे देश में गांव-गांव का दौरा करके जागरण की लहर फैला दी। 'नागरिक स्वाधीनता संघ' (सिविल लिबर्टी लीग) की स्थापना की। १५ मार्च १९३७ को दिल्ली में नेशनल कन्वेंशन के सभापति हुए। १० जनवरी १९३८ को माता स्वरूप रानी का देहावसान हो गया। इस साल भी इन्होंने सीमाप्रान्त और गढ़वाल का दौरा किया। हिन्दू-मुस्लिम समस्या के हल के लिए श्री जिन्ना से इनका महत्वपूर्ण पत्र-व्यवहार भी, इस साल हुआ और इसी साल चीन में चिकित्सा-सेवा-मंडल भेजने की व्यवस्था, इनकी प्रेरणा पर, की गई। २ जून १९३८ को जवाहरलाल ने युरोप की यात्रा आरम्भ की। १६ जून को बार्सिलोना (स्पेन) में स्पेनी-प्रजातन्त्र के अधिकारियों से उनकी भेंट हुई और उन तक इन्होंने भारत की सहानुभूति का संदेश पहुँचाया। २० जून को पेरिस ब्राडकास्टिङ्ग स्टेशन से जो भाषण 'ब्राडकास्ट' किया उससे बड़ा तहलका मचा। जून जुलाई में लन्दन में सब तरह के प्रतिष्ठित और प्रभावशाली व्यक्तियों (परराष्ट्र मन्त्री, भारत मन्त्री, वाइसराय इत्यादि से भी) से मिले और कई प्रभावशाली तथा महत्व-पूर्ण व्याख्यान देकर भारतीय समस्या और कांग्रेस के सम्बन्ध में लोगों की जानकारी बढ़ाई। जवाहरलाल की युरोप-यात्रा अनेक दृष्टियों से सफल रही। नवम्बर में वह भारत लौटे। १९३९ में गांधी जी तथा अन्य नेताओं से विचार-विनिमय करते रहे। शांति निकेतन में हिन्दी भवन का उद्घाटन किया। इस साल जवाहरलाल ने देशी राज्यों के प्रश्नों पर विचार करना और उनकी हलचलों में भाग लेना शुरू कर दिया। यहाँ तक कि देशी राज्य-प्रजा परिषद् के लुधियाना अधिवेशन के अध्यक्ष भी हुए। इस साल त्रिपुरी कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता के प्रश्न को लेकर देश में बड़ा तूफानी वातावरण खड़ा हो गया। उससे

कांग्रेस में ही दलबन्दी और फूट होने की नौबत आ गई। जवाहरलाल ने कांग्रेस महा-समिति के कलकत्ता अधिवेशन में तथा उसके बाद भी इन झगड़ों को सुलझाने का बड़ा प्रयत्न किया और उनके प्रभाव से कांग्रेस के संयुक्त मोर्चे के न टूटने में बड़ी सहायता मिली।

इस बीच जवाहरलाल ने एक महत्वपूर्ण काम उठा लिया। जब कांग्रेस ने प्रान्तों में शासन चलाना स्वीकार कर लिया तब से जवाहरलालजी अनुभव कर रहे थे कि समस्त राष्ट्र के संघटन की एक वैज्ञानिक योजना हमारे सामने होनी चाहिए। कांग्रेस के तत्वाधान में प्रान्तीय सरकारों के सहयोग से 'नेशनल प्लैनिङ्ग कमेटी' (राष्ट्रनिर्माण समिति) का जन्म हुआ। जवाहरलाल जी इसके अध्यक्ष हुए। बाद में काम बढ़ता ही गया—यहाँ तक कि उसमें राष्ट्र की गतिविधि के हर पहलू का समावेश हो गया। २६ उपसमितियाँ बनाई गईं। इनमें अपने अपने विषय के विशेषज्ञ रखे गये तथा देश के सम्पूर्ण विचारवान् व्यक्तियों का, राजनीतिक मतभेद का कोई विचार न करके, सहयोग प्राप्त किया गया। इस समिति ने राष्ट्रनिर्माण की योजना बनाने का बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण काम किया है और अब भी कर रही है।

सिलोन (लंका) में भारतीयों के सवाल को लेकर बड़ी कटुता फैल रही थी। गलतफहमियाँ बढ़ रही थीं। १६३६ ई० की गर्मी में जवाहर लाल जी ने लंका की यात्रा की। वहाँ उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। उन्होंने पारस्परिक मनोमालिन्य और कटुता दूर करने की कोशिश की जिसमें उन्हें आंशिक सफलता प्राप्त हुई।

१६३६ के मध्य में युरोप भयानक गति से विनाश की ओर दौड़ा चला जा रहा था। वहाँ वातावरण शंका, भय, निराशा से भरा था। इस समय जवाहरलाल जी देश से बाहर कहीं नहीं जाना चाहते थे पर चीन का निमन्त्रण बहुत दिनों से चला आ रहा था। अगस्त में वह वायुयान द्वारा चीन गये। पर चुङ्किङ्ग पहुँचे ही थे कि युरोप में

विस्फोट हुआ। चीन में जवाहरलालजी का बहुत जोरों से स्वागत-सत्कार हुआ। उन्होंने जेनरल चिङ्ग-काई-शेक और चीनी राष्ट्र के अन्य नेताओं से भेंट की और उन्हें भारत के सहयोग और मैत्री का सन्देश दिया। पर लड़ाई छिड़ जाने के कारण यह जल्द हिन्दुस्तान लौट आये।

ब्रिटिश सरकार ने भारतीय व्यवस्थापिका सभा या प्रांतीय सरकारों या भारतीय जनमत का सहयोग एवं सम्मति प्राप्त किये बिना ही भारत की ओर से भी युद्ध की घोषणा कर दी। इससे राष्ट्र में बड़ा क्षोभ पैदा हुआ। सितम्बर १६३६ में कांग्रेस कार्य समिति ने एक लम्बा वक्तव्य दिया जिसमें हमारी पिछली और हाल की नीति की व्याख्या की गई और ब्रिटिश सरकार से माँग की गई कि वह अपने युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्य विशेषतः ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारत की स्वाधीनता के बारे में, स्पष्ट करे। पर सरकार बराबर गोलमाल शब्दों में बातें करती रही। स्पष्ट था कि वह भारत को आत्म-निर्णय का अधिकार देने को तैयार नहीं है। वही पुराना ढर्रा चलता रहा। इसके विरोध में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफे दे दिये। सरकार तो मानो इसकी प्रतीक्षा में थी। उसने इन प्रान्तों में विधान स्थगित कर दिया और सरकारी सलाहकारों के बल पर शासन-कार्य चलाया जाने लगा।

धीरे-धीरे नये-नये कानून और आर्डिनेंस जारी किये गये। और कांग्रेस तथा राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं की गिरफ्तारियों की तादाद बढ़ने लगी। राष्ट्र इसका जवाब देना चाहता था पर गांधी जी नहीं चाहते थे कि इस संकट के समय इङ्गलैंड की कठिनाइयाँ बढ़ाई जायँ।

उधर युरोप में घटनाएँ बड़ी तेजी से घट रही थीं। विस्फोट पर विस्फोट हो रहे थे। साधारण प्रेक्षक की तो समझ में न आता था कि यह हो क्या रहा है। बड़े-बड़े साम्राज्य देखते-देखते टूट रहे थे। इसके अतिरिक्त अद्भुत बातों का क्रम भी जारी था। जैसे रूस जर्मन समझौता! या सोवियट का फिनलैण्ड पर हमला या रूस का जापान

के प्रति मैत्रीपूर्ण झुकाव। १६३६ के चिताभस्म पर बिजलियों से खेलता हुआ, विनाश का ताण्डव करता, १६४० आया। अप्रेल में नार्वे का पतन हुआ; मई में हालैण्ड और बेलजियम गये; जून में 'मैजिनो-रणपंक्ति' के तिलिस्मी अवरोध सारहीन प्रमाणित हुए और रक्षणात्मक युद्धकला के विशेषज्ञ फ्रांस की पराजय हुई। जहाँ पश्चिम की नवयौवना और 'एरिस्टोक्रेटिक'—रईसी—संस्कृति नाचती, खिलखिलाती और अठखेलियाँ करती थी तहाँ श्मशान की वीभत्सता का व्यङ्ग आरम्भ हुआ।

युद्ध की विकरालता के साथ-साथ भारत के विषय में हमारे राष्ट्र-नेताओं की चिन्ता बढ़ती गई। गांधीजी चाहते थे कि कार्य समिति अहिंसा के सिद्धांत को, जिसे हम आजादी की लड़ाई में इतने दिनों से ग्रहण किये हुए थे, बढ़ाकर राष्ट्र की रक्षण-नीति तक फैला दे। और किसी युद्ध में किसी प्रकार का भाग न लेने की घोषणा कर दे। पर कार्यसमिति के अधिकांश सदस्य इतनी दूर तक जाने को तैयार न थे। वे भविष्य के राष्ट्र को ऐसे किसी बंधन में बाँधने से हिचकते थे। उधर गांधीजी उस सन्देश को, जो वह दुनिया के सामने रख चुके थे, न तो छोड़ सकते थे, न उनमें तोड़ मरोड़ कर सकते थे। इसलिए वह अलग हो गये और कार्यसमिति को अपने विवेक के अनुसार चलने की स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। श्री राजगोपालाचार्य की प्रेरणा से कांग्रेस ने ब्रिटेन के सामने एक और प्रस्ताव रक्खा जिसका आशय यह था कि ब्रिटेन भारत की आजादी मंजूर करे, केन्द्र में तुरन्त ऐसी अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बना दे जो वर्तमान केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी हो। अगर यह हो जाय तो देश की रक्षा की जिम्मेदारी वह सरकार ले ले और लड़ाई के प्रयत्नों में सहायक हो। परन्तु साम्राज्यवाद दूरदर्शितापूर्ण समझौते को अङ्गीकार करने की शक्ति नहीं रखता। सरकार ने इसे भी ठुकरा दिया। तब फिर कांग्रेस ने

गांधीजी को सत्याग्रह छेड़ने का सर्वाधिकार प्रदान किया। गांधीजी ने एक वर्ष तक, सीमित रूप में, व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाया। किंतु युद्ध की वास्तविकताओं और विभीषिकाओं के बीच उनकी अहिंसा के उच्च स्तर तक जाने में लोग हिचकते रहे। यह देखकर फिर उन्होंने राजाजी के प्रस्ताव को चलने देना वर्तमान स्थिति में ठीक समझा। कांग्रेस काफी समय तक इस स्थिति में रही। इस बीच ब्रिटिश सरकार की एक घोषणा लेकर सर स्टैफर्ड क्रिप्स ब्रिटेन से भारत समझौते के लिए आये। पर राष्ट्ररक्षण विभाग का अधिकार देने को सरकार तैयार न थी, इसलिए समझौता न हो सका। ७ अगस्त १९४२ को भारतीय कांग्रेस कमेटी ने महात्मा गांधी का नेतृत्व पुनः स्वीकार किया और तुरन्त सम्पूर्ण शासन भारत को देने की अपील ब्रिटिश सरकार से की। और प्रस्ताव अस्वीकृत होने पर सत्याग्रह का निश्चय किया। सरकार ने दमन का अस्त्र सँभाला। फलतः कांग्रेस गैरकानूनी करार दे दी गई और १९४२ के दमन का वह तूफानी दौर शुरू हुआ जिसने ब्रिटिश शासन के कलङ्क के धब्बों को और गहरा कर दिया। १९४५ में अन्य नेताओं के साथ छोड़े गये। मौलाना आजाद के बाद पुनः राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। भारत-विभाजन के समय तथा बाद की दुःखद घटनाओं के बीच और भी दृढ़ रहे। आज वह स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री तथा वैदेशिक विभाग के सचिव हैं।

पर इस बीच जवाहरलाल जी ने अपना राजनीतिक प्रश्नों पर सोचने का अन्तर्राष्ट्रीय या व्यापक मानवी दृष्टिकोण बराबर कायम रखा है। उनके विकास में गांधीवाद और साम्यवाद दोनों का काफी असर है।

---

[२]

विश्लेषण : अध्ययन

एक मझले कद और छरहरे वदन का गोरा नवजवान-सा दिखने-वाला, पर उम्र जिसकी साठ को पार कर चुकी है, ऊपर से नीचे तक निर्मल, स्वच्छ सफेद खादी से लिपटा हुआ। चौड़ा ललाट, ममता उत्पन्न करनेवाली सतेज आँखें, पतले और अभिव्यक्ति से पूर्ण (expressive) ओठ—यह जवाहरलाल हैं! यह प्रौढ़ युवक, जिसका सौन्दर्य और जिसकी स्थिति एक राजकुमार की थी, गत ३० वर्षों से हमारे देश में राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता का अलख जगाता हुआ, कुछ अजीव दीवानेपन के साथ, घूमता फिरता है।

एक अद्भुत साहसिकता से वह भरे हैं। इन ३० वर्षों में कितनी कठिन परिस्थितियाँ आई हैं; अनेक तूफान सिर पर से गुजर गये हैं; हमें ऐसे मार्गों से चलना पड़ा है जिनपर चलते साहसी युवकों के दिल भी कम्पित हों पर जवाहरलाल में जीवन की आज भी वही अभिव्यक्ति वही स्फूर्ति, वही तेज है। जेल की दीवारें उनके साहस को ठंडा करने में असमर्थ रही हैं। 'खतरे के प्रति आकर्षण' उनका सबसे बड़ा गुण है। जिधर कठिनाइयाँ ज्यादा होंगी, रास्ता कँटीला होगा, बलिदान और उत्सर्ग का तकाजा होगा, उधर खिंचने के लिए वह स्वभाव से मजबूर हैं। इसीलिए उनके शब्द युवकों के दिल को छूते हैं। पर यह समझना भूल है कि इस आदमी में केवल ज्वाला ही ज्वाला है; सच तो यह है कि शीतलता भी उनमें कुछ कम नहीं। जो ज्वाला है उसपर भी अनुशासन की आदत के कारण उनका काफी नियन्त्रण है। वह केवल अनुभव नहीं करते, सोचते भी हैं। उनमें गम्भीरता की वैसी

कमी नहीं है जैसी लोग समझने की भूल करते हैं। स्व० मौलाना मुहम्मद अली उन्हें 'जवान बूढ़ा' कहा करते थे; इसमें कुछ सत्य तो है ही और यह सत्य उनकी पुस्तकों और रचनाओं में प्रायः सर्वत्र बिखरा हुआ है।

जवाहरलाल की दूसरी विशेषता निश्चित लक्ष्य के प्रति उनकी तन्मयता है। १९२० से अन्त तक कभी वह कांग्रेस के स्वाधीनता प्राप्ति के निर्णीत मार्ग या लक्ष्य से विरत नहीं हुए। उनकी मंजिल वही रही है; धारणाओं का विकास हुआ है; विचारों में विशालता आई है फिर भी तन्मयता वही है। बीच में आँधियाँ भी आई हैं, बादल भी गरजे हैं, सूखा भी पड़ा है और अकर्मण्यता के चटियल तथा पेचदार मार्ग में लोग भ्रम में भी पड़ गये हैं—लक्ष्य आँखों से ओझल हो गया है और वाद-विवाद में दिल ललचा गये हैं, युद्ध भूमि ने जिमनैशियम का रूप धारण किया है पर जवाहरलाल को ये बातें कभी लक्ष्य-भ्रष्ट न कर सकीं। वह उसी तरह चलते रहे और चल रहे हैं। वक्तव्य निकालने और जो कुछ दिल में आवे उसे लिख डालने में स्वयं सिद्ध-हस्त होते हुए भी बात-शूरता के प्रति इतनी घृणा दिल में लिये चलने वाले कांग्रेस में कम ही लोग हैं।

—और अनुशासन के मामले में वह इतने बेरहम हैं कि उनके मित्र भी उनसे काँपते हैं। उनके साथ काम ही किया जा सकता है, दिल्लगी या खिलवाड़ नहीं किया जा सकता। कुछ ऐसा काम लेने वाला और ऐसा काम करनेवाला कि लोग घबड़ाते हैं।

शीघ्र निर्णय करने की शक्ति उनमें अद्भुत है। ज्यादा तर्क वितर्क और विवाद उन्हें अच्छा नहीं लगता। लम्बी-चौड़ी बहसें उनके नजदीक हेच हैं। १९२८ की बात है। दिल्ली में सर्वदल-सम्मेलनकी बैठक हो रही थी। संयोग से मैं भी वहाँ उपस्थित था। भारतीय युवक-संघ

का भी अधिवेशन था। अनेक नेता आये हुए थे। धवलकेशी माता बेसेण्ट से और विधान के अपूर्व पंडित विद्यावयोवृद्ध विजयराघवाचार्य भी आये थे। दरियागंज में डा० अन्सारी के बँगले पर बैठक हो रही थी—बन्द कमरे में। कुछ तय न होता था। भोजन का वक्त हो चुका था। अन्त में जवाहरलाल जी ने अपना जरा-सा बिस्तर बाँधकर डा० असारी के प्राइवेट सेक्रेटरी से कहा—"मैं जाता हूं; मुझे और जरूरी काम हैं।" उन्होंने पूछा "क्या खाना न खायेंगे?" जवाहरलाल बोले —"इन बुड्ढों की बहस तो खतम होती नहीं और ऐसा तराना छिड़ा है कि भोजन मिलता भी नहीं दीखता।...मुझे खिलाना हो तो जो कुछ बना हो झटपट खिला दो।" मैंने कई बार देखा है कि जहाँ सैद्धांतिक वादविवाद ज्यादा होने लगता है, उनका दिल उचट जाता है।

दुनिया में कुछ आदमी ऐसे होते हैं, जो युद्ध और संघर्ष में अपनी सम्पूर्ण ऊँचाई के साथ दिखाई पड़ते हैं। जवाहरलाल भी कुछ इसी प्रकार के आदमी हैं। उन्होंने स्वयं ही एक बार कहा था कि 'जब तक युद्ध चलता है, मैं अपने को जीवित अनुभव करता हूँ। ऐसा मालूम होता है, मेरी नाड़ियों में जोर से खून दौड़ रहा है और समझौते के वक्त, जब लड़ाई खत्म हो, मैं अपने तईं बेजान-सा महसूस करता हूँ।' अपने मुकदमे के वक्त उन्होंने कहा था—"यहाँ बाहर! यहाँ तो अजब सुनसान है। सब साथी जेल में हैं; मैं भी वहीं जाना चाहता हूँ।'

दरअसल बात तो यह है कि जवाहरलाल जिस 'अरिस्टोक्रेटिक' (रईसी) वातावरण में पले हैं, वह उनके मानसिक विकास के साथ-साथ चलता रहा है। यह दिल का राजा असल में राजा ही है! उसके सतत ठोस त्याग में जहाँ ब्राह्मण है, तहाँ सतत त्यागी की रपट में, शोखी में, क्षत्रियत्व कुछ कम नहीं। जो राजपूती बांकपन शुरू के दिनों में उनमें था वह आज भी है बल्कि कुछ ज्यादा है। बाप की मृत्यु ने उनको इधर बढ़ाया; फिर प्यारी पत्नी कमला के देहावसान ने सब

बन्धन काट दिये। उन्होंने निर्बल, निश्चिन्त, निर्भय होकर स्वाधीनता की यज्ञभूमि में प्रवेश किया। आज उनके पास अपना अत्यन्त निजी अथवा अत्यन्त एकान्त में दान देने जैसा कुछ नहीं है। आज उनके जीवन की एकान्तिका नष्ट हो गई है और अब मधुरता का कोई ऐसा निजी स्रोत उनके इतना पास नहीं कि वह प्यास उपजाये और फिर उसे तृप्त करे। इसलिए वह आज सबसे निबट कर बिल्कुल ही समर्पित बन गये हैं। अब इस स्रोत के आगे मार्ग ही मार्ग है और चलना ही चलना है। अब इसमें 'ओयसिस' (हरित भूमि-खण्ड) नहीं है और विश्राम नहीं है अथवा यों कहें कि समस्त यात्रा-पथ ही विश्राम है और वही कर्म है। पिता गये, एक मधुर नियन्त्रण गया; कमला गईं, बुलबुल का आशियाँ सदा के लिए उजड़ गया। अब तो जीवन की प्रखर दोपहरी है और खिजाँ है या जो खिजाँ है वही बहार है। और इस बहार में जवाहर का उजड़ा चमन अपने प्रचण्ड और तपनशील त्याग के द्वार वह लालारुख पैदा करेगा, जिसे हम रोयेंगे और देखेंगे, जिसे हम हँसेगे और सिर लेंगे; जो खून-सा सुर्ख, त्याग-सा निष्ठुर, आँसू-सा कोमल होगा और जिसे गर्व से फूलते हुए सीने देखेंगे और आँखें मोतियों से सिजदा करेंगी !

× × ×

"बहादुरी में कोई उनसे बढ़ नहीं सकता और देश-प्रेम में उनके आगे कौन जा सकता है !...वह स्फटिक मणि की भाँति पवित्र हैं; उनके सत्यशीलता सन्देह के परे है।...राष्ट्र उनके हाथ में सुरक्षित है।" १६२८ ई० में, लाहौर कांग्रेस के पूर्व कहे हुए गांधीजी के ये शब्द आज भी ताजे और सार्थक हैं।

बराबर तीस वर्षों से मेरी दृष्टि जवाहरलाल पर है। इन वर्षों में यह पौधा बढ़ा ही है। अपनी दिशा में उस की बाढ़ बराबर जारी है, और यह वह पौधा है जो वातावरण से आग और प्रकाश

दोनों लेता है, और दोनों देता है; फिर भी इसमें आग ज्यादा है। युवक इसकी ओर झुकते हैं, उसमें आग अधिक है, इसलिए,—जब गांधी प्रकाश ही प्रकाश है। प्रकाश ऐसा, जिसके आगे आखें झपकती हैं और वह ठीक-ठीक दिखाई नहीं देता। गांधी को देखकर पाश्चात्य शिक्षा ने जिसकी नीति की कमर तोड़ दी है उस युवक भारत की आँखें झपकती हैं। गांधी निष्ठुर नीतिवादी के साथ इतना व्यावहारिक रहा है कि एक औसत भारतीय युवक के लिए रहस्य-सा लगता है; जब जवाहरलाल की आग और जीवट के शब्दों से उसके सर्द होते हुए दिल को गरमी मिलती है।

पिछले कई वर्षों से जवाहरलाल एक 'आइडिया,' एक धारणा, एक मूर्तिमान भाव के रूप में हमारे सामने आना चाह रहे हैं; आये भी हैं। परदा हट-सा गया है; पर जैसे वह उनके-जैसे कर्मठ के लिए बिल्कुल स्वाभाविक नहीं हो पाया है। एक योद्धा और एक नेता तो वह रहे ही हैं पर दिन दिन वह एक विचारक और एक समाज-निर्माता के रूप में विकसित हो रहे हैं। ऐसा नहीं कि यह समाज-निर्माता नया हो; इसके बीज उनके अन्दर आरम्भ से मिलते हैं; सच पूछिए तो वह दिल से समाज-परिष्कारक ही होने के अधिक योग्य थे; परिस्थिति ने उन्हें सीधे राजनीति में आने को विवश किया। आधुनिक अर्थ में एक 'राजनीतिज्ञ' के गुण उनमें नहीं हैं और हैं तो बहुत कम। वह अधीर हैं; वह समझौतों (पैक्ट्स) से घृणा करते हैं; वह निष्ठुर स्पष्टवादी हैं। वह एक लक्ष्य में केन्द्रित हो जाने वाले प्राणी हैं; उनमें 'टैक्ट' या कौशल की अपेक्षा वफ़ादारी अधिक है और कूटनीतिज्ञता की अपेक्षा सच्चाई ज्यादा है। यद्यपि अब राजनीतिज्ञ के रूप में धीरे-धीरे उनका विकास हो रहा है और जब से उन्होंने स्वतन्त्र भारत के प्रधानमन्त्रित्व का बोझ सँभाला है तब से तो इस दिशा में और भी प्रगति हुई है। बीच-बीच में जब लड़ाई थमी है या जेल ने उन्हें अवकाश

दिया तब-तब उनके अन्दर दबे, प्रसुप्त समाज-निर्माता को कुछ हवा मिली है, उसमें चेतना आई है और आज वह उठना चाहता है—बहुत सम्भव है कि उठ जायगा।

महात्मा गांधी के बाद दूसरे किसी आधुनिक नेता ने भारतीय कल्पना पर इतना प्रभाव नहीं डाला है जितना जवाहरलाल ने। वस्तुतः वह एक धारणा के प्रतीक रहे हैं और हैं। यह धारणा है, भारतीय राष्ट्रका स्वतंत्रता प्राप्त करने और उसे सुरक्षित रखने का दृढ़ निश्चय। उनमें यह धारणा मूर्त्त है। यह आदर्श शरीरी बन गया है।

परस्पर-विरोधी बातें

पर जवाहरलाल में परस्पर-विरोधी उपकरणों की भी कमी नहीं है। वह अत्यन्त उदार पर अत्यन्त जिद्दी, अपने ज्ञान और अध्ययन के प्रति गर्व से भरे, विरोधी विचार-धाराओं के संघर्ष में टकराते हुए चलने वाले, बुद्धि और विवेक से समाजवादी, पर स्वभाव और संस्कार से सर्वाधिकारी की मनोवृत्ति रखने वाले हैं। जल्द झुँझला पड़ते हैं; अपने निर्णय पर दूसरों को अँगुली उठाते देखकर शान्त रहना उनके लिए मुश्किल है और जब से व्यङ्गों की एक उत्तम शैली अपनी रचनाओं में उन्होंने विकसित कर ली है तबसे तो विरोधी पक्ष पर गहरा व्यङ्ग करने का प्रलोभन वह छोड़ नहीं पाते।

जवाहरलाल में परस्पर-विरोधी गुणोंका जो मिश्रण है उसी कारण हम उनमें—उनकी रचनाओं में—घोर मानसिक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति पाते हैं। वह एक साथ विचारक और विद्रोही, निर्माता और विध्वंसक, लेखक और राजनीतिज्ञ हैं। सच पूछिए तो एक विचारक के तत्व उनमें अधिक हैं पर परिस्थितियों ने उन्हें राजनीति के भँवर में डाल दिया है। उनके इन दो उपकरणों में बराबर संघर्ष चलता रहता है। उनको जहाँ विकास की सुविधाएँ मिली हैं तहाँ उनकी बाधाएँ भी कुछ कम नहीं हैं। 'पहली बात तो यह कि वह परस्पर-विरोधी

परिस्थितियों, संस्कारों और विचार-धाराओं की उपज है। इसलिए उनमें वह केन्द्रित वा सघन कट्टरता नहीं है जो क्रांतिकारी में होती है। वह बुद्धि-विश्वास से समाजवादी हैं; पर उनका जन्म और पालन ऐसे कुटुम्ब और ऐसे वातावरण में हुआ जो रईसाना नफ़ासत और वैभव से भरा हुआ था। इसीलिए आज भी उनमें रईसाना वृत्तियाँ और नफ़ासत की भावना है। उनकी रुचि एक सहज, बहुपठित, सभ्य और संस्कृत ('पालिश्ड') 'एरिस्टोक्रैट' या रईस की रुचि है। उनकी विशेषताएँ भी वही हैं; उनकी कमजोरियाँ भी वही हैं। वह अपनी इन (Aristocratic) भावनाओं से पूर्णतः मुक्त होने में असमर्थ हैं। इसी सिलसिले में यह बात भी याद रखने की है कि उन्होंने अपने पिता से अपनी श्रेष्ठता का भाव भी विरासत में पाया है, इसलिए उनमें एक शान, अपनी श्रेष्ठता का प्रच्छन्न अभिमान भी अवश्य है। यह ठीक है कि अहङ्कार को उन्होंने संस्कृति की लोच से मनोहर बना दिया है पर अब भी अपने निर्णय, अपनी आज्ञा, अपनी शान पर किसी को अँगुली उठाते देख वह बाहर आ जाता है। विरोध की ऐसी परिस्थितियों में वह प्रायः गरम हो जाते हैं। कई बार तो वह गरमी अवाञ्छनीय सीमा तक चली जाती है। मुँह से बदतमीज, बेहूदा इत्यादि शब्द निकलना तो उनके लिए साधारण बातें हैं। यह सब वही अहङ्कार है जो उनको पैत्रिक वातावरण और परिस्थितियों से मिला है। ये सब संस्कार समाजवादी संस्कार नहीं हैं; ये उसी शालीन उच्च मध्यवर्ग के संस्कार हैं जिनके विरोध में उनके अन्दर का समाजवादी उठ खड़ा होने को उत्सुक है।

"फिर जवाहरलाल में गांधीजी के प्रति अत्यंत शक्तिमान श्रद्धा है। सारे मतभेदों के बावजूद वह जानते रहे हैं कि इस आदमी में परिस्थितियों को स्वाभाविक प्रेरणा से (Instinctively) समझने और सुलझाने की अपूर्व शक्ति थी। इसके बाद वह यह भी जानते हैं कि वह

एक पूर्णतः समर्पित व्यक्तित्व थे इसलिए चाहे उनका किसी समस्या को हल करने का ढङ्ग बिल्कुल स्पष्ट न हो पर उससे कल्याण ही होगा। फिर गांधीजी के गुणों एवं निजी सम्पर्क ने जवहारलाल के दिल में उनके लिए बड़े ही कोमल एवं आदरणीय भावनाओं को सुदृढ़ कर दिया। इसलिए गांधीजी के विरुद्ध बगावत करना सदा उनके लिए बहुत मुश्किल रहा।

"इन परस्पर-विरोधी उपकरणों के कारण उनमें मानसिक संघर्ष बहुत ज्यादा है जिसका दर्शन उनकी रचनाओं में होता है। इसके कारण उनकी विचार-धारा में कभी-कभी अनिश्चितता, अस्पष्टता और भ्रम भी दिखाई पड़ता है। उनके भविष्य को खतरा बाहर से नहीं है—स्वयं अन्दर के इस संघर्ष के कारण है; यह खतरा उनको स्वयं अपने से है।

"उनमें दृढ़ता है, लगन है, स्फूर्ति है। उनमें जनसमूहों के प्रति सहज आकर्षण है—क्योंकि उनमें अपने प्रति आकर्षण है। गांधीजी के बाद उन्होंने भारतीय कल्पना पर सबसे अधिक प्रभाव डाला है। उनमें गांधीवाद और समाजवाद का समन्वय है; वह परिपाटियों, रुढ़ियों और अन्धविश्वासपूर्ण समानता के भावों से सर्वथा परे हैं। उनमें धार्मिक पक्षपात नहीं, जातिगत भेदभाव नहीं, उनमें प्राचीन के अन्धानुसरण की प्रवृत्ति नहीं। इसलिए स्वभावतः उनका भविष्य उज्ज्वल होने की आशा की जा सकती है।"*

सफलता का रहस्य

गांधीजी की सफलता का रहस्य जहाँ उनका आत्मतत्व है तहाँ जवाहरलाल की सफलता उनकी लगन एवं दृढ़ता में है। गांधीजी जहाँ भारतीय हृदय की सुप्त धर्म-भावना के प्रति अपनी जाग्रत अनुभूति और

---

*उद्धरण के ये अंश, परिवर्तनों के साथ, स्वलिखित 'राष्ट्र-निर्माता' से लिये गये हैं।

अपील के कारण लोकप्रिय हुए तहाँ जवाहरलाल अपनी साहसिकता, अपने विस्मयकारी त्याग और अपने रोमैंटिक वातावरण के कारण लोकप्रिय हैं। युवकों में उनकी लोकप्रियता का कारण यह भी है कि उसके सोचने का ढङ्ग यद्यपि बहुत कुछ उलझा हुआ पर आधुनिक है, विश्लेषणकारी है और इस विचार-प्रणाली पर जो इमारत वह खड़ी करना चाहते हैं उसमें भारत के प्रति निजत्व का, भारतीयता का भी भाव है। यद्यपि गांधीजी और जवारहलाल दोनों के विकास में पूर्व और पश्चिम का हाथ है किन्तु गांधीजी में पश्चिम आकर भी पूर्व बन गया है जब जवाहरलाल में पूर्व भी पश्चिम के आवरण में घिरा हुआ है।

गांधी और जवाहर

गांधी और जवारहलाल के निर्माण में यह एक तात्विक अन्तर है। इस अन्तर के कारण गांधी सन्त और तत्वज्ञानी हैं जब जवारहलाल राजनीतिज्ञ और कर्मठ नेता हैं। गांधीजी का संयम उनके जीवन में मिल गया है, उसका स्वराज्य के तात्कलिक प्रश्न से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं; उन्होंने संयम को इसलिए अपनाया कि उसके बिना मानव जीवन मूर्छित है और आत्मदर्शन सम्भव नहीं; जब जवाहरलाल ने उसे इसलिए अपनाया है कि स्वतंत्रता के रास्ते पर चलते हुए सैनिक को कठोरता, संयम और अनुशासन आवश्यक है। जवाहरलाल को मीलों पैदल चलते, तीसरे दर्जे में यात्रा करते, जमीन पर सोते बहुत लोगों ने देखा होगा पर इसमें केवल कर्त्तव्य और समय का तकाजा है; आत्मार्थी के निष्ठुर संयम या तप का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। दुनिया के मजों और रंगीनियों के प्रति यह उनका विराग नहीं। सामान्य समय में वह न केवल इन चीजों को अपना लेंगे बल्कि उनका अपनाना आवश्यक समझेंगे। गांधी जी में अद्भुत आत्म-विश्वास था; आवश्यकता पड़ने पर वह

समस्त संसार के विरुद्ध खड़े हो सकते थे परन्तु इतना होते हुए भी वह किसी के प्रति अवज्ञा का, हीनता का भाव कभी प्रदर्शित नहीं करते; वह सर्वदा मानव की प्रच्छन्न श्रेष्ठता को अपील करते थे। जवाहरलाल का विकास कुछ यों हुआ है कि वह अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता का न केवल अनुभव करते हैं वल्कि दूसरों के प्रति अपने व्यवहार में उसका प्रदर्शन करने के लोभ को भी नहीं छोड़ सकते। कांग्रेस कार्यसमिति में उनके साथी तक, जो सब देश के प्रतिष्ठित नेता हैं, इस बात की गवाही दे सकते हैं। यहाँ तक कि कई बार इससे कटुता उत्पन्न हो गई है। असल में इस विषय में उन पर उनके पिता के अहङ्कार और खान्दानी श्रेष्ठता की भावना का काफी असर है। एक बार अपने गांधीवादी सहकर्मियों की आलोचना से चिढ़ कर उन्होंने कार्यसमिति में व्यङ्ग किया—'मुझे सन्देह है कि यहाँ कोई ऐसा है जो समाजवाद की ठीक-ठीक व्याख्या भी जानता हो!' इस जहर का असर वहुत दिनों तक वना रहा। एक वार उन्होंने चिढ़कर अपने साथियों को 'रवर-स्टाम्प' कह दिया। व्यङ्ग यह था कि तुम लोगों के ढले-ढलाये विचार हैं, तुम दूसरे के विचार की प्रतिध्वनि-मात्र हो। एक साथी ने तुरन्त जवाव दिया—"Yes there are may rubber-stamps and atleast one punching machine amongst us." अर्थात् "हाँ, रवरस्टाम्प तो वहुत हैं पर कम से कमएक पञ्चिंग मशीन—कागजमें छेद करनेवाली मशीन—भी हममें है।" जवाहरलाल खिसिया कर रहगये। वस्तुतः उनमें न सिर्फ अपने वड़प्पन का अभिमान है वल्कि गांधी से लघुता की भावना के अनुभव और तदनुकूल ही कांग्रेस में स्थान के कारण ही खीझ भी है। इन सव सङ्घर्षों के कारण वहुधा उनके विचारों में अवांछनीय कटुता और साथ ही भ्रम भी पैदा हो जाता है। गांधीजी अपने प्रति, अपने विरोधियों के प्रति सहज शान्ति मुद्रा में अवस्थित थे। वह जवाहरलाल की भाँति फुलझड़ी या दियासलाई-से

एक क्षण में जल उठने वाले व्यक्ति नहीं थे। जवाहरलाल को उनका कोई भी विवादपटु विरोधी दो-चार तीखे वाक्य कहकर भड़का दे सकता है और उनके जल उठने का मजा ले सकता है जब गांधीजी का यों शिकार कर लेना असम्भव था।

डा० पट्टाभि सीतारमैया ने दोनों की तुलना करते हुए लिखा है—

"......जवाहर और गांधी के बीच वही सम्बन्ध है जो आग और पानी में है। किन्तु इस विरोधाभास में ही वास्तविक एकता का निवास है। यदि जवाहर विश्लेषण करते हैं तो गांधी समन्वय। यदि राजनीतिज्ञ जवाहर गगनविहारी हैं तो गांधी आधार को व्यापक बनाते और जवाहर के गुरुत्वाकर्षण को सन्तुलित करते हैं। यदि राजनीतिज्ञ जवाहर गति के पक्षपाती हैं तो गांधी घनत्व—ठोसपन— के हामी हैं। राजनीतिज्ञ जवाहर की तुलना गोदावरी नदी से की जा सकती है जो नासिक से शुरू होती है और ऊँची-नीची भूमि पर भयङ्कर तेजी से बहती हुई जङ्गलों और घाटियों को पार करती है। गांधी राजमहेन्द्रवरम् मुकाम पर उस नदी तल के समान हैं जो विस्तृत है, गहरा है, शांत शीघ्र-प्रवाही है और एक बाँध में जाकर गिरता है जहाँ से आस-पास के खेतों को सींचनेवाली कई नहरें निकलती हैं, और इस पृथ्वी के लाखों निवासियों को सुख और समृद्धि प्रदान करती हैं।......गांधी और जवाहर उसी प्रकार मिलते हैं जिस प्रकार गंगा और यमुना नदियाँ मिलती हैं। एक के पास अहिंसा का शांत जल है तो दूसरे के पास आवेश और क्रोध का उछलता हुआ पानी। दोनों थोड़ी दूर अलग-अलग बहते हैं और शीघ्र ही एक दूसरे में मिल जाते हैं। चौड़ाई और गहराई में ऊँचाई का समावेश हो जाता है; विज्ञान के साथ दर्शन का, भौतिकता के साथ आध्यात्मिकता का, अथवा यों कह लीजिए 'हिंसा' के साथ 'अहिंसा' का समागम हो जाता है।"*

---

*'जवाहरलाल नेहरू, दि मैन ऐण्ड हिज आइडियाज' से।

राजाजी और जवाहरलाल*

राजाजी और जवाहरलाल की भी कई बार तुलना की गई है। दोनों, सिद्धांत से, बुद्धिवादी हैं पर जवाहरलाल का बुद्धिवाद जहाँ अक्सर भावना और जोश से प्रकम्पित और विचलित है तहाँ राजाजी को आप कभी अस्थिर और अशांत न पायेंगे। वह स्थिर, निश्चिन्त और शांत से मालूम पड़ते हैं। जल्दबाजी उनकी प्रकृति में नहीं। चलने, फिरने, बोलने प्रत्येक कार्य में उनको हम स्थिर देखते हैं। राजाजी ऊपर से सादे, विनम्र और विनीत हैं पर अन्दर उनमें ऐसे गर्व और शक्ति का निवास है जिसे कोई तोड़ नहीं सकता। जवाहरलाल भावनाशील क्रान्तिकारी हैं; उज्वल लक्ष्य के लिए वह खतरा उठाकर अँधेरे में कूद सकते हैं पर राजाजी मनुष्यों अथवा घटनाओं से प्रभावित होकर कोई काम करने से नफरत करते हैं। वह इसे गलत समझते हैं कि कोई बुद्धिवादी चाहे कैसे भी कार्य में जोश से अन्धा होकर कूद पड़े। जवाहरलाल की भाँति राजाजी भी पूरे 'अरिस्टोक्रैट' हैं किन्तु उनकी अमीरी बुद्धि की अमीरी है और इसलिए वह अन्तस्थ है। जवाहरलाल की अमीरी परम्परागत और पैतृक है, इसलिए भावना-प्रधान और प्रकट है। जब जवाहरलाल में प्रधानतः पश्चिम से प्रभावित पूर्व है तब राजाजी ठेठ भारतीय हैं: ब्राह्मण की क्षमता की साकार मूर्ति! राजाजी अपने व्याख्यानों में भावना को कभी अपील नहीं करते; उनकी अपील विवेक से होती है। जवाहरलाल भी विवेक को उभाड़ने की कोशिश करते हैं पर बोलते-बोलते उनकी भावना की अन्तःसलिता कुछ इस प्रकार उमड़ पाती है कि वह फूट पड़ते हैं।

---

*यह अंश श्री वी० रामचन्द्रन के एक लेख के आधार पर लिखा गया है।—लेखक

किसी ने सच कहा है कि यदि दोनों मिलकर खड़े हो सकें तो असम्भव को भी सम्भव कर सकते हैं पर परिस्थिति ऐसी नहीं है कि दोनों मिल सकें।

× × ×

"जो हो, जवाहरलाल में वे सब गुण हैं जो एक स्वतंत्र राष्ट्र के प्रधान मन्त्री में होने चाहिएँ। और क्या आश्चर्य है कि स्वतंत्र भारत में इस पद का निर्वाह करने के लिए उनको एक दिन आगे आना पड़े।"

बहुत दिन पूर्व, इस पुस्तक के प्रथम संस्करण के लिए ये शब्द लिखे गये थे। वह संभावना और भविष्यवाणी अब सार्थक हो चुकी है। उस समय लोगों को सन्देह था कि उनकी-जैसी विद्रोही प्रकृति का आदमी, उनका-सा भावप्रवण, उनका ठहर कर, रह-रहकर अपने को परखने और देखने का स्वभाव कदाचित् उनके एक श्रेष्ठ राष्ट्रकलाविद् (स्टैट्समैन) बनने में बाधक हो पर शत-शत अनिश्चितताओं और कठिनाइयों के बीच उन्होंने प्रधानमन्त्री के रूप में जिस साहस और दृढ़ता का परिचय दिया और जब बहुतेरे कांग्रेस जनों ने भी भावी चुनावों की सफलता के लिए साम्प्रदायिकता के आगे घुटने टेक दिये तब भी गांधीजी के आशीर्वाद और पथ-दर्शन में उन्होंने अपनी सहज दृढ़ता और तेजस्विता से साम्प्रदायिकता और फैसिज्म की बढ़ती हुई शक्तियों से लोहा लिया और ले रहे हैं। यदि राजाजी, जवाहरलाल, और राजेन्द्रबाबू के बीच दृढ़ सम्पर्क और हार्दिक सहयोग रहा तो भारत का भविष्य सुरक्षित है।

२१५

———

हमारे प्रकाशन

न केवल आलमारियों की शोभा हैं बल्कि जीवन को शक्ति और प्रकाश देने वाले हैं।

१—गांधीवाद की रूपरेखा	२)	२१—जीवन-सूत्र	२)
२—योग के चमत्कार	२)	२२—प्राचीन कवियों की काव्य-साधना	२॥)
३—घर की रानी	१॥)	२३—सेवा धर्म	२॥)
४—आनन्द निकेतन	३)	२४—समग्र ग्राम सेवा	६)
५—चारुमित्रा	२॥)	२५—युगाधार गांधी	२॥)
६—शृङ्खला की कड़ियाँ	२॥)	२६—गांधी मार्ग	२॥)
७—हमारे नेता	२॥)	२७—अहिंसक क्रांति	॥=)
८—वेदी के फूल	१)	२८—कठघरे से पुकारती वाणी	१)
९—स्त्रियों समस्याएँ	१॥)	२९—भारतीय राष्ट्रीयता	॥)
१०—गांधी वाणी	३॥)	३०—हमारे स्व० राष्ट्र-निर्माता	४)
११—नई कला	२॥)	३१—पथिक	॥)
१२—कन्या	१।)	३२—बुद्ध	॥)
१३—भाई के पत्र	३)	३३—चन्द्रगुप्त	॥)
१४—निबन्ध कला	३॥)	३४—बन्दी युग	२॥)
१५—अमृत वाणी	१॥)	३५—पेखन	॥)
१६—जीवन यज्ञ	२)	३६—बालकथा कहानी सेट	३)
१७—भारत का भाग्य	१॥)	३७—मिलन	॥)
१८—विजय-पथ	१॥)		
१९—नारी—रहस्यदर्शी	२॥)		
२०—नारी जीवन	१।)		

साधना सदन, इलाहाबाद—१